I.S.S.N. 0975-6531

यू.जी.सी. केयरलिस्ट में सम्मिलित

वैचारिकी

भारतीय संस्कृति-साहित्य की शोध द्वैमासिकी

जनवरी-फरवरी 2025 * भाग 41 - अंक 1

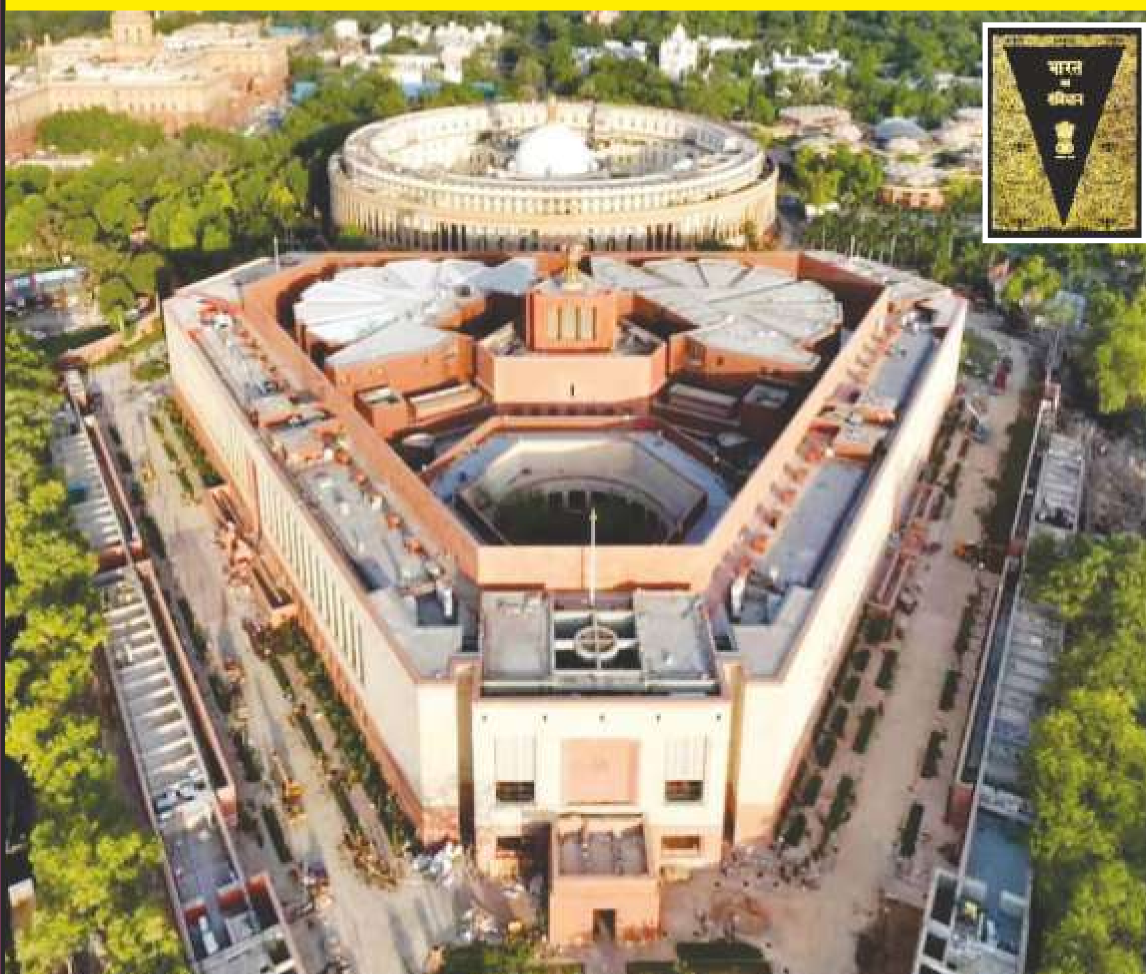

भारतीय विद्या मन्दिर, कोलकाता

• वैचारिकी •
जनवरी-फरवरी 2025 भाग 41 अंक 1

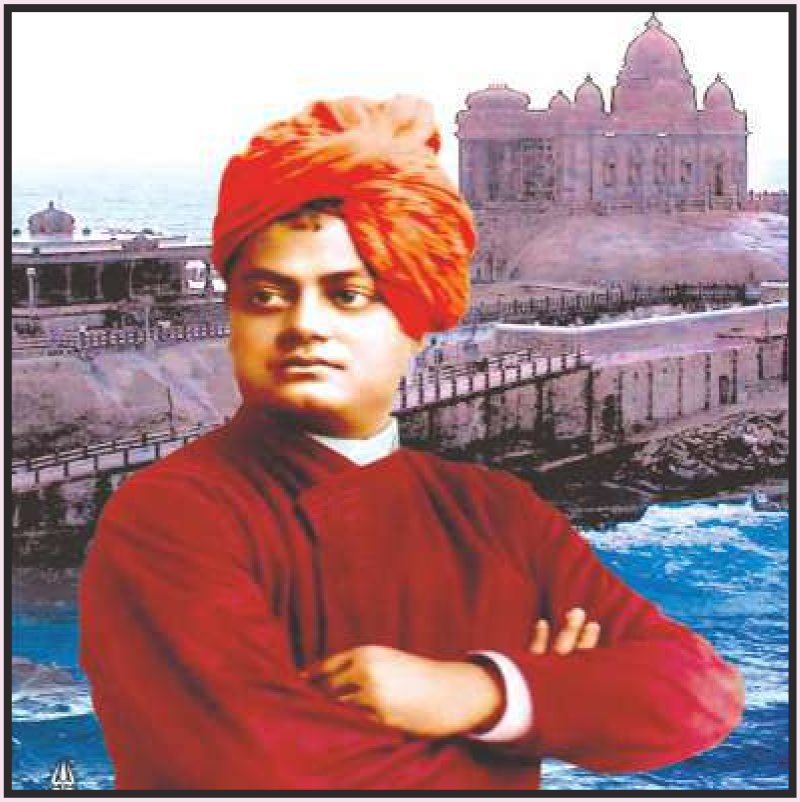

वैचारिकी

भारतीय विद्या मन्दिर की द्वैमासिक शोध पत्रिका

अध्यक्ष-प्रधान सम्पादक

डॉ. बिट्ठलदास मूंधड़ा

सम्पादक

डॉ. बाबूलाल शर्मा

प्रबंध सम्पादक

शंकरलाल सोमानी

योगः कर्मसु कौशलम्

कार्यालय
भारतीय विद्या मंदिर
12/1, नेली सेनगुप्ता सरणी
कोलकाता-700 087
दूरभाष : 033-71001614
मो. : 09830559364
ई-मेल : bvm.vaichariki@gmail.com
Website : www.bharatiyavidyamandir.org

सदस्यता शुल्क

वार्षिक 450/- रुपये

द्वैवार्षिक 900/- रुपये

भुगतान

Payee's Name:
BHARATIYA VIDYA MANDIR
Current A/c No. : 32030320176
Bank : STATE BANK OF INDIA
Branch: New Market
IFSC Code No. : SBIN0004662

ISSN 0975-6531 **भाग : 41 अंक : 1**

वैचारिकी

धर्म-दर्शन-विज्ञान, साहित्य-लोकसाहित्य, इतिहास-पुरातत्व, कला-लोककला
यू.जी.सी. केयरलिस्ट में सम्मिलित

जनवरी-फरवरी, 2025 ✷ पौष शुक्ल 2, फाल्गुन कृष्ण 14, वि. सं. 2080-81 ✷ ₹ 50/-

अनुक्रम

- **अध्यक्षीय** 3
- **संपादकीय** 6
- **लोकोक्तियों का स्रोत और वैशिष्ट्य**
  डॉ. मथुरेश नन्दन कुलश्रेष्ठ 9
- **मौर्यकालीन कृषि तथा पशुपालन : एक अध्ययन**
  डॉ. प्रवेश कुमार 17
- **अयोध्या का राम मन्दिर : ऐतिहासिक तथ्य एवं स्थापत्य**
  डॉ. प्रियंका 24
- **प्रयागराज कुम्भ : परम्परा और धरोहर**
  डॉ. निशा भारद्वाज 30
- **हिन्दी का समर्थ काव्यात्मक प्रस्थान : मैथिली शरण गुप्त**
  सीताराम पाण्डेय 39
- **हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में नारी चरित्र**
  डॉ. विजय लक्ष्मी शर्मा 44
- **प्रयोगवादी काव्यधारा के प्रणेता : अज्ञेय**
  राजेन्द्र परदेसी 49
- **मुक्तिबोध के काव्य का भावलोक एवं दर्शन**
  प्रो. अर्चना जैन 54
- **डॉ. रामदरश मिश्र की लघु कविता का शिल्प**
  डॉ. सविता मिश्र 60
- **श्रीश्री ठाकुर अनुकूलचंद्र के वाङ्मय में नारी**
  कुमार गौरव मिश्रा 65
- **सुरूर की शायरी में स्त्री की कमनीयता और गरिमा**
  डॉ. मोईनुद्दीन 'शाहीन' 70
- **कुमार कृष्ण की कविता में स्त्री**
  वीरेन्द्र सिंह 73
- **राजस्थानी लघु चित्रों में कृष्ण लीला व कत्थक नृत्य**
  डॉ. वन्दना चौबे 79
- **पाठक-मंच** (राष्ट्र के लिए समर्पित गोपाल कृष्ण गोखले),
  (श्री माधोदास मूंधड़ा के 108वें जन्म दिवस पर स्मरणांजलि) 87
- **प्रतिस्वर** 94

■ प्रकाशित सामग्री के उपयोग हेतु लेखक-प्रकाशक की अनुमति आवश्यक।
■ प्रकाशित लेखादि में अभिव्यक्त विचारों से प्रकाशक-सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।
■ समस्त विवादों के लिए न्यायालय क्षेत्र कोलकाता।

अध्यक्षीय

सत्य का अन्वेषण

मनुष्य इस सृष्टि के सत्य को जानने के लिए अनंतकाल से प्रयत्नशील है। इस प्रयत्न में वह सृष्टि-कर्ता ईश्वर की संकल्पना पर टिकता है, तो वह वैज्ञानिक अन्वेषणों के माध्यम से अणु, परमाणु, चेतना तक पहुंच गया है। अल्बर्ट आइन्स्टीन के कथनानुसार, 'ईश्वर, जगत के साथ पासा नहीं खेलता।' यह सत्य है कि आइंस्टीन ने **प्रमात्रा यांत्रिकी** को कभी स्वीकार नहीं किया, फोटोइलेक्ट्रिक (Photoelectric) प्रभाव ने प्रमात्रा यांत्रिकी के विकास का मार्ग विकसित किया था उन्हें वर्ष 1921 में नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया था। मैं यहां स्टीफेन हाकिन्स को उद्धृत करना चाहता हूं - 'ईश्वर केवल पासा ही नहीं खेलता अपितु - - - - कभी-कभी उन्हें ऐसी जगह फेंक देता है जहां उन्हें देखना असम्भव है।' अर्थात जगत रहस्यमय है, तथा वर्तमान के विज्ञान में प्रमात्रा भौतिकी के रहस्य से अधिक रहस्यमय कुछ भी नहीं है।

सभ्यता के प्रारंभिक दिनों से ही मानव जाति ब्रह्माण्ड तथा प्रकृति की पृष्ठभूमि में निहित वास्तविकता एवं सत्यता को जानने हेतु लगातार अनुसंधान कर रही है। मनुष्य ने प्रकृति के विभिन्न तत्त्वों यथा जल, अग्नि, सूर्य, धरती आदि को देवी-देवताओं के रूप में पूजा करना प्रारम्भ कर दिया। परंतु धीरे-धीरे उसे अनुभव होने लगा कि इन तत्त्वों से भी अधिक शक्तिशाली किसी अन्य सत्ता का अस्तित्व है और इसी सत्ता ने प्रकृति के उपरोक्त तत्त्वों को वास्तविक शक्ति-बल प्रदान किया है। परंतु इस शक्ति का स्रोत क्या है? वे अपनी शक्तियां तथा निर्देश कहां से प्राप्त कर रहे हैं? वेदों में विभिन्न प्राकृतिक देवी-देवताओं के प्रति श्रद्धा, सम्मान एवं अभिवादन अभिव्यक्त करने से संबंधित मंत्रों का उल्लेख किया गया है। इन मंत्रों में मनुष्य जाति के कल्याण एवं लाभ की कामना निहित है।

भगवद्गीता में बताया गया है कि ज्ञान से अधिक पुनीत एवं पवित्र कुछ भी नहीं है। यह ज्ञान जगत की सतह पर भाषा एवं शब्द के रूप में निवास करता है, इसकी तुलना में, कम्प्यूटर के क्षेत्र में केवल ग्राफिक यूजर इन्टरफेस (Graphic User Interface - GUI) का सन्दर्भ दिया जा सकता है। हम इस सतह को पर्दे/स्क्रीन पर देख सकते हैं। वास्तविकता यह है कि वहां एक भाषा के यंत्र तथा शक्ति का अस्तित्व अधिक गहराई में है, जो इन बिम्बों

का कारक है तथा अक्षरों को अनुश्रवण कर पर्दे पर प्रकट करती है। इसी प्रकार जीवन है तथा उसकी पृष्ठभूमि में विचारों की एक अमूर्त भाषा-सतह है जिसकी उत्पत्ति चेतना (Consciousness) में होती है। इससे भी गूढ़ ज्ञान के प्रवाह, जिसका स्रोत ब्रह्माण्डीय चेतना हो सकता है, का अस्तित्व रहता है। वहां प्रकृति की गोपनीय रचना की उपस्थिति है, वहां विशुद्ध ज्ञान, विवेक की एक पर्त का अस्तित्व है, वहां सर्वव्याप्त सजगता मौजूद है। वहां एक अद्‌भुत यान है- जहां भूत, वर्तमान तथा भविष्य काल एक स्थान पर मिलते हैं। दैवीय शक्तियों के अनाम हस्ताक्षरयुक्त एक अन्य यान का भी अस्तित्व यहां है। वहां इन्टरनेट की भांति एक यान है-- यह आध्यात्मिक क्षेत्र में भी है। उसे वेदान्त में 'ब्रह्म' कहा गया है। वहीं वास्तविक ब्रह्माण्डीय ज्ञान है, जहां गूढ़ता अथवा सूक्ष्मता सामान्य है तथा विश्वास किया जाता है कि उसी ने जीवन के 'शब्दकोष' की रचना की है, जिसमें सभी घटनाएं परिभाषित हैं तथा ब्रह्माण्डीय योजना का क्रियान्वयन है।

हमारे शास्त्रीय ग्रंथ

आरण्यकों तथा उपनिषदों में अन्तिम सत्ता 'ब्रह्म' की चर्चा उपलब्ध है। यहां ब्रह्म को अमूर्त तथा चेतना का निराकार स्वरूप कहा गया है। इसी आशय की अभिव्यक्ति अथर्ववेद तथा अन्य शास्त्रों-यथा तंत्रशास्त्र में भी की गई है। गीता में निराकार ब्रह्म को भगवान कृष्ण में मूर्तिमान (साकार) रूप में निहित बताया गया है और आवश्यकतानुसार जो अनन्त, अपरमित भी हो सकते हैं। गीता में घोषित किया गया है कि वे जगत तथा ब्रह्माण्ड के हर कोने में विद्यमान हैं तथा इनका सभी अस्तित्ववालों में अस्तित्व है। इनमें काल तथा अन्तरिक्ष भी सम्मिलित हैं। सभी अस्तित्ववालों का प्रसर्जन स्रोत ब्रह्म है। वह सर्व-व्यापी है। मानव जैसा चार-आयामी मूर्तरूप भी वह धारण कर लेता है। भक्त की आवश्यकतानुसार, वह अपने भक्त की रक्षा हेतु पाषाण-स्तम्भ से भी प्रकट हो सकता है। भक्त के एकाग्र तथा तन्मय होकर प्रार्थना करने पर अपने भक्त को आपदाओं से मुक्ति दिलाने हेतु नृसिंह होकर पाषाण-स्तम्भ से प्रगट हो सकता है। यह भक्त प्रह्लाद की कहानी है। ईश्वर के मूर्त-रूप से प्रकट होने की ऐसी अनेक कहानियां पुराणों में वर्णित हैं।

ब्रह्म की संकल्पना

उपरोक्त के समानान्तर सांख्य, चार्वाक, बौद्ध तथा जैन जैसे अनीश्वर वादों या दर्शनों का भी अस्तित्व है। पुनः शंकर जैसे आचार्यों में ब्रह्म की संकल्पना है, 'निर्वाण शतकम्' में आचार्य शंकर ने स्वयं को 'चिदानन्दरूप शिवोहम्' घोषित किया है, अर्थात् मैं ब्रह्म का अंश तथा आवश्यक अंग हूं तथा मैं वही हूं। यदि यह जान सकें की आप कौन हैं तब आपको आभास हो जायेगा कि आप अब उतने छोटे अथवा सीमित 'आप' नहीं हैं अपितु आप वह 'आप' हैं जो इस जगत का कुंजी तत्व (Key element) हैं। इस तरह जगत आपसे प्रारंभ होता है।

चैतन्य महाप्रभु तथा श्री बल्लभाचार्य के कथनानुसार अंततोगत्वा श्री कृष्ण पूर्ण पुरुषोत्तम परमानन्द स्वरूप में मूर्तिमान होते हैं और जीवित प्राणियों का चरम लक्ष्य, उनका सामीप्य प्राप्त करना तथा उनकी लीलाओं में आंतरिक शांति अनुभव करना है। ऋषि अरबिन्दो घोष इन पुराने आचार्यों की शृंखला के अंतिम आचार्य हैं। दूसरी तरफ पश्चिम में प्लेटो, अरस्तू तथा सुकरात जैसे दार्शनिकों की लम्बी शृंखला देखी जा सकती है। इसी प्रकार, पूरब में लाओ त्जू (Lau Tzu) तथा कन्फ्यूशियस जैसे महान दार्शनिकों ने अपने दर्शन का प्रतिपादन किया था। इन सभी दार्शनिकों ने सृष्टि, जीवन-संरक्षण तथा जगत के निश्चित प्रबंध को समझाने का प्रयास किया था। उस समय भी जीवन, मृत्यु तथा पूर्वजन्म से संबंधित अनेक प्रश्न अनेक मस्तिष्कों में तैर रहे थे।

विज्ञान तथा अध्यात्मिकता का सामंजस्य

वर्तमान काल में वैज्ञानिकों के मध्य एक परंपरा है। निरीक्षण एवं अनुसंधान इनकी प्रकृति एवं प्रवृत्ति है। इन्होंने सृष्टि की कार्य-प्रणाली को जानने तथा समझने की दिशा में प्रयास किया जो हमारे अध्ययन हेतु एक नया अध्याय है। इस प्रयास में अपने दृष्टिकोण को नवीनता एवं ताजगी देते रहना तथा खुले मस्तिष्क से सीधे-सरल प्रश्न करते रहना अत्यधिक महत्वपूर्ण है। आइंस्टीन इस प्रकार के सरल प्रश्न सदैव ही पूछा करते थे तथा इनके उत्तर संबंधित विषय के नये क्षेत्रों में अध्ययन हेतु प्रेरणा-स्रोत सिद्ध होते थे। समय तथा अनुभव के आधार पर किसी घटना की निश्चितता तय हो जाती है। परंतु यह निश्चितता घटना के रहस्यों से पृथक होती है। उदाहरणार्थ, क्या आपने प्रातःकाल में चकाचौंध कर देने वाले प्रकाश को आकाश में देखा है? लोग इसे सूर्य कहते हैं। चूंकि उन्होंने आपको बताया है कि यह सूर्य है तथा आप उसे प्रतिदिन प्रातःकाल आकाश में देख सकते हैं, अतः आप प्रसन्न हैं एवं उन्हें धन्यवाद देते हैं। परिणामतः आपको एक ज्ञान हो जाता है। परंतु उसी सूर्य के संबंध में एक अन्य तथ्य भी है, जिसकी आप अनदेखी कर रहे हैं। वस्तुतः सूर्य का नाम लेते ही तत्क्षण उसका सौन्दर्य विलुप्त हो जाता है। सब इसे सूर्य कह कर निश्चिंत हो जाते हैं। यह असामान्य नहीं अपितु सामान्य हो जाता है। सूर्य की नित्यचर्या है कि यह प्रतिदिन उदय होने वाला सूर्य गर्म तथा उबाऊ (Boring) है। बस यहीं तक सीमित रह जाने पर आप सूर्य के अद्वितीय सौन्दर्य की अनुभूति खो देते हैं अथवा सूर्य से संबंधित अन्य तथ्यों यथा ऊर्जा, ऊष्मा, तूफान, चुम्बकीय क्षेत्र, गुरुत्वाकर्षण आदि आदि के बारे में जानकारी से वंचित रह जाते हैं। हमारे इस विश्वास के साथ कि 'यह सूर्य है' कह देने मात्र से उसका हमें संपूर्ण ज्ञान प्राप्त हो रहा है, यह मान लेना एक समस्या है। इस स्थिति में हम विषय के वास्तविक अभिप्राय अथवा उसकी पृष्ठभूमि में निहित विज्ञान की जानकारी से वंचित रह जाते हैं। केवल 'जीवन' कह देने मात्र से जीवन का वास्तविक सौन्दर्य समझ नहीं आता अपितु जीवन को गहराई से समझना और उसके अपरिचित आनंद की अनुभूति ही जीवन का वास्तविक सौन्दर्य है। ***(....क्रमशः अगले अंक में)***

- डॉ. बिट्ठलदास मूंधड़ा

तर्क के साथ सच को अपनाएं तो उन्नति करेंगे

(राजा राममोहन राय को भारतीय पुनर्जागरण का अग्रदूत और आधुनिक भारत का जनक कहा जाता है। भारतीय सामाजिक और धार्मिक पुनर्जागरण के क्षेत्र में उनका विशिष्ट स्थान है।)

- ***ईश्वर केवल एक है, उसका कोई अंत नहीं। सभी जीवित वस्तुओं में परमात्मा का अस्तित्व है।***
- ***प्रत्येक स्त्री को पुरुषों की तरह अधिकार प्राप्त हो सकें, क्योंकि स्त्री ही पुरुष की जननी है, हमें हर हाल में स्त्री का सम्मान करना चाहिए।***
- ***समाचार पत्रों को पिछड़ी जातियों तक पहुंचाया जाए, ताकि वे ज्ञान के प्रकाश से सराबोर हो सकें।***
- ***यदि मानव जाति किसी के द्वारा थोपे गए विचारों पर ध्यान न दे और तर्क से सत्य का अनुसरण करे, तो उसकी उन्नति को कोई रोक नहीं सकता ।***
- ***धर्म ग्रंथ पढ़ने से जाति भ्रष्ट होने का प्रश्न ही नहीं उठता, मैंने तो कई बार बाइबिल और कुरानशरीफ पढ़ा है, मैं न तो ईसाई बना और न ही मुसलमान बना।***
- ***ईश्वर के लिए सभी एक समान हैं। वह सभी की प्रर्थना समान रूप से स्वीकार करता है।***
- ***हमारे समाज के लोग यह समझते हैं कि नदी में नहाने से, पीपल की पूजा करने से और पंडितों को दान देने से हमारे पाप धुल जाएंगे, वे ऐसा करके अंधविश्वास के अंधेरे में भटक रहे हैं।***
- ***किसी भी कार्य की सफलता एवं असफलता केवल एक व्यक्ति का नहीं बल्कि पूरे समाज का उत्तरदायित्व होता है।***

- राजा राममोहन राय

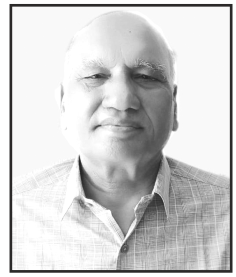

संपादकीय

1 जनवरी को नववर्ष 2025 का शुभारम्भ ! शुभकामनाएं।

काल के सतत प्रवाह में भूत-वर्तमान-भविष्य /दिन सप्ताह माह वर्ष का मानव कल्पित अनुशासन/ जीवन प्रबंधन स्मृति लेखन। समारम्भ नव आशाओं का उत्साहों का/गत की भूलों से ले सीख, नव प्रस्थानों का। ओ महाकाल ! जिसने समझा तुम्हें वही महान/तेरे पटल पर अस्तित्वों का चित्रांकन, संसृति सृजन/प्रकृतियों संस्कृतियों का सम्मेलन। तूही उठने-गिरने आगे-पीछे ऊंचे-नीचे गति-अगति का निर्धारक/ तू बनाता जीवन को रोचक, जीने लायक विरोधाभासों की रचना कर/तुमसे स्वर-व्यंजन-संज्ञाएं-कर्मक्रियाएं-विभक्ति-संधि-समास और अर्ध विराम, नहीं पूर्ण विराम। तू आदि अंत अनन्त, तुम में ही सृजन के नव-नव क्रम, उद्‌भावित उद्‌भासित काव्य तुम, तूही सत्य और सत्य का अन्वेषण... तू ही अंतर निरंतर अभ्यंतर तेरा अभिवादन। ओ महाकाल ! तेरा वंदन-अभिनन्दन।

12 जनवरी को युवा दिवस अर्थात प्रदीप्त दृष्टि, अद्‌भुत मेधा-स्मृति सम्पन्न, तेजस्वी व्यक्तित्व चिरयुवा स्वामी विवेकानन्द का जन्म दिन। जिन्होंने दीर्घकाल से पराधीनता, सामाजिक भेद-भाव, ऊंच-नीच, धर्म के नाम पर पाखंड-आडम्बर, जातिवाद, सामंत-तंत्र और गरीबी से जर्जर होकर शिक्षा, वास्तविक धर्म, आध्यात्मिकता, तार्किकता और आत्मसम्मान विहीन हो सदियों की गुलामी से लाचार एवं दयनीय हो गए देशवासियों का आह्वान किया कि उठो ! जागो ! और तब तक न रुको जब तक लक्ष्य की प्राप्ति न हो जाए। लक्ष्य अर्थात आत्मगौरव, राष्ट्रगौरव, एकता का बल, साहस, पराक्रम की प्राप्ति जो किसी दूसरे को पराजित करने नहीं, मानवता को अपराजित रखने के लिए।

शिकागो (अमेरिका) के आर्ट इंस्टीट्यूट सभागार में 17 दिन चले विश्व धर्म सम्मेलन में 11 सितम्बर 1893 का दिन ऐतिहासिक था, जब हिन्दू धर्मगुरु के रूप में 30 वर्षीय संन्यासी स्वामी विवेकानन्द का आह्लादकारी संबोधन- 'सिस्टर्स एण्ड ब्रदर्स' सुनकर, 'लेडीज एण्ड जेंटलमैन' संबोधन सुनने के आदी हजारों श्रोताओं ने खड़े होकर तालियां बजाकर अर्थात बिग हैंड से सभागार को गुंजायमान कर स्वामीजी का स्वागत किया। वस्तुतः यह मात्र संबोधन नहीं था, अपितु उसमें सनातन धर्म-दर्शन के महान चिंतन के फलस्वरूप अभिव्यक्त 'वसुधैव कुटम्बकम्' का आह्लाद आंदोलित था। इस सम्मेलन के सत्रों में स्वामीजी के

अलावा सभी धर्मगुरु अपने अपने धर्मों के आदर्शों एवं आग्रहों के संबंध में लिखित भाषण पढ़ रहे थे जबकि विभिन्न दिनों को हुए स्वामीजी के चार व्याख्यान अलिखित और मौखिक थे। इन व्याख्यानों में उन्होंने मानवता के मूल तत्व और वैश्विक एकता का संदेश दिया तथा धर्मान्धता और साम्प्रदायिकता के कारण मानवता पर हो रहे हिंसाचार की ओर सम्मेलन का ध्यान आकर्षित किया। अन्य धर्मगुरु अपने-अपने धर्मों की श्रेष्ठता के पक्ष में तर्क दे रहे थे, परंतु स्वामीजी ने हिन्दुत्व के पक्ष में तर्क-वितर्क न कर कहा कि धर्मों को लेकर कूप मंडूक प्रवृत्ति को छोड़ना चाहिए, क्योंकि यही कलह का कारण है। विभिन्न धर्मों के आचार्य या गुरु और अनुयायी अपने-अपने धर्मों को अंतिम सत्य और समस्त विश्व मान बैठे हैं? जबकि हिन्दू अन्य किसी को पापी या काफिर कहकर नकारता नहीं। हम सभी अमृत पुत्र हैं, जरामरण रहित मुक्त नित्यानंद स्वरूप आत्मा हैं। इसाई या मुसलमान को हिन्दू या बौद्ध नहीं हो जाना चाहिए और न हिन्दू या बौद्ध को ईसाई या मुस्लिम। प्रत्येक को चाहिए कि दूसरों के सार भाग को ग्रहण करें। क्योंकि शुद्धता, दयाशीलता, पवित्रता किसी धर्म-सम्प्रदाय विशेष की सम्पत्ति नहीं हैं, सभी धर्मों में श्रेष्ठ उन्नत चरित्र जनों ने जन्म लिया है। सारे धर्म-मत ईश्वर के पास पहुंचते हैं। इस तरह इस सम्मेलन में स्वामीजी ने वेदांत दर्शन के सार्वभौमिक चिंतन का निरूपण किया।

इस सम्मेलन के अंतिम दिन 27 सितम्बर को उपसंहार-सत्र हुआ। स्वामीजी ने आशा व्यक्त की कि इस परिषद (सम्मेलन) के फलस्वरूप धार्मिक पागलपन (कि मेरा धर्म ही श्रेष्ठ है और सब को इसे स्वीकार कर लेना चाहिए, लोभ-लालच जोर-जबरदस्ती से इसे मनवा देना चाहिए) और हिंसाचार तथा उत्पीड़न का अंत होगा। मानवता का दुर्भाग्य कि स्वामीजी के कथन-- 'सभी धर्म समान हैं और हरेक में महापुरुष हुए हैं तथा होंगे' से क्रिश्चियन इत्यादि धर्मों के गुरुओं को डर सताने लगा कि यदि सभी धर्म महान हैं तो इस तरह से तो हमारे धर्म की महानता समाप्त हो जाएगी। अतः वे स्वामीजी के चरित्र हनन का प्रयास कर उनके विचारों के विरुद्ध विषवमन करने लगे। इसका वास्तविक कारण यह था कि इस सम्मेलन के बाद स्वामीजी से प्रभावित लोगों ने इसाई मिशनरियों को धन देना बंद कर दिया जिससे एक साल में ही इनको दस लाख पौण्ड का नुकसान हुआ।

स्वामीजी ने अद्वैत, मनुष्यता, पारस्परिक सहयोग, सेवाभाव, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, चारित्रिक उत्थान आदि पर बल दिया और धर्मांधता का विरोध किया। संभवतः उन्होंने देखा कि ईश्वर विषयक संकल्पना-मान्यता और उसकी भक्ति का दुरुपयोग किया गया। इसके कारण विभिन्न मानव समूहों ने अपने-अपने ईश्वर और अपने-अपने सत्य निर्मित कर पारस्परिक कलह में प्रवृत्त हो गये तथा उसकी भक्ति का दुरुपयोग अपने कुकर्मों को सही सिद्ध करने एवं उनके दंडात्मक फलों से मुक्त होने के लिए किया। इससे मनुष्यता का बड़ा नुकसान हुआ और हो रहा है। इसी से वर्तमान में विज्ञान द्वारा किया जा रहा सार्वभौमिक सत्य का अन्वेषण और उसके स्वरूप निर्धारण का प्रयास अधिक विश्वसनीय एवं उपकारी प्रतीत होने लगा है।

मानवता पर संकट यह है कि जो धर्म हजारों वर्ष पूर्व अपने जन्म के समय के परिवेश, मान्यताओं, विचारों से आज भी चिपके हुए हैं और स्वयं को इंसानियत से ऊपर घोषित कर उनमें युगानुरूप परिवर्तन करने को तैयार नहीं हैं। यहां 2014 में 'आईफा' के मंच पर धर्म के बारे में इरफान खान के वक्तव्य का यह अंश स्मरणीय है-- ... "एक चीज होती है 'चाइनीज विस्पर', कान में कही बात कान-दर-कान बदलती जाती है और सच से दूर हो जाती है। जो बातें हजारों साल पहले कही गई थीं, वो अब कितनी बदल गई हैं, क्या पता। कोई कुछ भी कहता है और आप उसे मानने लगते हैं। हर चीज को पुनः परिभाषित करना जरूरी है। धर्म के बारे में चिंतन इसलिए जरूरी है क्योंकि इसे भगवान से जोड़ दिया गया है, धर्म को अनुशासन बना दिया गया है।" एक मात्र सनातन धर्म (जिसे पता नहीं क्यों हिन्दू धर्म कहा जाने लगा है) धर्म ही है जिसमें धर्म अनुशासन नहीं अपितु

व्यापक मानवता का आधार है जिसमें मानवता या इंसानियत ही सर्वोपरी है और जो निरंतर युगानुरूप परिवर्तनशीलता से सम्पन्न है।

23 जनवरी, पुराणों में वर्णित सप्त चिरंजीवी (अश्वत्थामा बलिर्व्यासो हनुमांश्च विभीषणः, कृपः परशुरामश्च) के बाद अब अष्टम् चिरंजीवी नेताजी सुभाषचन्द्र बोस का जन्म दिवस। स्वतंत्रता संग्राम के एक अप्रतिम योद्धा, अद्‌भुत रूप से कर्मठ, राष्ट्र निष्ठा से ओतप्रोत प्रचेता और अपना सर्वस्व राष्ट्र को समर्पित कर सर्वप्रथम स्वतंत्र भारत की घोषणा कर उसकी सरकार स्थापित करने वाले सुभाषचंद्र बोस का नाम, उसे विस्मृत कर देने के प्रयासों के बावजूद चिरस्मरणीय रहेगा।

26 जनवरी 2025 को गणतंत्र दिवस अर्थात संविधान दिवस की हीरक जयंति पर हार्दिक बधाई और शुभकामनाएं! इस दिन सदियों तक आक्रमणकारियों और राजाओं-नवाबों-सामंतों के शोषक विधानों की गुलामी के बाद हमने, हमारे लिए विधान निर्मित किया और भारत राष्ट्र के निवासियों हम सबने देश के संसाधनों पर समान हक प्राप्त किया, जिनपर पहले कुछ लोगों का अधिकार था। हमने इस संविधान के द्वारा प्रजातंत्र के प्रदेय-- आम आदमी की सत्ता में भागीदारी तथा सत्ता की प्रजा के प्रति जवाबदेही एवं देश के प्रत्येक नागरिक के लिए समान व्यवहार की संहिता को संरक्षित किया। परन्तु इस संविधान की मूल भावनाओं को निरंतर संभाले रखने की आवश्यकता है क्योंकि सत्ता हमेशा स्वार्थ केंद्रित होती है, जैसे कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के कुछ दशकों में ही संवैधानिक समानता में विशिष्ट समानताओं को जोड़ दिया गया और इसी तरह बेकाबू भ्रष्टाचार चिंता का विषय है। जरूरी है कि हम सजग रहें, सत्ता पर प्रजा का अंकुश जरूरी है।

- डॉ. बाबूलाल शर्मा

सूरज की तरह चमकना चाहते हो, तो पहले सूरज की तरह जलो

(एपीजे मिसाइल मैन और जनता के राष्ट्रपति के रूप में जाने जाते हैं। भारतीय गणतंत्र के ग्यारहवें निर्वाचित राष्ट्रपति, वैज्ञानिक और इंजीनियर)

★ इससे पहले कि सपने सच हों आपको सपने देखने होंगे।
★ शिक्षण एक बेहद महान पेशा है जो किसी व्यक्ति के चरित्र, क्षमता, और भविष्य को आकार देता है। अगर लोग
★ मुझे एक अच्छे शिक्षक के रूप में याद रखते हैं, तो मेरा लिए ये सबसे बड़ा सम्मान होगा।
★ **अगर तुम सूरज की तरह चमकना चाहते हो तो पहले सूरज की तरह जलो।**
★ सपने वो नहीं हैं जो आप नींद में देखें, सपने वो हैं जो आपको नींद ही नहीं आन दें।
★ हमें हार नहीं माननी चाहिए और हमें समस्याओं को खुद को हराने नहीं देना चाहिए।
★ **मैं इस बात को स्वीकार करने के लिए तैयार था कि मैं कुछ चीजें नहीं बदल सकता।**
★ आइए, हम अपने आज का बलिदान कर दें ताकि हमारे बच्चों का कल बेहतर हो सके।
★ इंसान को कठिनाइयों की आवश्यकता होती है, क्योंकि सफलता का आनंद उठाने के लिए ये जरूरी हैं।
★ क्या हम यह नहीं जानते कि आत्म सम्मान आत्म निर्भरता के साथ आता है?
★ **इंतजार करने वाले को उतना ही मिलता हैं, जितना कोशिश करने वाले छोड़ देते हैं।**
★ यदि हम स्वतंत्र नहीं हैं तो कोई भी हमारा आदर नहीं करेगा।
★ जिस दिन हमारे सिग्नेचर ऑटोग्राफ में बदल जाएं, उस दिन मानिए आप कामयाब हो गए।

- एपीजे अब्दुल कलाम

लोकोक्तियों का स्रोत और वैशिष्ट्य

डॉ. मथुरेश नन्दन कुलश्रेष्ठ

लोकोक्तियाँ अपने समग्र रूप में ऐसी उक्तियों को कहा जाता है जिनके रचनाकार का पता नहीं होता या वे लोक जीवन में इतने खपे होते हैं कि साहित्य और काव्य-जगत के सारस्वत मण्डल से उनका कोई सम्बन्ध नहीं होता। घाघ और भड्डरी ऐसे ही नाम हैं जो साहित्य जगत में कोई स्थान नहीं रखते परन्तु लोक जीवन में इनकी भविष्यवाणियों और और सामाजिक व्यवहार से संबंधित उनकी सैकड़ों उक्तियाँ ग्राम्य जीवन में व्यक्ति-व्यक्ति की जबान पर चढ़ी हुई हैं। तथ्य कथन और व्यावहारिकता के साथ-साथ कथन को समर्थन देने, शक्ति प्रदान करने और प्रभावात्मक बनाने में लोकोक्तियों का अत्यधिक योगदान होता है।

लोकोक्तियों के विषय में कहा जाता है कि लोकोक्ति एक व्यक्ति का उक्ति-वैचित्र्य होता है परन्तु उससे अनेक व्यक्ति बुद्धिमत्ता प्राप्त करते हैं - 'a provenb is a usit of one and the wisdom of many'. तात्पर्य यह कि लोकोक्ति की रचना तो कोई न कोई एक व्यक्ति ही करता है परन्तु इसका लाभ सर्वसामान्य समाज को मिलता है। वह व्यक्ति ज्ञात और प्रख्यात कवि भी हो सकता है और सर्वथा अज्ञात भी। लोकोक्ति में समाज के लम्बे अनुभव को एक ऐसे छोटे वाक्य में निबद्ध कर दिया जाता है जो गली-कूचों में भी प्रयुक्त होने लगता है। लोकोक्ति एक संक्षिप्त सूत्रात्मक कथन होती है जो अपने कथ्य के कारण लोकप्रिय हो जाती है। एक श्रेष्ठ कवि के काव्य में अपेक्षित सभी गुण लोकोक्ति में होते हैं। अतः कवियों की रचनाओं से वे सहज रूप में उद्भूत भी होती हैं और चली आती लोकोक्तियों का प्रयोग भी काव्य में होता है। कवि का इतिहास से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है अतः अनेक ऐतिहासिक अवसर कवि की उक्तियों में बंधकर लोकोक्ति बन जाते हैं। 'मत चुकै चौहान', 'कोउ नृप होइ हमें का हानि', 'पराधीन सपनेउ सुख नाहिं' जैसे अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। कुछ अनुभव ऐसे होते हैं जो सार्वकालिक और सार्वदेशिक होते हैं अतः एक ही मन्तव्य को व्यक्त करने वाली लोकोक्तियाँ शब्दान्तर से अनेक देशों की भाषाओं में मिल जाती हैं। उदाहरणार्थ हिन्दी और अंग्रेजी की कुछ लोकोक्तियों को प्रस्तुत किया जासकता है :-

1. एक पंथ दो काज, to kill two birds by one arrow.

2. आज नकद, कल उधार, better one bird in the hand tham two in the bush.

3. कुत्ते भौंकते हैं, हाथी चलता रहता है, The moon does not heed the barring dogs.

4. जैसे को तैसा, Tit for tat.

5. अन्त भला तो सब भला, All is well that ends well.

भारत की किसी भाषा में प्राप्त होने वाली लोकोक्ति शब्दान्तर से भारत की अन्य भाषाओं और बोलियों में प्राप्त हो जाती है। 'गोद में लड़का, गाँव में ढिंढोरा' लोकोक्ति पंजाबी में -'कुच्छड़ कुड़ी ते कौर ढिंढोरा', बंगला में - 'कोले छेले सहरे टेडरा' और ब्रज, भोजपुरी आदि में थोड़े रूपान्तर से मिल जाती है। सांस्कृतिक आदान-प्रदान में इनका भी आदान-प्रदान होता है। काव्य की तरह लोकोक्तियाँ भी अपने शाश्वत धर्म तथा युग-धर्म का निर्वाह करती है। यही कारण है कि लोकोक्तियाँ अपने सृजन-काल में समाज का दर्पण भी होती हैं। अनेक बार उनका उद्भव भी अपने युग के इतिहास से होता है। यह लोकोक्ति और काव्य का सामान्य लक्षण है।

लोकोक्ति में फैलने की असाधारण क्षमता होती है और उसकी रचना अधिकांशतः अज्ञात रचनाकार द्वारा होती है अतः यह मूल रूप में लोक साहित्य का ही एक हिस्सा होती है परन्तु इसका प्रयोग विद्वान से विद्वान व्यक्ति अपनी भाषा में करके अपनी भाषा को सटीक, मारक शक्ति से युक्त और सूत्रात्मक अभिव्यक्ति की क्षमता प्रदान करता है। लोकोक्ति में एक ओर तो विद्युत जैसी चमक होती है और दूसरी ओर ज्ञान के श्रेष्ठ रूप को लम्बे काल तक सुरक्षित रखने की शक्ति होती है। एक पीढ़ी सूत्र रूप में अपने लम्बे अनुभवों को दूसरी पीढ़ी को सौंपती है और दूसरी पीढ़ी उनका प्रयोग कर अपने नये अनुभवों को सूत्र रूप देकर, कहावतों का रूप देकर आगामी पीढ़ी को देती है। इस प्रकार एक परम्परा बन जाती है। परम्परा तभी बनती है जब हम उसमें कुछ जोड़ते हैं। प्राचीन ईसाई ग्रन्थ Old Testament में लोकोक्तियों का भण्डार बताया जाता है जो मिस्त्र के प्राचीन ग्रन्थों का प्रभाव है। इसी प्रकार यहूदियों के प्रार्थना-साहित्य में कानून के पण्डितों का ज्ञान प्रचुर मात्रा में भरा हुआ है जिसका समय ईसा से बहुत पहले का है। इसी प्रकार कुरान शरीफ में 'मिसाल' के रूप में लोकोक्तियों की प्रचुर संख्या है। यही स्थिति वेदों में भी है। तात्पर्य यह कि लोकोक्तियाँ प्राचीन ज्ञान को सुरक्षित रखने में सहायक होती हैं और आगे की पीढ़ी तक उसे पहुंचाती हैं। इस दृष्टि से भाषा-विज्ञान के विद्वानों के लिए लोकोक्तियाँ विशिष्ट महत्व रखथी हैं। भाषा के अनेक शब्द प्रयोग में न आने पर भी लोकोक्तियों में सुरक्षित रहते हैं। 'मन चंगा तो कठौती में गंगा' में 'कठौती' शब्द आज भी सुरक्षित है जब कि आज के बर्तनों में उसका कोई स्थान नहीं है। बच्चा तो क्या बड़े भी आज इस शब्द से अपरिचित हैं।

लोकोक्तियों के परम्परा के रूप में निरन्तर चले आते रहने का प्रमुख कारण यह है कि उनमें जीवन की सच्चाई व्यक्त होती है। यह सच्चाई सीधे-सीधे लोक जीवन से सम्बद्ध होती है। क्योंकि जीवन में विभिन्न क्षेत्रों के व्यक्तियों के अनुभव भी भिन्न होते हैं अतः हमें हर भाषा में ऐसी लोकोक्तियाँ प्राप्त होती हैं जो एक दूसरे के ठीक विपरीत सिद्धान्त का प्रतिपादन करती हैं, परन्तु यह विपरीतता जीवन की वास्तविक विपरीतताएँ हैं। दोनों ही प्रकार के अनुभव लोकसिद्ध रूप में प्राप्त होते हैं। 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः' भी इतना ही बड़ा सच है जितना कि 'त्रियाश्चरित्रं पुरुषस्य भाग्यम्, न जानन्ति देवाः कुतो मनुष्यः।' लोकोक्तियों में प्राप्त जीवन की सच्चाई मीठी भी होती है और तीखी भी - 'Pleasantly sharp and spicy taste'। जीवन की सच्चाई के साथ-साथ ये अपनी अभिव्यक्ति में सरल और सुग्राह्य होती हैं और भाषा में आकर्षण पैदा करती हैं। लोकोक्तियों में प्राप्त शिक्षा का तत्व भी उसके परम्परा में ढलते रहने में सहायक होता है।

जापान में शिक्षा देने के लिए ही नहीं मनोरंजन में भी इसका प्रचुर प्रयोग होता है। वहां ताश के प्रत्येक पत्ते पर एक कहावत अंकित हुआ करती है।

जीवन की सच्चाई कथन की संक्षिप्तता, शिक्षा देने की क्षमता, राष्ट्रीय और सांस्कृतिक तत्वों को सुरक्षित रखने की प्रकृति, उक्ति वैचित्र्य अर्थात् अभिव्यक्ति की कुशलता, इन सभी गुणों के होते हुए भी कोई भी उक्ति बिना लोकप्रियता के लोकोक्ति नहीं बन सकती। यह उसका प्राथमिक वांछित गुण है। लोक में प्रचलित होने के कारण ही वह लोकोक्ति कहलाती है। लोकप्रियता के लिए जीवन की सच्चाई और गरिमा उसके लिए आवश्यक गुण है। प्रचलित रहने के कारण ही वह लोक की उक्ति अर्थात् लोकोक्ति कहलाती है। प्रचलित रहने के कारण इनके रूप और अर्थ में भी परिवर्तन होता रहता है। यह परिवर्तन स्थान और काल दोनों से प्रभावित होता है। काव्य के लिए भी यह सत्य है परन्तु अनेक कवियों के काव्य में जीवन की सच्चाई और चिन्तन की गहराई होने पर भी उनकी वही कुछ पंक्तियाँ लोकोक्ति का रूप लेती हैं जो जनता के मुँह पर चढ़ जाती हैं। जहाँ तक लोकोक्तियों और कहावतों का काव्य में प्रयोग का प्रश्न है संसार की सभी भाषाओं में उनका प्रयोग पाया जाता है। संस्कृत का पुराण साहित्य लोकोक्तियों से भरा पड़ा है। वे सभी कहावतें पाली प्राकृत और अपभ्रंश की यात्रा करती हुई भारत की सभी आधुनिक भाषाओं में व्याप्त हो गई हैं। 'अति सर्वत्र वर्जयेत', 'उद्योगं पुरषस्य लक्षणम्', 'विनाशकाले विपरीत बुद्धिः', 'मौनं सर्वार्थ साधनम्', 'क्षमा वीरस्य भूषणम्' आदि लोकोक्तियों का हिन्दी काव्य में इतना अधिक प्रयोग हुआ है कि लगता ही नहीं कि ये संस्कृत की लोकोक्तियाँ हैं, हिन्दी की इतनी अपनी हो गई हैं ये। दूसरी ओर संस्कृत के विकास क्रम में पड़ने वाली भाषाओं ने अपनी कहावतों का भी सृजन किया है।

लोकोक्तियों के प्रचुर प्रयोग और सृजन होते रहने के बाद भी काव्यशास्त्र में इन पर नाम मात्र का विचार हुआ है। ग्यारहवीं शताब्दी में भोजराज ने अपने ग्रन्थ 'सरस्वतीकण्ठाभरण' में इसे अपने द्वारा विवेचित 'छाया' नामक अलंकार के एक भेद के रूप में प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार छाया अलंकार के छः भेद हैं -- लोकोक्ति, छेकोक्ति, अर्भकोक्ति, उन्भत्रोक्ति, परोक्ति और मत्तोक्ति।[1] भोज ने लोकोक्ति शब्दालंकार का उदाहरण कालिदास के इस श्लोक के रूप में प्रस्तुत किया है :-

शापान्तो मे भुजगशयनादुत्थे शार्ङ्गपाणौ।
मासानेतान्गमय चतुरो लोचने मीलियित्वा।।।

इस उदारण में 'लोचने मीलियत्वा' को लोकोक्ति प्रयोग का उदाहरण बताया गया है। यक्ष का प्रेमिका के लिए सन्देश है कि मेरी शाप अवधि के चार महीने ही शेष हैं। उन्हें आँख भींचकर निकाल दो। भोज ने लोकोक्ति शब्दालंकार का इतना ही वर्णन किया है। उनके उपरान्त 16वीं, 17वीं शताब्दी के सन्धिकाल में अप्पय दीक्षित ने अपने अलंकार ग्रन्थ 'कुवलयानन्द' में लोकोक्ति अलंकार के प्रयोग को दो अलग-अलग अलंकारों के रूप में प्रस्तुत किया है। एक तो सीधे-सीधे लोकोक्ति अलंकार के रूप में, जिसमें कहा गया है कि जहाँ लोकप्रवाद (मुहावरा, लोकोक्ति आदि) का प्रयोग किया गया हो वहाँ लोकोक्ति अलंकार होता है।[2] उनके अनुसार लोकोक्ति अलंकार में लोकोक्ति का सीधा-सीधा लोकमान्य अर्थ प्रयोग होता है परन्तु उन्होंने इसके तुरन्त बाद एक अन्य अलंकार का वर्णन किया है वह है छेकोक्ति[3] जिसमें लोकोक्ति व्यंजना का आधार बनकर आती है। उदाहरण में 'साँप ही साँप के पाँव जानता है' लोकोक्ति का प्रयोग हुआ है। वस्तुतः यहाँ यह लोकोक्ति बोधव्य वैशिष्ट्य आर्थी व्यंजना का आधार बन गई है। दीक्षित ने इसका एक अन्य उदाहरण प्रस्तुत किया है -

'मलयमरुतां व्राता याता विकसितमल्लिका,
परिमल भरो भग्नो ग्रीष्मस्त्वयुत्सहसे यदि।

घन् ! घटयतं त्वं निःस्नेह य एव निवर्तने,
प्रभवति गवां कि निश्छन्नं स एव धनंजयः ।।'

कोई सखी विरहिणी नायिका के प्रति नायक को उन्मुख करने के लिए बादल के बहाने कह रही है - "मलय पर्वत से आने वाले दक्षिणानिल के समूह चले गए हैं (नायिका ने वसन्त ऋतु विरह में बिता दी है), खिली हुई मल्लिका के सुगन्ध के भार वाला ग्रीष्म भी समाप्त हो गया है। हे बादल, यदि तुम उत्साह करो तो उस स्नेह शून्य नायक को इससे मिला सकते हो। शत्रुओं द्वारा हरि गई गायों को लौटाने में जो समर्थ हो वही धनंजय कहलाता है।" यहाँ चतुर्थ चरण में एक ओर अर्जुन के द्वारा राजा विराट की गायों को लौटा लाने की पौराणिक कथा की ओर संकेत किया है और दूसरी ओर यह उक्ति आंध्रप्रदेश की प्रसिद्ध लोकोक्ति भी है। अपने वृत्तिभाग में अप्पय दीक्षित ने इस उदाहरण की व्याख्या इस प्रकार की है -- "धन की इच्छा से विदेश गये नायक की विरहिणी पत्नी को सखी के इस वचन में 'जो गायों को लौटाने में समर्थ हो, वही धनंजय है' इस आन्ध्र लोकोक्ति का प्रयोग हुआ है। यहाँ यह अभिप्राय है कि अत्यधिक सौन्दर्यशक्ति की नायिका को छोड़कर धन की इच्छा से विदेश गया नायक रसज्ञ न होने के कारण बैल के समान मूर्ख है। उसे वह ला सकता है जो उसे धन से विमुख बना सके अतः वह धन का विजयी होगा, इस अर्थान्तर की प्रतीति इस लोकोक्ति से हो रही है। अतः यहां छेकोक्ति अलंकार है। यों छेकोक्ति का विवेचन भोज ने भी किया है परन्तु उसका लोकोक्ति से कोई सम्बन्ध नहीं है।

आगे चलकर केशव मिश्र ने अपने ग्रंथ 'अलंकारशेखर' में लोकोक्ति को उक्ति के एक भेद के रूप में प्रस्तुत किया है। उन्होंने काव्य के तीन तत्व माने हैं -- रीति, उक्ति और मुद्रा।[4] इनमें से उक्ति को चार भागों में विभक्त कर - "लोमच्छेकार्यभोन्मत्तभेदादुक्तिश्चतुर्विधो"[5] कहकर लोकोक्ति के उदाहण के रूप में भोज और अप्पय दीक्षित द्वारा प्रस्तुत कालिदास का उदाहरण 'शायान्तो.....' इत्यादि प्रस्तुते कर दिया है। यह नाममात्र का विवेचन है। इनका दूसरा ग्रन्थ 'अलंकार सर्वस्व' अप्राप्य है। जहाँ तक आज के काव्य-शास्त्रियों का प्रश्न है, उनकी अलंकार-कल्पना तो पूर्ववर्ती अलंकारिकों से एकदम अलग है। वह इस शब्द के अन्तर्गत समस्त काव्य, वर्ण्य और शैली दोनों को समाहित करती है। राधावल्लभ त्रिपाठी, हर्षदेव माधव और डॉ. ब्रह्मानन्द ने लोकोक्ति पर कोई विचार नहीं किया है। यहाँ यह कहना उचित होगा कि अलंकार के जो मूल तत्व -- सादृश्य, समर्थन, विरोध और यथातथ्य वर्णन हैं। वे सभी लोकोक्तियों में भी प्राप्त होते हैं और अनेक अलंकारों के रूप में कवि लोकोक्तियों का प्रयोग करते हैं। रवि टेकचन्दानी ने 14 अलंकारों के रूप में इनका प्रयोग प्रस्तुत किया है। कवि द्वारा चली आती हुई लोकोक्ति का प्रयोग एक अलग बात है, जो प्रत्येक कवि करता है परन्तु उसकी स्वयं की रचना के किसी अंश का लोकोक्ति बन जाना कवि की लोकप्रियता, अनुभव की सत्यता और अभिव्यक्ति की कुशलता का प्रमाण होती है। स्पष्ट है जब तक कवि लोकप्रिय न होगा और उसे पढ़ा नहीं जायेगा तो तब तक उसकी पंक्तियाँ सामने कैसे आयेंगी। परन्तु दुनियाँ काव्य तक ही सीमित नहीं है, उसमें और भी बहुत कुछ है जिसमें से लोकोक्तियाँ उद्भूत होती हैं। अधिकांश लोकोक्तियाँ अपनी मार्मिकता और सन्दर्भयुक्तता के कारण छोटे या अज्ञात लोक कवियों की रचनाएँ होते हुए भी लोकोक्ति बन जाती हैं।

संस्कृत के कवियों में कालिदास की अनेक उक्तियाँ लोकोक्ति के रूप में प्रचलित हो गई। स्वयं उनके विषय में कही गयी उक्ति, 'उपमा कालिदासस्य' साहित्य जगत में प्रसिद्ध है। शंकराचार्य ने अपनी रचनाएँ संस्कृत में कीं परन्तु उनकी पंक्ति 'भज गोविन्दं भज गोविन्दं, गोविन्दं भज

मूढ़मते' आज भारत के सामान्य व्यक्ति की जुबान भी मिल जाती है। ठीक उसकी विपरीतार्थक चार्वाक की उक्ति -'यावत् जीवेत् सुखं जीवेत्, ऋणम् कृत्वा घृतं पीवेत्' एक अत्यन्त प्रचलित लोकोक्ति है। यह लोकोक्ति इतनी अधिक लोकप्रिय है कि प्रत्येक मस्ती के अवसर पर सुनी जा सकती है। वाल्मीकि की पंक्ति 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसि' उक्ति देशभक्ति के प्रसंग में कहीं भी सुनी जा सकती है। (मुझे जहाँ तक स्मरण है यह पंक्ति 'वाल्मीकि रामायण' की नहीं 'उत्तर रामायण' की है -संपादक)।

लोकोक्तियों का एक महत्वपूर्ण उत्स महाकाव्य या कथा काव्य का कोई प्रसंग विशेष होता है। मुक्तक में भी वह किसी पौराणिक या ऐतिहासिक घटना या व्यक्ति से जुड़ी हो सकती है। वाल्मीकि की उपर्युक्त पंक्तियाँ विभीषण द्वारा राम के लंका में ही राज्य करने और रहने का आग्रह करने पर राम द्वारा कही गयी हैं परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि इस पंक्ति का लोकोक्ति के रूप में प्रयुक्त करने वालों को यह प्रसंग याद भी हो। 'मत चुकै चौहान' लोकोक्ति का प्रयोग उचित अवसर को न छोड़ने के अवसर पर सावधान या प्रेरित करने के लिए होता है, ध्येय पर तुरंत झपटने के लिए होता है। यह पंक्ति जो कहावत बन गई चंदवरदाई कृत महाकाव्य 'पृथ्वीराज रासो' में मोहम्मद गोरी को पृथ्वीराज द्वारा शब्दभेदी बाण माकर हत्या करने के प्रसंग से जुड़ी है। इस दृष्टि से तुलसी का काव्य अनेक प्रचलित लोकोक्तियों के रूप में उपस्थित है। 'कोउ नृप होहि हमें का हानि' के साथ पूरा का पूरा कैकेयी-मंथरा संवाद जुड़ा हुआ है। 'प्राण जाहि पर वचन न जाही' उक्ति घर-घर, गाँव-गाँव में प्रचलित है जो 'राम वन-गमन' के प्रसंग से जुड़ी हुई है। 'पराधीन सपनेहु सुख नाहीं' यद्यपि अत्यन्त प्रचलित लोकोक्ति है परन्तु बहुत कम को यह ज्ञात है कि यह मन्थरा का कथन है जो बहुत अप्रिय प्रसंग हैं, परन्तु इतना सटीक, अनुभव-जन्य और व्यावहारिक है कि लोक-जीवन ने उसे अप्रियता से अलग करके अपनी चेतना में बसा लिया है। राम वनगमन, लक्ष्मण-परसुराम संवाद और अंग-रावण संवाद की अनेक उक्तियाँ लोकोक्ति बनकर फैली हुई हैं।

अनेक लोकोक्तियों का उत्स कवि का जीवन-दर्शन होता है। कवि अपने जीवन-दर्शन को जीता है अतः उससे सम्बन्धित उक्ति में अनुभूति, दर्शन और सम्प्रेषणीयता एक जूट होकर लोक जीवन को प्रभावित करती है। कबीर का स्थान भारतीय लोक-जीवन में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उनकी अनेक उक्तियाँ अपनी तीव्रता और सच्चाई के कारण प्रसिद्ध हैं। 'जो बाम्हन तुम बाम्हन जाये और राह काहे नहीं आए' अत्यन्त कटु उक्ति होते हुए भी लोकोक्ति बन गयी। 'ना काहू सौं दोस्ती ना काहू सौं बैर', 'यह तो घर है प्रेम का खाला का घर नाय, सीस उतारे भूंई धेरै, चलै हमारे साथ', 'गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, का के लागूँ पाँये, बलिहारी गुरु आपनो गोविन्द दियो बताय', 'जाको राखै साइयाँ, मारि सकै नहिं कोय', 'जिन ढूँढा तिन पाइयाँ गहरे पानी पैठ' आदि पंक्तियों का प्रयोग लोकोक्ति के रूप में किया जाता है। किसी भी कवि के अनेक पद्यांश, छन्द या छन्दांश भले ही कितने ही लोकप्रिय क्यों न हों, वे तब तक लोकोक्ति नहीं बन पाते जब तक उनका उपयोग तत्सम अवसर पर करने का चलन प्राप्त नहीं होता। इस दृष्टि से तुलसी और सूर दोनों ही हिन्दी के सर्वाधिक लोकप्रिय कवि हैं और उनकी अनेक उक्तियाँ व छन्द अत्यन्त लोकप्रिय हैं परन्तु सभी लोकोक्ति नहीं बन सकी। तुलसी के कुछ दोहे -- 'राम-राम कहि राम कहि....', 'उदित उदय गिरिमंच पर....', 'बहु धनुही तोरी लरिकाई...' 'मन जाहि राचे....' आदि अत्यन्त प्रिय, अनेक अवसरों पर गेय और लोकप्रिय हैं परन्तु इनमें समर्थन, विरोध, नीति या परिस्थिति का तत्व नहीं है अतः इन्हें लोकोक्ति नहीं कहा जा सकता। परन्तु 'मो सम दीन, न दीन हित तुम समान रघुवीर', 'राम जपु, राम जपु, राम जप बावरे', 'ब्रह्म नाम तें नाम बड़ बलदामु फल चारि' 'धर्म न अर्थ न काम

रुचि...., 'सकल पदारथ हैं जगमाहीं.....' आदि उक्तियाँ लोकोक्तियाँ बन गई हैं। 'दोहावली' के लगभग प्रत्येक दोहे में कोई न कोई नीति तत्व या आचरण-सिद्धान्त निहित है परन्तु सभी लोकोक्ति नहीं बन सकी क्योंकि वहाँ लोकप्रियता का अभाव है। इसी प्रकार 'मैया कबहु बढ़ैगी चोटी', 'मैया मैं नहिं माखन खायो', मैया मोहे दाऊ बहुत खिजायो' आदि अत्यन्त लोकप्रिय पंक्तियाँ लोकोक्ति नहीं बन सकती हैं क्योंकि इनमें समर्थन, विरोध, नीति या परिस्थिति का संकेत नहीं है परन्तु सूर की ये पंक्तियाँ- 'जैसे उड़ि जहाज को पंछी पुनि जहाज पै आवें' 'बहरो सुनै मुक पुनि बोलै', 'ऊधो मन नाहिं दस बीस' आदि पंक्तियाँ लोकोक्तियां बन गई हैं। कुंभन दास की एक पंक्ति 'संतन कहा सीकरी सौं काम ......' उक्ति एक ओर उनके जीवन से जुड़ी हुई है और दूसरी ओर राजनीति और साहित्यकारों के सम्बन्धों के बीच एक लोकोक्ति बन गई है।किसी नीति त्तव की स्थापना या किसी शिक्षा का सम्प्रेषण लोकोक्ति का महत्वपूर्ण तत्व है। सम्पूर्ण भक्ति काव्य में ऐसा नीति-तत्व भरा पड़ा है जो लोकोक्ति के रूप में प्रचलित है।

रीति काल के कुछ विशिष्ट कवि इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। केशव की उक्ति - 'केशव केसन अस करी......' और बिहारी की उक्ति - 'कनक-कनक तैं सौ गुनौं......' इत्यादि लोकोक्ति के रूप में प्रसिद्ध हैं परन्तु इस दृष्टि से वृन्द का स्थान अन्यतम है। उनकी नीति सतसई की अनेक पंक्तियाँ लोकोक्ति बनकर जनता की जुबान पर चढ़ गई हैं। **(1)** तेते पाँव पसारिए, जेती लांबी सौर।। 19।। **(2)** जैसी चलै बयार तब तैसी दीजै ओट ।। 23।। **(3)** करवे भेषज बिन पिए मिटै न तन की ताप ।।26।। **(4)** जैसे हांडी काठ की चढ़ै न दूजी बार ।। 35।। **(5)** वा सौने कौं जारिए जासौं फाटै कान ।।36।। **(6)** धोए हू सौ बार के काजर होए न सेत ।। 71।। वृन्द की 'नीति-सतसई' एक Studied effort नहीं है अतः संस्कृत के नीति काव्य का उस पर प्रभाव लोक के माध्यम से आया। इसके सात सौ दोहों में कवि ने अर्थान्तरन्यास, दृष्टान्त और उदाहरण अलंकार का खुलकर प्रयोग किया है। कहीं तो उनका कथ्य लोकोक्ति बन गया है और कहीं उसके समर्थन में प्रयुक्त उपमान ने कहावत का रूप ले लिया है। नीति काव्य की दृष्टि से उनका काव्य प्रशंसनीय है परन्तु सात सौ दोहों में से 10-15 ही दोहों के अंश लोकोक्ति का रूप ले पाये हैं।

लोक में जिन लोकोक्तियों का सर्वाधिक प्रयोग होता है वे जनता की नित्यप्रति की आवश्यकताओं और परिस्थितियों से जुड़ी होती हैं। इस दृ,टि से ऋतु के आकलन हेतु घाघ और भड्डरी यह दो कवि ग्रामीण स्तर पर गहराई के साथ जुड़े हुए हैं, परन्तु साहित्य में उनको स्थान नहीं मिल पाया है। नित प्रति जीवन से जुड़े एक कवि गिरधरदास हैं जिनकी कुण्डलियों के अनेक अंश कहावत बन गये हैं। वर्षा सम्बन्धी भविष्यवाणियों के घाघ भड्डरी द्वारा प्रस्तुत कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं

(1) शुकरवार की बादली रहे शनीचर छाय।, ऐसा बोले भड्डरी, बिन बरसे न जाय।।

(2) तीतर बरणी बादली, विधवा अंजन रेख। बाबरसै आ घर करै, या में मीन न मेख।।

(3) उतरे जेठ जो बोलै दादुर, कहै भड्डरी बरसे बादर।

(4) रात में बोले कागला, दिन में बोले स्यार। या होवे झरबदरी, या फिर देस उजार।।

गिरधर की कुण्डलियों के जो अंश कहावत बनकर जुबान पर हैं उनमें से कुछ इस प्रकार हैं --

(1) लाठी में गुण बहुत हैं, सदा राखिये संग। गहरी नदी नाला जहाँ, तहाँ बचावे अंग।।

(2) पानी बाढ़ै नाव में, घर में बाढ़ै दाम। दोनों हाथ उलीचिए, यही सयानो काम।।

(3) रम्भा झूमत हों कहा, थोरे दिन के हेत। तुम से केते ह्वै गए, अरु ह्वै हैं इहि खेत।।

परिस्थिति विशेष से सम्बन्धित अनेक कहावतें लोक में प्रचारित हैं। जैसे - 1. कंगाली में आटा गीला, 2. नाच न जाने आँगन टेढ़ा, 3. सूत न कपास कोरिया सूँ लट्ठम लट्ठ, 4. नंगी नहाएगी क्या और निचौड़ेगी क्या, 5. अधजल गगरी छलकत जाय, 6. इधर कुआँ उधर खाई इत्यादि। परन्तु इनकी तीव्रता और लोकप्रियता स्पष्ट होते हुए भी इनके रचयिताओं को ढूंढ़ पाना कठिन है। हाँ, इनमें से प्रत्येक के पीछे छिपी एक कहानी की कल्पना की जा सकती है जहाँ से इनका जन्म हुआ है। शिक्षा के प्रचार-प्रसार और काव्य द्वारा सामाजिक राजनैतिक परिस्थितियों पर किये गये चित्रण ने आधुनिक युग में कवियों की अनेक पंक्तियाँ किसी न किसी सन्दर्भ को लेकर लोकोक्ति बन गई हैं। ये लोकोक्तियाँ शिक्षित समुदाय तक सीमित हैं, यह एक अलग बात है -

1. हम कौन थे क्या हो गए और क्या होंगे अभी, आओ विचारें आज मिल करके समस्याएं। - मैथिली शरण गुप्त

2. नारी तुम केवल श्रद्धा हो - जयशंकर प्रसाद

3. मैं गीत बेचता हूँ । - भवानी प्रसाद मिश्र

4. पल-पल परिवर्तित प्रकृति वेश। - सुमित्रानन्दन पंत

5. सिंहासन खाली करो कि जनता आती है। - दिनकर

6. निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल। - भारतेन्दु

7. कौन कहता है आसमान में छेद नहीं हो सकता, एक पत्थर तो तबियत से उछालो यारो। - दुष्यंत

8. आज रचना नहीं सम्बन्ध छपता है। - देवेन्द्र दीपक

9. अदालत में न मुद्दई जीतता है न मुद्दायली सिर्फ वकील जीतता है।

प्राचीन काव्य ने जितनी कहावतों का सृजन किया उतना आधुनिक काव्य ने नहीं, न ही वह अब कर पा रहा है। इसका मुख्य कारण आज काव्य का जन-सम्पर्क टूट जाना है। वह जनसामान्य के लिए न होकर, विशिष्ट वर्ग के लिए है अतः उतनी लोकप्रियता प्राप्त नहीं कर पा रहा है। प्राचीन काव्य अपने आभिजात्य में भी, शास्त्रीयता में भी लोक जीवन से जुड़ा रहा परन्तु आज का काव्य जन सामान्य के लिए न होकर विशिष्ट वर्ग के लिए लिखा जा रहा है। वह पहले की अपेक्षा अधिक ऐकैडेमिक हो उठा है अतः उसे उतनी लोकप्रियता प्राप्त नहीं हो पा रही है कि आज के कवि की पंक्तियाँ लोकोक्तियाँ बन सकें। अज्ञेय, मुक्तिबोध आदि प्रतिष्ठित कवि होते हुए भी लोक कवि नहीं बन सके। फिर भी काव्य-सृजन में से लोकोक्तियों के निर्माण की प्रक्रिया कुछ न कुछ तो चलती ही रहती है। उदाहरण के रूप में दुष्यन्त का नाम लिया जा सकता है।

अन्त में लोकोक्तियों के प्रचार-प्रचार के विषय में कुछ कहकर यह लेख समाप्त करूँगा। इस दृष्टि से लोकोक्तियों को तीन भागों में बाँटा जा सकता है। एक तो शाश्वत तत्वों की ओर संकेत करने वाली लोकोक्तियाँ हैं जो किसी न किसी रूप में थोड़ी बहुत परिवर्तित होकर निरन्तर देश और काल में व्यक्त रहती हैं। जैसे- 'बाप बड़ा न मइया, सबसे बड़ा रुपैया', अब पछताये होत का जब चिड़िया जुग गई खेत', 'जाके पग न फटी बिवाई वो क्या जानै पीर पराई' आदि। दूसरे वर्ग में वे लोकोक्तियाँ रखी जा सकती हैं जिन्हें काल सीमित कहा जा सकता है। उदाहरणार्थ मेडिकल और सर्जरी की तुलना में आयुर्वेद के पिछड़ जाने के कारण आयुर्वेद विषयक दादी-नानी के नुस्खे जो लोकोक्तियाँ बनकर व्यक्ति-व्यक्ति की जुबान पर रहते थे आजकल वे गर्त में चले गये। दशमलव प्रणाली लागू होने पर मण सेर छटांक और रुपये आना पाई से सम्बन्धित वे लोकोक्तियाँ जिनके आधार पर तोला-माशा-रत्ती तक का हिसाब लगा लिया जाता था आज उन्हें एकत्र करना भी कठिन हो गया है। 'जितने रुपये मण उतने आने का

ढाई सेर' - जैसे वाक्य आज सुनाई नहीं पड़ते। राजनैतिक क्षेत्र की लोकोक्तियाँ भी इस प्रकार के अन्तर्गत आ जाती हैं। 'मजबूरी का नाम महात्मा गाँधी' आज यह कहावत लुप्त प्राय हो गई है। तीसरे प्रकार के अन्तर्गत हम विकासशील वर्गगत कहावतों को रखना चाहेंगे। यों हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई आदि पंथों तक सीमित रहने वाली अेक ऐसी कहावतें मिल जायेगी जो उसी वर्ग तक सीमित हों परन्तु यहां वर्गगत से हमारा तात्पर्य Technology के साथ विकसित होने वाले अनेक क्षेत्रों जैसे - चिकित्सा क्षेत्र, रेलवे, डाकघर, सूचना-संचार, बदलते बाजार का स्वरूप, शिक्षा के बादलते विषयों और उत्पादन की बदलती विधियों के साथ-साथ अनेक नयी लोकोक्तियाँ सामने आ रही हैं। कविता में तो नहीं परन्तु इन विशिष्ट क्षेत्रों से संबंधित कहानी और उपन्यास साहित्य में उनका स्पष्ट प्रयोग दिखाई पड़ रहा है। भ्रष्टाचार का क्षेत्र इसके लिए बड़ी उपजाऊ भूमि प्रस्तुत कर रहा है। यद्यपि इस प्रकार की कहावतों का क्षेत्र एक वर्ग विशेष तक सीमित है परन्तु उसमें पारस्परिक सम्मिश्रण का पर्याप्त अवसर है।

तात्पर्य यह है कि साहित्यकार और कवि मूलतः सर्जनात्मक शक्ति से युक्त प्राणी होते हैं अतः वे लोकोक्तियों के सृजन का एक बहुत बड़ा स्रोत है परन्तु जन-मानस की सर्जनात्मक शक्ति अधिक सृजनशील और अधिक प्रभावी है और वही लोकोक्तियों के सृजन का मूल स्रोत है। तीव्र अनुभव, अभिव्यक्ति की आकुलता और संक्षिप्त कथन की आवश्यकता, यह सब मिलकर जोर मारते हैं तो लोकोक्ति का जन्म होता है जो जन-मानस में फैलने की अद्‌भुत शक्ति रखती है।

संदर्भ

(1) अन्योक्तिनामनुकृतिश्छाया सपीह षड्‌विधा।
लोकछेकार्यकोन्यत्तपाटमोक्ति भेदतः ।। 2-39।। सरस्वती कण्ठाभरणम्

(2) लोकप्रवादानुकृतिर्लोकोक्तिरिति भण्यते।
सहम्व कातिचिन्मासान् मोलियित्वा लोचने ।। पृ. 157।।

(3) छेकोक्तर्यत्रलोकोक्तेः स्यादर्यान्तरगर्भिता।
भुजंगैव जानीते भुझङ्गो चरणं सखे ।। पृ. 158।।
"जहाँ लोकक्ति के प्रयोग में कोई अन्य अर्थ छिपा हो वहाँ छेकोक्ति अलंकार होता है।
जैसे हे मित्र। साँप ही साँप के पाँव जानता है।"

(4) रीतिरुक्तिस्तथा मुद्रा वृत्तिः काव्यस्य जीवितम् - अलंकार शेख प्रथम रत्न, द्वितीय मरीचि, सूत्र - 21।

(5) वही 1-2-3।

75/70, मानसरोवर, जयपुर-302020
मो.-8764295011

आदरणीय कुलश्रेष्ठजी ने लोकोक्तियों के स्रोतों एवं वैशिष्ट्य का बहुआयामी शोधपरक विवरण प्रस्तुत किया है, अभिनंदन लोकोक्तियों का संसार विशाल है जिसमें अध्ययन की बहुविध संभावनाएँ हैं।

मध्यकालीन काव्य में रहीम के दोहों में भी लोकोक्तिपरक सामर्थ्य खूब है।

कोई लोकोक्ति अपने रचनाकाल के सामाजिक परिवेश में प्रचलित होकर मान्य रहती है, परंतु कालांतर में परिस्थितियों एवं दृष्टिकोण के बदलने पर आलोचनीय भी हो जाती है जैसे 'ढोल गंवार शूद्र पशु नारी, सकल ताड़ना के अधिकारी' तुलसी के समय और उसके बाद भी मान्य होकर प्रचलन में रही, परंतु अब 1947 के बाद शूद्रों और नारी को लेकर दृष्टिकोण में बदलाव के कारण आलोचनीय हो गई। लुप्त हो रही लोकोक्तियों में एक है, 'हिंदी हो गई' जिसमें अवमानना का आशय है, पता नहीं इसकी रचना किस प्रसंग से हुई। - संपादक

●

मौर्यकालीन कृषि तथा पशुपालन : एक अध्ययन

डॉ. प्रवेश कुमार

प्रस्तावना : प्राचीन काल से ही कृषि एवं पशुपालन आर्थिक व्यवस्था में आजीविका का मुख्य साधन रहा है और वर्तमान समय में भी यह व्यवस्था बनी हुई है। विश्व सभ्यता के इतिहास में मनुष्य ने जब से नवपाषाण काल में प्रवेश किया है तभी से कृषि का प्रारम्भ प्रतीत होता है। प्रारम्भिक समय से मनुष्य के जीवित रहने का मुख्य आधार शिकार से प्राप्त मांस तथा फल-फूल आदि ही था। पाषाण युग में मनुष्य कृषि से परिचित नहीं था वह पत्थर को तोड़कर बनाये गये औजारों से कभी समूह में बड़े पशुओं का और कभी अकेले पशुओं का शिकार करता था, परन्तु जनसंख्या का जैसे-जैसे प्रसार हुआ तब से उसके लिए केवल शिकार व जंगली फल-फूलों पर निर्भर रहना सम्भव नहीं था, तब सम्भवतः पेड़ों से गिरने वाले बीजों को, जो घूमने वाले पशुओं के पैरों से भूमि में दब जाते थे, कुछ समय बाद उन्होंने बीज को उगते देखा तथा उनसे पुनः फल निकलना देखा। इस प्रकार बीजों को भूमि पर बिखेर कर अधिक अन्न उत्पादन करने की बात सामने आई जिसके द्वारा कृषि का विकास सम्भव हुआ। भारत में भी लगभग इसी क्रम में कृषि का विकास सम्भव हुआ। मौर्यकालीन युग में कृषि के बाद पशुपालन का भी अहम स्थान माना जाता था। कृषि उत्पादन तथा व्यवसाय और व्यापार का सहयोगी साधन पशुओं को माना जाता था। पालने वाले पशुओं को शक्ति के कारण मनुष्य का सहयोगी माना जाता था। वन्य पशुओं को इस जमात से अलग माना जाता था। इसके बाद इन पालने वाले पशुओं के सहयोग से खेती भी आरम्भ हुई। ये पालतू पशु शिकारी पशुओं से अलग थे। इन पालतू पशुओं से दूध की भी प्राप्ति होती थी। साथ ही इनका प्रयोग खेती के लिये भी किया जाता था। इन पालतू पशुओं का प्रयोग सामान को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने के लिये भी किया जाता था। इसके बाद मनुष्य ने धीरे-धीरे इन पशुओं को अपने साथ नियंत्रण में रखकर अपने आर्थिक जीवन को विकसित किया। प्रस्तुत शोध पत्र में द्वितीय समंकों का सहयोग लिया गया है। *मुख्य शब्द* - कृषि सिंचाई, कृषि के उपकरण, कृषि की विधियाँ, भू-स्वामित्व, भू-राजस्व, ऋण व्यवस्था एवं पशुपालन।

मौर्यकालीन युग में आर्थिक व्यवस्था के विकास में चहुमुखी प्रगति प्रतीत होती है। इस समय कृषि एवं पशुपालन मुख्य व्यवसाय माने जाते थे। मौर्यकालीन युग में कृषि एवं

पशुपालन के उत्पादन में वृद्धि होने के साथ-साथ उद्योग, व्यवसाय एवं व्यापार वाणिज्य में भी तीव्र गति से प्रगति हुई। आर.एस. शर्मा[1] एवं डी.डी. कौशाम्बी नामक विद्वानों का मानना है कि लोहे के अधिक उपयोग करने से तकनीकी क्षेत्र में प्रगति हुई थी। इस समय मगध साम्राज्य के आस-पास लोहे की खानें बनी हुई थीं और स्थल एवं जलमार्ग पर उसका नियंत्रण था। इस समय दक्षिणी बिहार लोह अयस्क के कारण समृद्ध था, लोग लोह अयस्कों का अत्यधिक प्रयोग करते थे। मौर्य साम्राज्य का अस्त्र-शस्त्रों पर एकाधिकार था किन्तु अन्य लोह उपकरणों का इस्तेमाल किसी वर्ग तक सीमित नहीं था। उनका निर्माण और उपयोग गंगा द्रोणी से साम्राज्य के दूरवर्ती भागों में फैल गया था। इन अस्त्र शस्त्रों की सहायता से पूर्वी गंगा घाटी के घने जंगलों को काटने में आसानी हुई और कृषि के क्षेत्र में कुशलता भी काफी बढ़ी थी। इस समय दक्षिणी बिहार के पूरे लोह क्षेत्र में लोहे के छोटे-छोटे टुकड़े फैले हुए मिले हैं। गंगा घाटी की भूमि कठोर होने के कारण हल में लोहे को लगाते थे। यूनानी विद्वान मेगस्थनीज ने किसानों को दूसरे स्थान पर माना है, जिनकी संख्या अधिक थी तथा वे अपना अधिक समय खेती के कार्य करने में लगाते थे। एक अन्य विद्वान एरियन का मानना है कि भारत में अनेक लोग कृषक हैं जो कि अन्न से अपना गुजारा करते थे।[2]

कृषि - मौर्यकालीन युग में कृषि को मुख्य व्यवसाय माना जाता था। मेगस्थनीज ने किसानों के बारे में लिखा है कि कृषक समाज में अच्छा और साहसी कृषक समझा जाता था। युद्ध के समय दोनों पक्षों के योद्धा एक दूसरे पर हमला करते थे। इस समय अनेक प्रकार की दालें, चावल और वास्फोरम कहलाने वाला एक पदार्थ तथा और बहुत से खाद्योपयोगी पौधे उत्पन्न किये जाते थे, जिनमें से विभिन्न पौधे एक साथ उगते थे। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में समय-समय पर बोयी जाने वाली फसलों का उल्लेख किया है, जैसे- गेहूँ, जो, चावल, चना, मूंग, उड़द, मसूर, कुल्थ, सरसों, तिल, दाल, ईख, कपास, मोठ एवं साग सब्जी आदि की पैदावार की जाती थी।[3] वर्तमान समय में ये विभिन्न फसलें खरीफ और रबी के समय बोयी जाती है। मौर्यकालीन युग में दो फसलों की साल में मुख्य रूप से पैदावार की जाती थी। कृषकों का कार्य कृषि कारग्य करने तक स्वामित्व माना जाता था।

सिंचाई : मौर्यकालीन युग में भूमि का अधिकांश भाग सिंचित था। मेगस्थनीज का मानना है कि मिस्त्र की तरह मौर्य साम्राज्य में कुछ कर्मचारी सिंचाई का कार्य करते थे। कर्मचारियों का कार्य नदियों की देखभाल करना, भूमि की जांच पड़ताल करना तथा नालियों का निरीक्षण करना, जिनके द्वारा बड़ी नहरों से पानी दूसरी शाखाओं में भेजा जाता था, जिससे सभी कृषकों को पानी प्राप्त हो जाये।[4] कौटिल्य का मानना है कि सिंचाई की चार विधियों का प्रयोग किया जाता था, जिनमें (i) हाथ के द्वारा सिंचाई (ii) कंधों पर पानी ले जाकर सिंचाई करना, (iii) नदियों और तालाबों द्वारा (iv) कृत्रिम साधनों की मदद से सिंचाई। चन्द्रगुप्त मौर्य ने पश्चिमी भारत के सौराष्ट्र राज्य में सिंचाई की कमी को पूरा करने के लिये सुदर्शन झील का निर्माण करवाया था।[5] मौर्यकालीन युग में जो प्रदेश बारिश के पानी से सिंचाई करते थे, वे देवमात्रक कहलाते थे, जो प्रदेश नदी के पानी से सिंचाई करते थे उन्हें अदेवमात्रक कहा जाता था तथा समुद्री प्रदेश जो बिना सिंचाई के ही धान्योत्पादन करते थे, वे प्रकृतिमात्रक कहलाते थे। इस समय खेत को दो भागों में, प्राकृतिक तथा कृत्रिम जल स्त्रोतों के आधार पर बांटा गया था।

सेतु नामक क्षेत्रों की सिंचाई रहट आदि कृत्रिम जल संसाधनों के द्वारा की जाती थी। **केतु** नामक क्षेत्रों में वर्षा के जल से सिंचाई की जाती थी। मौर्यकालीन युग में कृषि वर्षा के जल पर ही अधिकांश आधारित माना जाती थी। फसलों के लिये

कम तथा अधिक नमी की आवश्यकता मानी जाती थी। आचार्य कौटिल्य ने ग्रह नक्षत्र के आधार पर वारिस होने के अन्दाजे के बारे में लिखा है कि जब वृहस्पति मेष राशि से वृष राशि पर संक्रमण करे, जब गर्भाधान अर्थात् मार्ग-शीर्ष आदि छः महीने में कोहरा, बारिश बादल आदि प्रतीत हों, जब शुक्र ग्रह की उदयास्ति गति अषाढ़ की पंचमी आदि नौ तिथियों में संचरित हो, और जब सूर्य के चारों ओर मंडल नजर आये तो ये सभी अच्छी वर्षा होने के लक्षण माने जाते हैं। मौर्यकालीन युग में वर्षा के अलावा नदियाँ भी सिंचाई की प्राकृतिक साधन थी। पाणिनी ने कई छोटी-बड़ी नदियों के बारे में वर्णन किया है जिनसे उन दिनों में सिंचाई होती थी।[6] मलिन्दपण्हों से पता चलता है कि हिमालय से 500 नदियाँ निकलती थी जिनमें से 10 नदियाँ गंगा, यमुना, अमरावती, सरयू, माही, सिन्धु, सरस्वती, विभावती, विरमसा तथा कन्दभाग सदैव जल से भरी रहती थी, को ही नदियों के रूप में माना जाता है।

इस समय नदियों के अलावा कुएँ भी सिंचाई के प्रमुख साधन माने जाते थे, जिनके द्वारा उत्तरी भारत के अधिकांश भागों में सिंचाई की जाती थी।[7] वापी और कुओं के अतिरिक्त गाँव में छोटे-छोटे कुएँ भी जरूरतों के अनुसार बना लेते थे। हस्तिनापुर, नइ दिल्ली, उज्जैन, मथुरा तथा नासिक आदि स्थानों पर उत्खननों में कूपों के अवशेष भी प्राप्त हुए हैं। मौर्यकालीन युग में अशोक ने सड़कों के किनारे पेड़ लगवाये, कुओं और सरायों का भी निर्माण करवाया था।[8] बौद्ध ग्रंथ चुल्लवग्ग में कुएं से पानी निकालने के लिये तुला, चक्र एवं बैलों की जोड़ी इन तीनों साधनों का उल्लेख मिलता है। मौर्यकालीन युग में नहरों को भी सिंचाई का साधन माना जाता था। नहरों का निर्माण कुशल एवं अच्छे इंजीनियरों द्वारा किया जाता था। नंद राजा महापद्मनंद ने तनसुलीयवाता से कलिंग तक सिंचाई करने के लिये नहर का निर्माण करवाया था। नहरें सामूहिक उपयोग की वस्तु होने के कारण लोगों के द्वारा निर्माण किया गया था। राज्य सरकार के द्वारा कृषकों को कृत्रिम जल स्रोतों का निर्माण तथा पुनर्निर्माण करने पर एक निश्चित अवधि तक कर से मुक्त किया जाता था। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में लिखा है कि नवीन तालाब व सीमाबंध बनवाने वाले व्यक्ति पर 5 वर्ष तक सरकारी कर न लगाया जाये, यदि वह पुनः निर्माण कराये तो 4 वर्षों तक और यदि उनको विस्तृत करे तो तीन वर्ष तक सरकारी कर न वसूल किया जाना चाहिए, इसके साथ ही जिन तालाबों में नदी का पानी न पहुँच पाता हो और किसान रहट आदि की सहायता से अपने खेत की सिंचाई करे तो उसकी फसल पर सरकार को अधिक कर नहीं लगाना चाहिए। कौटिल्य कृत अर्थशास्त्र में उल्लेख मिलता है कि जिन कृषकों के पास व्यक्तिगत तालाब नहीं थे वे भी कीमत देकर कुछ बचे हुए रुपये देकर, अपनी पैदावार का कुछ भाग देकर या मालिक की अनुमति के द्वारा दूसरे तालाब से पानी ले जा सकते थे, किन्तु उनके लिए यह जरूरी था कि वे तालाब, रहट आदि की बराबर मरम्मत करते रहें, मरम्मत नहीं करने पर जो नुकसान होता तो उसका दुगना जुर्माना देना पड़ता था। मौर्यकालीन भारतीय किसानों ने प्रकृति पर निर्भर न रहकर अच्छी फसलों एवं पैदावार के लिए सिंचाई के अनेक कृत्रिम साधनों का विकास कर लिया था, जिसका आधार संभवतः वैज्ञानिक अनुसंधान न होकर उन किसानों का व्यावहारिक ज्ञान एवं अनुभव माना जाता है। कौटिल्य एवं पतंजलि का मानना है कि राज्य के सक्रिय योगदान ने इसे और भी विकासशील बना दिया था।

कृषि के उपकरण - मौर्यकालीन युग में अनेक विद्वानों ने कृषि के उपकरणों के बारे में विवरण दिया है। पाणिनी की अष्टध्यायी मे हल का उल्लेख है। (खेत की धरती को पोली करने व उसमें बुवाई का कार्य हल से होता था जिसे बैल खींचते थे - संपादक) हल किसान का दूसरा साथी था, इसे चलाने वाला

किसान हालिक या सैरिक कहा जाता था। हल के द्वारा बनी रेखा को सीता कहा जाता था। हल के अलावा कृषि के अन्य महत्वपूर्ण औजारों का भी वर्णन यत्र-तत्र मिलता है। खेतों के कोने जो हल से नहीं जोते जा सकते थे वे फावड़े की सहायाता से खोदे जाते थे। आचार्य कौटिल्य ने फसलों की सिंचाई के लिये एक प्रकार के यंत्र का भी उल्लेख किया है। इसके अलावा गेहूँ की फसल काटने, खेत में धान तथा भूसे को अलग करने में औजारों का उपयोग किया जाता था। मौर्यकालीन युग में कृषि उपकरणों में उत्तरोत्तर वृद्धि, हलों मे लोहे का उपयोग, गहरी एवं गहन जोताई, सिंचाई आदि के लिये कुछ विशिष्ट यंत्रों के प्रयोग ने तत्कालीन कृषि में एक अच्छा परिवर्तन ला दिया था।

कृषि की विधियाँ - मौर्यकालीन युग में यूनानी विद्वानों ने कृषकों की सम्पन्नता, उनकी विषयगत परंपरागत एवं भारतीय-भूमि की उर्वरा शक्ति की प्रशंसा की है। पाणिनी की अष्टाध्यायी में कृषि कार्यों से संबंधित कृषिवल, हल, हलयति, हालिब, कर्ष, बाप, मूलाबर्हण, लवन, खल तथा निष्पाव आदि शब्दों का विवरण दिया है। पाणिनी लिखता है कि कृषक खेत की जुताई करने और भूमि को योग्य बनाने में अधिक मेहनत करते थे, जिसके द्वारा खेत की उर्वरा शक्ति बढ़ जाती थी इसके लिये वे बड़े-बड़े हलों का प्रयोग करते थे। वे खेत में दो, तीन, चार या अनेक बार जुताई करते थे। दो बार जोतने के लिए द्वितीया-करोति और तीन बार जोतने के लिए तृतीया-करोति शब्द प्रचलित थे। वर्तमान समय में इन्हें दिवही करना, तीबही करना कहते हैं, दोहरी जोत के लिये दिगुण-करोति क्षेत्रम प्रयोग भी प्रचलित था। खेत की जुताई होने पर वह बुआई के लिये तैयार हो जाता था। बुआई शुभ मुहूर्त में की जाती थी। कौटिल्य ने मूंग एवं उड़द की मध्यवान अर्थात् सावन और कार्तिक के बीच बुआई के लिये अच्छा माना है। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में शालि, ब्रीही, तिल, प्रियंगु को पावस-ऋतु तथा मसूर, जौ, गेहूँ, सरसों आदि को ऋतु के अन्त, सम्भवतः कार्तिक में बोने का विवरण दिया है। कृषकों द्वारा बीज होने के कुछ समय बाद उनके अन्दर अंकुर आने और पौधे के कुछ बड़े हो जाने पर किसान खेतों की निराई तथा सिंचाई करता था। पौधे के चतुर्दिक उगे हुए घास-फूस तथा मोथों को कुदाली द्वारा साफ कर निराई की जाती थी।

लवनी - धान बोने के बाद जब पक जाते थे, तो उन्हें तीक्ष्ण दरातियों से काट लेते थे। पकी हुई फसल की कटनी को लवन तथा काटने वाले को लावक कहते थे जिन्हें वर्तमान में लावा कहते हैं। जब फसल अधिक पक जाती थी तो उसे आवश्यलाव्य कहा जाता था। लवनी दराती से की जाती थी। धान्य के समान शरकण्डे भी काटे जाते थे जोकि छप्पर बनाने के लिये काम में लाते थे। लावनी के बाद पूरी फसल एक स्थान पर एकत्रित की जाती थी।

मर्दन - मौर्यकालीन युग में फसलों को खल्य भूमि में संग्रहित कर लेने के पश्चात् कृषक धान्य तथा भूसे को अलग करने के लिये बैलों द्वारा उसका मर्दन करते थे। वर्तमान मं उत्तर भारत में इस क्रिया को गहाना कहा जाता है। गहाते समय धान्य को बार-बार पलटना पड़ता था, जिसमें नीचे दबा हुआ धान्य ऊपर आकर मर्दित हो सके। पलटने की यह क्रिया लकड़ी के ही बने औजार से की जाती थी जिसमें अंगुली की आकृति की तीन या पाँच लकड़ियाँ लगी होती थीं (इसे राजस्थान में 'जेली' कहा जाता है - सं.)। जैन साहित्य में अन्न साफ करने के लिये बने सूपों का भी उल्लेख मिलता है। धान फटकने का काम सूप निष्पाव कहलाता था। अन्न तथा भूसे को अलग करने के बाद धान्यों की सुरक्षार्थ तथा भविष्य के दैनिक एवं संक्रमणकालीन उपयोग के लिये धान्यगारों में रख दिया जाता था। अन्नागार व्यक्तिगत तथा राजकीय दोनों प्रकार के होते थे। राज्य द्वारा निर्मित सरकारी गोदाम धान्य कोष कहलाते थे।

धान्यगारों को कोठार कहा जाता था।

भू-स्वामित्व - आरम्भ में शासक को जनता का प्रतिनिधि माना जाता था और उसको चुनने की प्रथा थी। इसलिए राज्य की समस्त भूमि का स्वामी शासक को ही कहा गया था किन्तु बाद में शासक के भू-स्वामित्व की व्याख्या की गई एवं उसे भूमि की उपज के छठे भाग का अधिकारी माना गया। अर्थशास्त्र में दो प्रकार की कृषि योग्य भूमि का विवरण मिलता है। एक भूमि जो शासक की निजी भूमि होती थी और दूसरी वह भूमि जिससे शासक को केवल राजस्व प्राप्त होता था। प्रथम प्रकार के खेतों से जो आय प्राप्त होती थी उसे भाग कहा जाता था। इस समय गंगाघाटी में बड़े पैमाने पर, विशेषकर चावल की खेती होती थी। किसानों को रोपाई एवं कटाई के समय मजदूरों की सहायता लेनी पड़ती थी। मौर्यकालीन युग में बुलई मिट्टी चावल के लिए तथा चिकनी लसदार मिट्टी कपास के लिये उपयुक्त मानी जाती थी। आर. गंगोपाध्याय का मानना है कि तत्कालीन भारतीय किसानों को अनेक फसलों के लिए उपयुक्त भूमि चुनने का वैज्ञाकि एवं तकनीकी जानकारी प्राप्त थी, जिसका प्रयोग वे अपनी फसलों के समुचित उत्पादन के लिए कृषि-भूमि को बांटने में करते थे।

भू-राजस्व - मौर्यकालीन युग में भू-राजस्व को आर्थिक व्यवस्था का महत्वपूर्ण अंग माना जाता था। इस समय कृषक शासक को भूमिकर देते थे, क्योंकि सम्पूर्ण भूमि राजा की मानी जाती थी। कृषक भू-स्वामी नहीं माने जाते थे। राधेशरण नामक विद्वान का मानना है कि मौर्यकाल में किसान राजा को अपनी उपज का एक चौथाई भाग कर रूप में देता था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र से पता चलता है कि राज्य को कुछ भू-क्षेत्रों में कृषि करने का अधिकार प्राप्त था, किन्तु शेष स्थानों पर भूमिकर दाता किसानों का अधिकार था। इस समय विशेष भू-राजस्व की दर का साक्ष्य अशोक के रूम्मिनदेई स्तम्भलेख से मिलता है। सम्राट अशोक ने लुम्बिनी नामक गाँव भगवान बुद्ध का जन्म स्थान होने के कारण वहां राजस्व के 1/8 भाग निश्चित किया था।[9] मौर्यकालीन युग में अधिकारियों को राजस्व निर्धारण की दृष्टि से जलोढ़ मिट्टी, जो बाढ़ के पानी के साथ आती थी के जमावों की जांच पड़ताल करनी पड़ती थी। अग्रोनेमि नामक अधिकारी द्वारा नहरों का निरीक्षण सीताध्यक्ष द्वारा जलकर की प्राप्ति, ब्रजाध्यक्ष द्वारा तालाबों, जलाशयों आदि के निर्माण संबंधी जांच अर्थशास्त्री नियमों के साथ करता था। इससे प्रतीत होता है कि राजस्व के स्रोतों में सिंचाई भूमि से प्राप्त जलकर भी सम्मिलित था। 10-15 गांवों के अधिकारी गोप कहलाते थे। गोप अधिकारी को गांवों की सीमाओं, गांव के खेतों, बिना खेती योग्य भूमि, मकानों की सूची, नकद धन वसूलने, बेगारी तथा जुर्माना वसूलना आदि का हिसाब रखना पड़ता था।[10]

ऋण व्यवस्था - मौर्यकालीन युग में सरकार की जिम्मेदारी मानी गयी थी कि ऋण देने वाला वर्ग सुद की दर निश्चित करे, ताकि महाजनवर्ग गरीब एवं दुखी व्यक्तियों का शोषण न करे। सरकार की निर्धारित दर के विरुद्ध कार्य करने वाले महानजवर्ग को दण्ड दिये जाने का प्रावधान था। मौर्ययुग में प्रशासन किसानों को कृषि ऋण उपलब्ध कराता था।

पशुपालन - मौर्यकालीन युग में कृषि के साथ-साथ पशुपालन को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया। क्योंकि पशुपालन को कृषि कार्यों का सहायक रूप माना जाता था। पशुओं के बिना खेती करना सम्भव नहीं था। इसलिए पशुपालन पर अधिक बल दिया जाता था। राज्य भी कृषि एवं पशुधन के महत्व पर बल देकर इनके संरक्षण व संवर्धन में योगदान देता था। आचार्य कौटिल्य का मानना है कि कृषि का व्यवसाय पशुपालन पर निर्भर माना जाता है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र से पता चलता है कि कुल के पशुओं को विभाजित करने में ब्राह्मण पुत्र को बकरी,

क्षत्रिय को घोड़ा, वैश्य को गाय एवं शूद्र को भेड़ मिलती थी। कौटिल्य का मानना है कि गाय, भैंस, भेड़, बकरी, ऊँट, गधा और खच्चर आदि को ब्रज के अन्दर रखा जाता था और मृत पशुओं के बाल, चर्म, दांत, खुर आदि का संग्रह किया जाता था। मौर्यकालीन युग में गाय, बैल, भैंस, भेड़, बकरी, घोड़ा, ऊँट, गदहा, हाथी और सांड आदि पाले जाते थे। इस समय घोड़ा तथा हाथी के पालन पर राज्य का एकाधिकार माना जाता था। चारागाहों में गाय, बैलों, घोड़ों एवं हाथियों के लिये क्रमशः विवीताध्यक्ष, गोडाध्यक्ष, अश्वाध्यक्ष और हस्ताध्यक्ष नामक अधिकारी की नियुक्ति की जाती थी। इस समय पशुओं की सुरक्षा, चिकित्सा और सेवा करने पर बल दिया जाता था। पशुओं की चोरी करने पर 200 से 500 पण तक अर्थदण्ड का प्रावधान था। आचार्य कौटिल्य का मानना है कि गाय, बछड़ा, हिरण, मोर, सांड़ तथा मछली पकड़ने की मनाही की गयी तथा मारने वाले को दण्ड दिया जाना चाहिए।

अशोक के प्रथम शिलालेख से पता चलता है कि मौर्य साम्राज्य की पाकशाला में प्रतिदिन हजारों पशु-पक्षी भोजन के लिये मारे जाते थे किन्तु अशोक ने प्रतिदिन केवल दो मोर एवं एक हिरण मारे जाने की आज्ञा दी थी, साथ ही यह भी कहा था कि आगे चलकर मोर एवं हिरण भी नहीं मारे जाएंगे। अशोक के पाँचवें स्तम्भलेख से पता चलता है कि पशु-पक्षियों एवं जलचरों आदि को मारने की मनाही कर दी थी जिसमें खरगोश, बिल्ली, चूहा, भेड़ बकरी, गेंडा, सांड़ एवं उनके 6 महीने से कम आयु के बच्चे, मुर्गा, कौआ, हंस, कछुआ, हड्डी रहित तथा शकुल प्रजातियों की मछलियाँ, कुक्कड़, केकड़ा, तोता, मैना, अरुणा, चमगादड़, चक्रवात, नेवला, बकरा, मेढ़ा एवं सुअर को दागने पर भी पाबंदी लगा दी थी। आचार्य कौटिल्य ने कम्बोज, सिंध, आरट और वनायु के घोड़े को उच्च कोटि, बाल्हीक, पश्चिमोत्तर, सीमाप्रान्त सौवीर एवं वैन्तूल जनपदों के घोड़ों को मध्यम श्रेणी और अन्य जगह के घोड़े को निम्न कोटि का माना है। सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य ने सेल्युकस से संधि करने के उपरान्त 500 हाथी दिये थे। कौटिल्य रचित अर्थशास्त्र से पता चलता है कि कलिंग, अंग तथा अन्य पूर्वी देशों के हाथियों को मध्य कोटि का और गुजरात तथा पंजाब के हाथियों को निम्न कोटि का माना है। मौर्यकालीन युग में कुत्ते रखवाली एवं शिकार में मदद के लिये पाले जाते थे। वे राज्य के चारागाहों में हिंसक पशुओं से पालतू पशुओं की तथा राजाओं के अंतःपुर की रक्षा के लिये रखे जाते थे। मौर्यकालीन युग में कुत्तों की मदद से अपराधियों को ढूंढने में भी सहायता मिलती थी। यूनानी विद्वानों ने भारतीय कुत्ते की काफी प्रशंसा की है। झेलम के तटवर्ती क्षेत्र के शासक सौभूति ने सिकंदर को अच्छी नस्ल के तथा खूंखार 150 कुत्ते उपहार में दिये थे जो शेर को भी काटने से भी नहीं डरते थे।[11] आचार्य कौटिल्य का मानना है कि शासक को ऊसर भूमि में चारागाह बनवाने चाहिए।[12] कौटिल्य ने जहाँ अधिक संख्या में चरवाहे रहते हैं उस स्थान को आवास के लिये उपयुक्त माना है। सरकारी पशुओं के चरवाहों को गोध्यक्ष के अधीन कार्य करना पड़ता था, जिसके बदले उन्हें नकद वेदन की प्राप्ति होती थी।

निष्कर्ष - उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि मौर्यकालीन अर्थव्यवस्था में कृषि एवं पशुपालन का महत्वपूर्ण स्थान रहा। मौर्यकालीन युग में कृषि तथा पशुपालन का काफी विकास एवं विस्तार हुआ। मौर्यकालीन कृषि एवं पशुपालन के विकास एवं विस्तार की अनेक विद्वानों ने सराहना की है। कृषि तता पशुपालन के विकास की अभूतपूर्व प्रगति हुई जिसकी गणना उच्च श्रेणी की मानी जाती है। मौर्यकालीन युग में कृषि, सिंचाई, कृषि के उपकरण, कृषि की विधियाँ, भू-स्वामित्व, भू-राजस्व, ऋण व्यवस्था एवं पशुपालन को आवश्यक माना गया है।

सन्दर्भ

1. शर्मा, रामशरण, प्रारम्भिक भारत का आर्थिक और सामाजिक इतिहास, दिल्ली, 1993, पृ.-156। **2.** विद्यालंकर, सत्यकेतु, मौर्य साम्राज्य का इतिहास, प्रकाशक, श्री सरस्वती सदन, नई दिल्ली, 2014, पृ,-332। **3.** सहाय, शिवस्वरूप, प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास, प्रकाशक, मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली, 2000, पृ.-333-334। **4.** शर्मा, रामशरण, प्रारम्भिक भारत का परिचय, प्रकाशक, ओरियंट ब्लैक स्वान प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, 2013, पृ.-182। **5.** थॉपर, रोमिला, भारत का इतिहास, प्रकाशक, राजमकल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 1989, पृ.- 68। **6.** अग्रवाल, वासुदेव शरण, पाणिनीकालीन भारतवर्ष, वाराणसी, 1955, पृ. 207। **7.** शर्मा, रामशरण, लाइट ऑफ अर्ली इण्डिया सोसायी एण्ड इकॉनोमी, दिल्ली 2005, पृ. 91। **8.** मुखर्जी, राधामुकुद, प्राचीन भारत, प्रकाशक, राजकमल प्रा. लि. नई दिल्ली 2000 पृ.- 67। **9.** ओम प्रकाश, प्राचीन भारत का इतिहास, प्रकाशक, विश्व प्रकाशन, नई दिल्ली, 1993, पृ.-164। **10.** सहाय, शिवस्वरूप, पूर्वोक्त, पृ. 458। **11.** यादव, शंकर लाल, प्राचीलन भारत में कृषि एवं कृषकों की दशा, प्रकाशक, आशा पब्लिकेशन कम्पनी, आगरा, 2011, पृ. 108। **12.** शर्मा, यज्ञदत्त, प्राचीन भारत का आर्थिक इतिहास, 1998, पृ. 111।

शोधार्थी - इतिहास विभाग, मोहनलाल सुखाड़िया वि.वि., उदयपुर
46, गणेश नगर, उदयपुर - 313001
मो. : 9467656805
ई मेल - hawar.hrvesh86@gamil.com

कर्म पूजा बने

घर से मंदिर है बहुत दूर
चलो यों कर लें,
किसी रोते हुए बच्चे को
हंसाया जाये।

कवि की इस सादगी से कही बात यदि सध जाए तो जीवन ही बदल जाए।

हम पूजा, आराधना या नवधाभक्ति के विविध रूपों में अपने को खोए, भूले रहते हैं और भूल जाते हैं– सामने हैं– पूजा के जीवंत स्वर्णिम अवसर। इनको यदि अपना लें तो कहीं जाने की जरूरत नहीं।

पहला काम है– अपने को हँसाना। अपने को खुश रखना प्रभु-सेवा है। घर गृहस्थी में प्रभु का दर्शन करना, पास पड़ोस के दुख-दर्द में शामिल होना, राह भूले लोगों को राह बताना, किसी निराश व्यक्ति को दो मीठे बोल सुनाना, किसी गिरे को उठाना, किसी अच्छे काम के लिये किसी की पीठ थपथपाना– ये भगवद्सेवा के ही विविध रूप हैं।

हमारे सभी काम पूजा हैं– शर्त है– इनमें अहंकार न हो, इनमें पाने का भाव न हो, अपने को लुटाने का रस भरा हो। जो भी हम करें– इस भाव से करें– 'स्वाहा' का स्वर निनाद हो– 'सु-आहा!' चलो यों कर लें।

- पं. अक्षयचन्द्र शर्मा

अयोध्या का राम मन्दिर : ऐतिहासिक तथ्य एवं स्थापत्य

डॉ. प्रियंका

अयोध्या नगरी का इतिहास त्रेता युग से पुराना है। कहा जाता है कि अयोध्या नगरी को भगवान श्रीराम के पूर्वज सूर्य पुत्र विवश्वान मनु द्वारा बसाया गया था। रामायण में अयोध्या को भगवान श्रीराम का जन्मस्थान माना गया। लोमश रामायण के अनुसार भगवान श्रीराम के जल समाधि लेने के पश्चात् कुछ समय के लिए उजाड़ हुई अयोध्या को भगवान श्रीराम के पुत्र कौशाम्बी के महाराज कुश ने सर्वप्रथम अपने पिता की जन्मभूमि पर पत्थरों के खम्भों वाले मन्दिर का निर्माण कराया। तत्पश्चात् सूर्य वंश की 44 पीढ़ियों तक इसका अस्तित्व चरम पर रहा। महाभारत काल में हुए युद्ध के कारण अयोध्या फिर से उजाड़ हुई। जैन परम्पराओं के अनुसार ऋषभदेव ने अयोध्या को फिर से बसाया। भविष्यपुराण के अनुसार उज्जैन के महाराज एवं भगवान विष्णु के परमभक्त विक्रमादित्य ने ईसा पूर्व एक सौ में, एक बार फिर से उजड़ चुकी अयोध्या में सरयू नदी के लक्ष्मण घाट को आधार बनाकर 360 मन्दिरों एवं श्रीराम जन्मभूमि पर एक भव्य मन्दिर का निर्माण कराया था। इससे पूर्व शुंगवंश के प्रथम शासक पुष्यमित्र शुंग ने भी मन्दिर का पुनर्निर्माण कराया एवं उनके द्वारा अयोध्या में अश्वमेध यज्ञ कराने का भी वर्णन मिलता है। गुप्तकालीन राजाओं ने लम्बे समय तक अयोध्या को अपनी राजधानी बनाया एवं उस समय के कवि कालिदास ने अपने रघुवंश में कई स्थलों पर अयोध्या का वर्णन श्रीराम को केन्द्र में रखते हुए किया है।

आधुनिक इतिहासकारों के अनुसार 600 ई.पू. अयोध्या एक महत्वपूर्ण व्यापार का केन्द्र था। इस स्थान को एक अंतर्राष्ट्रीय पहचान 5वीं शताब्दी में बौद्ध केन्द्र के रूप में विकसित होने के पश्चात मिली। चीनी भिक्षु फाह्यान ने भी यहाँ राम मन्दिर होने के साथ कई बौद्ध मठों का वर्णन किया है। यहीं 7वीं शताब्दी में चीनी यात्री ह्यूनसांग भी आया था, उसके अनुसार यहां बौद्ध मठ थे जिनमें 3000 भिक्षु रहा करते थे साथ ही, अति भव्य राम मन्दिर भी था, जहां लाखों की संख्या में लोग और दर्शन करने आते थे। तत्पश्चात् प्राप्त साक्ष्यों के अनुसार 11वीं शताब्दी में कन्नौज के राजा जयचंद ने अयोध्या में विक्रमादित्य के शिलालेखों पर उनके नाम की जगह अपना नाम अंकित करवाया। के.के. मोहम्मद ने 1976-77 के समय खुदाई के दौरान प्राप्त साक्ष्यों के संदर्भ में कहा-- "खुदाई के दौरान मस्जिद के अंदर जितने पिलर थे वे सब मन्दिर के पिलर थे। यह लगभग ईसा पूर्व 12वीं शताब्दी का पत्थर था।

मस्जिद के नीचे के भाग से मूर्तियाँ भी मिली। जिससे हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि यहाँ एक मन्दिर था।"[1]

विदेशी आक्रमणकारियों द्वारा मथुरा, काशी और अयोध्या में लूटपाट हुई। इन सभी आपदाओं को झेलते हुए 14वीं शताब्दी तक अयोध्या राम मन्दिर सुरक्षित रहा। इतिहासकारों के अनुसार 1528-29 में अयोध्या के राम मन्दिर को तोड़कर मुगल बादशाह बाबर के सेनापति मीर बाकी ने विवादित स्थान पर मस्जिद का निर्माण करवाया। खुदाई के दौरान प्राप्त लेख हैं-- "जन्नत तक इसके न्याय के चर्चे हैं, ऐसे महान शासक बाबर के आदेश पर दयालु मीर बाकी ने फरिश्तों की इस जगह को मुकम्मल रूप दिया।"[2] अकबर के दरबारी इतिहासकार अबुलफज़्ल-ए-अल्लामी ने 'आईन-ए-अकबरी' में लिखा कि अयोध्या को एक पवित्र भूमि कहा जाता है, जहाँ चैत्र के महीने में नवमी के दिन मेले का आयोजन किया जाता है। यहाँ पर राम का जन्म हुआ था। यह भारत के धार्मिक स्थलों में से एक है। हालांकि, अकबर और जहांगीर के शासनकाल में हिन्दुओं को राममन्दिर की भूमि एक चबूतरे के तौर पर सौंपी गई थी। मुगल शासन काल के ही एक लेखक द्वारा जुलाई 1723 के एक दस्तावेज में वर्णित है-- "अकबर ने 6 बीघा जमीन हनुमान टीले के लिए दी थी। और उस लेखक ने यह भी जिक्र किया कि वह यह राम जन्मभूमि से लिख रहा है।"[4] यूरोपियन जोसेफ टीफेनथेलेर (इंडिया)के अनुसार 'इस समय तक भी इस चबूतरे के रूप में राममन्दिर के कुछ अवशेष बाकी थे, लेकिन अयोध्या के सूबेदार फेदाई खान ने 1668 में क्रूर औरंगजेब के आदेश पर हिन्दुओं द्वारा प्रभु श्रीराम की जन्मभूमि माना जानेवाला रामकोर्ट फोर्टरिस्ट तोड़कर अपने पूर्वज बाबर का सपना पूरा करते हुए मीर बाकी द्वारा बनाए ढाँचे को मस्जिद का भव्य रूप दिया।' 1838 में मोंट गो मेरिन मार्टिन ने सर्वे किया, जिसकी रिपोर्ट उन्होंने ब्रिटिश सरकार को सौंपी-- "इस मस्जिद में जो खंभे लगे हैं वे काले पत्थर (कसौटी पत्थर) के हैं जो मन्दिर से लिए गए हैं, इनमें मन्दिर संबंधी आकृतियों हिन्दू आकृतियाँ हैं।"[5] इस रिपोर्ट के पश्चात् हिन्दू संगठन सक्रिय हुए। मस्जिद में प्रयुक्त इन काले पत्थरों का मन्दिर से संबंध एंटोन फर्हर, एडवर्ड हॉटर्न, पैट्रिक कार्निगी आदि ने भी स्वीकारा। पैट्रिक कार्निगी ने दावा किया कि बाबर ने तीन हिन्दू मन्दिरों पर कब्जा किया था, जिनमें जन्मस्थान मन्दिर, स्वर्गद्वार मन्दिर और त्रेता ठाकुर मन्दिर हैं। जन्मस्थान मन्दिर को ही तोड़कर बाबरी मस्जिद का निर्माण किया गया था।

पहली बार, साल 1853 में अंग्रेजी हुकूमत के दौरान दंगे हुए। अवध के आखिरी नवाब वाजिद अली शाह के समक्ष निर्मोही अखाड़े ने दावा किया कि मस्जिद का निर्माण हमारे मन्दिर को तोड़कर बाबर द्वारा किया गया था। 1859 में अंग्रेजों ने विवाद को रोकने के लिए मुसलमानों को ढाँचे के अन्दर नमाज और हिन्दुओं को चबूतरे पर पूजा-अर्चना करने की इजाजत दी। साथ ही, ब्रिटिश प्रशासन द्वारा दोनों ओर से विवाद रोकने के लिए बीच में फेंसिंग लगवा दी गई। 1885 में पहली बार निर्मोही अखाड़े के महंत रघुवीर दास ने चबूतरे पर मन्दिर निर्माण को लेकर फैजाबाद कोर्ट में याचिका लगाई, जिसे कोर्ट ने ठुकरा दिया। 1934 में एक बार फिर अयोध्या और शाहजहाँपुर में साम्प्रदायिक दंगे की स्थिति खड़ी हुई जिसमें मस्जिद को नुकसान हुआ लेकिन अंग्रेजों द्वारा मस्जिद को ठीक करवा दिया गया। 1944 में सुन्नी वक्फ के कमिश्नर ने इस जगह को प्रॉपर्टी घोषित कर दिया। उनका कहना था कि बाबर एक सुन्नी मुसलमान था; ऐसे में यह जमीन सुन्नी वक्फ के अधीन आती हैं।

स्वतंत्रता के पश्चात के एक रिकॉर्ड के अनुसार, वरिष्ठ उपनिरीक्षक ने एक एफआईआर दर्ज की जिसके अनुसार 23 दिसम्बर 1949 की रात को 50-60 लोग मस्जिद में दाखिल हुए और श्रीराम की मूर्ति मुख्य गुम्बद के नीचे रख दी। यह विवाद इतना बढ़ा

कि जिला प्रशासन को मस्जिद पर ताला लगवाना पड़ा। नमाज रुक गई लेकिन चबूतरे पर पूजा पाठ होती रही। यहीं से विवाद और मुखर हुआ। अब बात दिल्ली तक पहुंची, अबतक संविधान का ढाँचा लागू नहीं हुआ था। प्रधानमंत्री नेहरू ने पहले जैसे ही स्थिति को कायम रखने का आदेश दिया। लेकिन अयोध्या के तत्कालीन डीएम के.के. नायर ने इस आदेश को नहीं माना। इसके विपरीत उन्होंने सरकार को अपनी दलीलें दीं कि मूर्ति को यदि निकाला गया तो स्थिति जटिल हो जाएगी और पूरे उत्तर प्रदेश में ऐसा कोई पुजारी नहीं है जो मूर्ति को बाहर निकाले। 27 दिसम्बर को सरकार ने फिर डीएम के.के. नायर को मूर्ति को निकालने के संदर्भ में पत्र भेजा, जिसके जवाब में डीएम के.के नायर ने सरकार को अपने इस्तीफे के साथ एक पत्र में सलाह लिखकर भेजी। उन्होंने सरकार को सलाह दी कि इस मसले की आप कोर्ट के ऊपर छोड़ दें, आदेश आने तक विवादित ढाँचे के बाहर एक जालीनुमा दरवाजा बनवा दीजिए, जिससे श्रद्धालु रामलला के दर्शन कर सकें लेकिन वे अन्दर नहीं जा सकेंगे। नियमित पूजा की जाए, भोग लगाया जाए, चार पुजारी की जगह केवल एक पुजारी को नियुक्त किया जाए, साथ ही सुरक्षा का एक घेरा बनवा दिया जाए। पंडित नेहरू ने डीएम के. के. नायर का इस्तीफा तो स्वीकार नहीं किया लेकिन उनके द्वारा दिए गए सुझावों पर अमल किया। इस तरह रामलला की मूर्ति 23 दिसंबर 1949 से ढाँचे के अंदर रही और पूजा बाहर से होती रही।

निर्मोही अखाड़ा चबूतरे पर विद्यमान राम मन्दिर की देख-रेख कर रहा था, जिसने 1959 में अपील की कि इस चबूतरे वाले हिस्से का अधिकार हमें दे दिया जाए, इसी में ही उन्होंने सर्वप्रथम 'विवादित ढाँचे' शब्द का प्रयोग किया था। जिसके विपक्ष में सुन्नी आए, और फिर 20 वर्षों के अंतराल के पश्चात् 1980 आया। अब तक राजनीति में कई बड़े बदलाव हुए। बीजेपी सामने आई, जिससे कई धार्मिक संगठन सक्रिय हुए। अप्रैल 1984, विज्ञान भवन, दिल्ली में विश्व हिन्दू परिषद के प्रेसिडेंट अशोक सिंघल ने ऐलान किया कि मन्दिर बनेगा और सीतामढ़ी से अयोध्या तक यात्रा निकाली जाएगी एवं देशभर से लोग शिलाएँ भेजें। किसी कारणवश यह यात्रा नहीं हो पाई। 6 माह बाद इंदिरा गांधी की हत्या हुई। 40 वर्षीय राजीव गाँधी भारत के युवा प्रधानमंत्री बने। 1984-85 तक यह चलता रहा कि हिन्दुओं के लिए मन्दिर के दरवाजे खोले जाएँ। 1986 में बीजेपी और कांग्रेस आने वाले चुनावों पर काम कर रही थी। 1986 में शाहबानो केस के कारण मुस्लिम पक्ष नाराज था। राजीव गांधी ने सुप्रीम कोर्ट के निर्णय को बदल दिया जिससे हिन्दू रुष्ट हुए। हिन्दुओं को खुश करने के लिए राजीव गाँधी ने हिन्दुओं के लिए द्वार खोल दिए, जिससे मुस्लिम पक्ष नाराज हुआ। जिसके चलते 6 फरवरी 1986 के दिन लखनऊ में बाबरी मस्जिद एक्शन कमेटी का गठन हुआ। अगस्त 1989 में लखनऊ हाईकोर्ट ने किसी के भी मस्जिद के अन्दर जाने पर रोक लगा दी।

विश्व हिन्दू परिषद के नेतृत्व में राम मन्दिर आंदोलन के चलते शिलाएँ भागलपुर में इकट्ठी हो रही थी; कि तभी अक्टूबर 1989 में हिन्दू-मुस्लिम के बीच एक महीने तक चले दंगे में करीब एक हजार लोगों की जान गई। विश्व हिन्दू परिषद ने विवादित ढाँचे पर शिलान्यास कराने की घोषणा की, जिसके पक्ष में यू.पी. एवं केन्द्र सरकारें नहीं थी। लेकिन विश्व हिन्दू परिषद के दबाव में राजीव गाँधी की सरकार मान गई और रथ यात्रा, शिलान्यास की मंजूरी दे दी गई। लेकिन इस सबके बावजूद भी कांग्रेस की हार हुई। अब वी.पी. सिंह की सरकार बनी। जिसे लेफ्ट और राइट दोनों का ही समर्थन प्राप्त था। 25 सितम्बर 1990 के दिन आडवाणी जी के नेतृत्व में रथ यात्रा सोमनाथ से अयोध्या तक के लिए आयोजित की गई, जिसकी देखरेख 40 वर्षीय नरेन्द्र मोदी ने संभाली थी। 30 अक्टूबर 1990 को इस यात्रा के अयोध्या पहुँचने का

ऐलान हुआ। लगभग 10 हजार कि.मी. की यह यात्रा जिस भी शहर से गुजरी वहीं दंगे हुए। 23 अक्टूबर 1990 को यात्रा बिहार पहुंची और तत्कालीन मुख्यमंत्री लालू प्रसाद यादव ने बिहार के डीआईजी रामेश्वर उराव को लालकृष्ण आडवाणी को गिरफ्तार करने का आदेश दिया। बिहार के समस्तीपुर में लालकृष्ण आडवाणी और प्रमोद महाजन को गिरफ्तार कर लिया गया। जैसे ही गिरफ्तारी हुई भाजपा ने वी.पी. सिंह सरकार से समर्थन वापिस ले लिया क्योंकि लालू प्रसाद यादव वी.पी. सिंह का समर्थन कर रहे थे। बिहार के दुमका में आडवाणी और प्रमोद महाजन को 12 दिनों के लिए सिंचाई विभाग के एक बंगले में कैद करके रखा गया। उस समय यूपी में मुलायम सिंह की सरकार थी। कार सेवक अयोध्या पहुँचे, जिन्होंने मस्जिद पर चढ़कर झंडे लगाए। 30 अक्टूबर 1990 को मुलायम सिंह ने गोलियां चलाने और लाठीचार्ज का आदेश दिया जिसमें कई कार सेवकों की हत्या हुई। मई 1991 के चुनावों का प्रचार करते हुए राजीव गांधी की हत्या कर दी गई, तत्पश्चात् कांग्रेस जीती, पी.वी. नरसिम्हा राव भारत के प्रधानमंत्री बने। यूपी में विधानसभा के चुनाव हुए और बीजेपी की कल्याण सिंह की सरकार यूपी में आई। 30 अक्टूबर 1992 पी.वी. नरसिम्हा राव ने विश्व हिन्दू परिषद एवं बाबरी मस्जिद एक्शन कमेटी के सभी नेताओं को दिल्ली में बुलाकर बैठक की लेकिन परिणाम कुछ न निकल सका। इसी दिन 30 अक्टूबर 1992 को विश्व हिन्दू परिषद ने यह ऐलान किया कि ज्यादा से ज्यादा कार सेवक अयोध्या पहुँचे और 6 दिसम्बर 1992 का दिन कार सेवा के लिए निर्धारित किया गया। इस ऐलान के पश्चात् प्रधानमंत्री पी.वी. नरसिम्हा राव ने यूपी में राष्ट्रपति कानून लगाने के लिए कल्याण सिंह से कहा, लेकिन कल्याण सिंह ने कहा कि 200 गज की दूरी पर कार सेवा आयेजित की जाएगी, कोई भी गोली नहीं चलेगी। करीब 1 लाख कार सेवक अयोध्या पहुँचे, जिनमें कई दलों के सदस्य थे। मस्जिद के मुख्य गुम्बद को क्षति पहुंचाई गई एवं कार सेवकों द्वारा छोटे-छोटे मन्दिरों का निर्माण किया गया। सुप्रीम कोर्ट के फैसले में इस मुद्दे पर कहा गया-- "यह एकदम स्पष्ट है कि 16वीं शताब्दी का तीन गुम्बदों वाला ढाँचा हिन्दू कार सेवकों ने ढ़हाया था, जो वहाँ राम मन्दिर बनाना चाहते थे। यह ऐसी गलती थी, जिसे सुधारा जाना चाहिए था।"[6] 6 बजे के आसपास यूपी में राष्ट्रपति कानून लगा दिया गया। कल्याण सिंह को निलम्बित करने से पूर्व ही उन्होंने अपना इस्तीफा दे दिया। यह बात धीरे-धीरे देश-विदेश में फैली, जिसके परिणामस्वरूप भारत में ही नहीं पाकिस्तान में 30 और बांग्लादेश में 12 मन्दिरों को ध्वस्त किया गया। भारत में लगभग 2 हजार लोगों की जान गई, जिसमें मुंबई में 900 लोगों ने अपनी जान गंवाई। मुंबई में याकूब मेनन और टाइगर मेनन के ऑफिस जला दिए गए। दाऊद इब्राहिम के साथ दुबई या मिडल ईस्ट के अंडर वर्ल्ड के लोगों ने मुंबई में बॉम ब्लास्ट कराए। इस विभीषिका को रोकने के लिए ही 16 दिसम्बर 1992 को जस्टिस एम.एस. लिब्राहन कमीशन बनाया गया।

इस दहशत भरे मंजर से देश उभर ही रहा था कि 7 सालों बाद 2001 में विश्व हिन्दू परिषद ने एक कडक संदेश सरकार को दिया कि जल्दी से जल्दी मन्दिर को बनाने की प्रक्रिया पर जोर दें। साथ ही, मन्दिर निर्माण के लिए 15 अक्टूबर, 2002 का दिन ऐलान कर दिया और ज्यादा से ज्यादा कार सेवकों को अयोध्या पहुँचने के लिए कहा। इसी क्रम में 98 कार सेवक वापिस ट्रेन से आ रहे थे कि गुजरात के गोधरा में ट्रेन में आग लगा दी गई और फिर एक बार देश का माहौल खराब हुआ। 6 माह पश्चात् हाईकोर्ट ने अप्रैल 2003 में 3 जजों की एक बैंच बनाई एवं इस विवादित स्थान पर मालिकाना हक के लिए सुनवाई आरंभ हुई। साथ ही, ऑर्किलोजिकल सर्वे ऑफ इंडिया से खुदाई और निरीक्षण के पश्चात् निष्कर्ष की रिपोर्ट अगस्त 2003

तक पेश करने के लिए कहा गया। पहली बार इस विवादित क्षेत्र पर वैज्ञानिक निरीक्षण होने जा रहा था, जिसमें ऐसे तथ्य मिले कि मस्जिद में ऐसे खंभे हैं जिनपर 10वीं शताब्दी के हिन्दू मन्दिर के चिह्न हैं। तत्पश्चात् हिन्दुओं ने मन्दिर निर्माण पर अपनी दलीलें देनी आरंभ की। जुलाई 2005 में नेपाल के रास्ते से आकर राम जन्मभूमि परिसर पर 5 आतंकवादियों ने हमला किया; जिसके तहत् 2006 में हिन्दू पक्ष की ओर से बुलेट फ्रूफ काँच लगाने की अपील की गई।

30 सितम्बर 2010, हाईकोर्ट ने मालिकाना हक पर अपना फैसला सुनाया। तीन पक्षों के लिए तीन फैसले-- मुख्य परिसर राम जन्मभूमि न्यास को दी जाएगी, निर्मोही अखाड़े को सीता रसोई और राम चबूतरा दिया जाएगा एवं बाकी क्षेत्र सुन्नी वक्फ बोर्ड को दिया जाएगा। पहली बार कोर्ट राम जन्मभूमि के लिए सहमत थी। इस फैसले के विरोध में 14 अपीलें डालीं गई और 2011 में पहली बार मामला सुप्रीम कोर्ट पहुंचा। 7 सालों तक सुनवाई सुस्त चली, लेकिन 2019 से सुनवाई में तेजी आई, 5 जजों (चीफ जस्टिस रंजन गोगोई, जस्टिस एस.ए. बोबड़े, जस्टिस डी. वाई चंद्रचूड, जस्टिस अशोक भूषण, जस्टिस एस.ए. नजीर) का एक पैनल बनाया गया। सारे अतीत के प्रमाणों को देखते हुए, 9 नवम्बर 2019 को सुप्रीम कोर्ट ने ऐतिहासिक फैसला सुनाया। ऑर्किलोजिकल सर्वे ऑफ इंडिया की रिपोर्ट को मद्देनजर रखते हुए, आर्टिकल 142 का प्रयोग करते हुए रामलला के पक्ष में फैसला दिया गया। रामलला के पक्ष से जस्टिस देवकीनंदन अग्रवाल ने केस लड़ा और अंत में मालिकाना हक रामलला के पक्ष में रहा। चीफ जस्टिस ने कहा कि ढ़हाया गया ढाँचा ही भगवान राम का जन्मस्थान है और हिन्दुओं की यह आस्था निर्विवादित है। विवादित 2.77 एकड़ जमीन रामलला विराजमान को दी जाए। इसका स्वामित्व केन्द्र सरकार रिसीवर के पास रहेगा।"[7] सुप्रीम कोर्ट के फैसले में गोपाल सिंह विशारद (1950) को राइट टू वरशिप, निर्मोही अखाड़ा (1959) से ट्रस्ट में एक प्रतिनिधित्व सुन्नी बोर्ड (1961) को मस्जिद के लिए 5 एकड़ जमीन अन्यत्र दी गई। यह भी कहा गया कि 3 महीने के अंदर एक ट्रस्ट बनाया जाए। 5 फरवरी 2020 को ट्रस्ट बना। मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ ने 25 मार्च, 2020 को अयोध्या में चैत्र नवरात्रि व हिन्दू नववर्ष विक्रम संवत् 2077 के प्रथम पहर के तड़के तीन बजे, भगवान राम की प्रतिमा को स्वयं तिरपाल से निकालकर अस्थायी मन्दिर में विराजमान किया।[8] तत्पश्चात् प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने 5 अगस्त 2020 की श्री राम मन्दिर जन्मभूमि का भूमि पूजन किया एवं 22 जनवरी 2024 के दिन श्रीराम के बालरूप में विग्रह की प्राणप्रतिष्ठा नवनिर्मित मंदिर में की गई।

अयोध्या में नव निर्मित राम मन्दिर के स्थापत्य में धार्मिक आस्थाओं एवं सांस्कृतिक मूल्यों के साथ-साथ मन्दिर के संरक्षण पर भी विशेष रूप से ध्यान दिया गया। नागर शैली में निर्मित यह राम मंदिर अपनी संरचना के आधार पर भारत का सबसे बड़ा मन्दिर है। यह मन्दिर लगभग 161 फीट की ऊंचाई में एवं 28 हजार वर्ग फीट के क्षेत्र में है। मन्दिर में नागर शैली में 360 स्तम्भ, मुख्य शिखर के अलावा तीन मंजिलें और पांच मंडप हैं। गर्भगृह में 51 इंच लम्बी रामलला की बालरूपी प्रतिमा विराजमान है। इस प्रतिमा को नेपाल की गंडक नदी से लाई गई 6 करोड़ साल पुरानी शालिग्राम चट्टान से अरुण योगीराज ने नक्काशा है। गर्भगृह को इस प्रकार डिजाइन किया गया कि चैत्र महीने में शुक्ल नवमी के दिन दोपहर 12 बजे सूर्य की किरणें भगवान श्रीराम के मस्तक को प्रकाशित करें।

सोमनाथ एवं अक्षरधाम मन्दिर के स्थापत्य में जिस परिवार का योगदान रहा उसी परिवार के वास्तुकार चंद्रकांत बी सोमपुरा ने मन्दिर की रूपरेखा तैयार की। इस मन्दिर की प्रेरणा मध्य प्रदेश के खजुराहो एवं उड़ीसा के कोणार्क मन्दिर से ली गई है। इस मन्दिर का निर्माण भारत की लार्सेन एंड टर्बो

कंपनी ने किया है। अंतर्राष्ट्रीय आध्यात्मिक सौहार्द के संकेत के रूप में भगवान राम के अभिषेक समारोह के लिए थाईलैंड से मिट्टी भेजी गई। "खासतौर से 30 सालों में इकट्ठा की गई अलग-अलग भाषाओं में भगवान राम का नाम लिखीं लगभग 2 लाख इंटें मन्दिर के निर्माण में लगाई गई है।"[9] भगवान श्री राम के नाम से अंकित ये ईटें कार सेवकों की ही देन है।

अयोध्या सरयू नदी के किनारे बसा है जिसके कारण वहाँ पीली रेत देखने को मिलती है जिससे समय के साथ ढाँचे कमजोर पड़ सकते हैं। हिमालय से ज्यादा दूरी न होने के कारण भूकंप का भी डर है। अयोध्या भूकंप क्षेत्र 4 में आता है किन्तु मन्दिर का निर्माण इतनी मजबूती से किया गया कि यह मन्दिर जोन 6.5 के झटके झेलने की काबिलियत रखता है। मन्दिर में 2 हजार फीट नीचे गाड़े गए एक टाइम कैप्सूल में मन्दिर, भगवान राम और अयोध्या के बारे में प्रासंगिक जानकारी एक ताँबे की प्लेट पर अंकित है, जो आनेवाली पीढ़ियों के लिए मन्दिर की पहचान को संरक्षित करेगी।

अयोध्या राम मन्दिर भारतीय संस्कृति का परिचायक एवं जनमन की धार्मिक आस्थाओं का प्रतीक होने के साथ-साथ राजनीतिक, सामाजिक, ऐतिहासिक मुद्दे का विषय भी रहा। 1528-29 में बाबर के सेनापति मीर बाकी द्वारा मन्दिर तोड़कर बाबरी मस्जिद का निर्माण भारतीय जनमन की आस्था को ठेस पहुंचाने का मूल कारक था। परिणामतः दोनों ही पक्षों की धार्मिक आस्थाएँ 456 वर्षों से चले आ रहे इस मसले से जुड़ी रहीं। 456 सालों से चला आ रहा विवाद, 70 सालों तक कोर्ट में रहा। सुप्रीम कोर्ट का यह दूसरा सबसे लम्बा केस रहा जिसके लिए 10 लाख पन्नों की स्कैन हुई एवं जिसकी सुनवाई 40 दिनों तक चली। यह एक ऐसा फैसला था जिसमें दोनों पक्षों को देखा गया। 9 नवम्बर 2019 के उच्चतम न्यायालय के ऐतिहासिक फैसले का दोनों पक्षों ने सम्मान किया। मुल्ला-मौलवियों ने भी देश-विदेश से राम मन्दिर के लिए अपना योगदान दिया, जो भारत की एकता को दर्शाता है। संविधान पीठ द्वारा 45 मिनट तक पढ़े गए 1045 पन्नों के फैसले ने देश के इतिहास के सबसे अहम और एक सदी से ज्यादा पुराने विवाद का अंत कर दिया।

संदर्भ

1. https://www.youtube.com/watch?v=s3i73zSiq5w&t=4s. **2.** https://www.youtube.com/watch?v=0WG2Y-pYPI8&t=2553s. 3. https://www.youtube.com/watch?v=0WG2Y-pYPI8&t=2553s. **4.** वही। **5.** वही। **6.** https://www.bhaskar.com/national/news/ayodhya-ram-mandir-se-verdict-faisla-live-updates-ram-janmabhoomi-babri-land-dispute-01682585.html. **7.** https://www.bhaskar.com/national/news/ayodhya-ram-mandir-se-verdict-faisla-live-updates-ram-janmabhoomi-babri-land-dispute-01682585.html. **8.** https://www.indiatodayhindi.com/state/story/yogi-adityanath-narendra-modi-ramlala-statue-705705-2023-11-04 *9.* https://www.abplive.com/photo-gallery/news/india-who-designed-ayodhya-ram-temple-technology-engineering-and-architecture-2590265

सहायक प्राध्यापक

हिन्दी विभाग

माउंट कार्मल कॉलेज (स्वायत्त) बैंगलोर

ईमेल-prix3030@gmail.com

मो.- 7290859844

●

प्रयागराज कुम्भ : परम्परा और धरोहर

डॉ. निशा भारद्वाज

कुम्भ मेला भारतीय धर्म और संस्कृति का प्रकृतिनिधित्व करने वाला सबसे बड़ा पर्व है। प्रत्येक 12 साल में कुम्भ पर्व का आयोजन प्रयाग में गंगा-यमुना संगम पर, हरिद्वार में गंगा पर, नासिक में गोदावरी पर और उज्जैन में शिप्रा पर होता है। बड़ी संख्या में श्रद्धालु शांतिपूर्ण ढंग से धार्मिक कार्मकाण्डीय परम्परा का निर्वाह करके नदियों के पवित्र जल में स्नान करते हैं। एकमात्र प्रयाग में दो कुम्भ पर्वों के बीच 6 साल के अन्तराल पर अर्धकुम्भ पर्व का आयोजन होता है।

खगोलीय गणनाओं के अनुसार प्रयाग में कुम्भ मेला मकर संक्रान्ति के दिन से आरम्भ होता है। इस दिन सूर्य और चन्द्रमा, वृश्चिक राशि और बृहस्पति राशि, मेष राशि में प्रवेश करता है जिससे यहाँ पर गंगा-यमुना संगम का जल अमृतमय हो जाता है। अतः संगम-जल में स्नान करने वाले व्यक्ति के समस्त पापों का सर्वनाश होकर उसके लिए स्वर्ग का द्वार खुल जाता है।

पृथिव्या कुम्भ योस्य चतुर्धा भेद उच्यते/ चतुस्थले च पतनात् सुधा कुम्भस्थ भूतले/
विष्णुद्वारे तीर्थ राजेऽवन्त्यां गोदावरी तटे/सुधा बिन्दु विनिक्षेपात्, कुम्भ पर्वेति विश्रुतम।।[1]

कुम्भ पर्व के दौरान 9 दिन शाही स्नान के माने जाते हैं। ये नौ दिन यानि - **पौष पूर्णिमा, मकर संक्रान्ति, एकादशी, रथ सप्तमी, भीष्म एकादशी, मौनी अमावस्या, बसन्त पंचमी, माघ पूर्णिमा** और **महाशिवरात्रि।**

एक पौराणिक कथा अनुसार ऋषि दुर्वासा ने इन्द्र भगवान को फूलों की एक माला भेंट में दी थी। इन्द्र ने उस माला को अपने वाहन ऐरावत हाथी के गले में डाल दिया। ऋषि दुर्वासा ने अपनी भेंट का अपमान देखकर इन्द्र को स्वर्ग निष्कासन और शारीरिक बल क्षीण हो जाने का श्राप दे डाला था। राजा बलि के नेतृत्व में दैत्यों से पराजित और स्वर्ग से निष्कासित इन्द्र को भगवान विष्णु ने क्षीरसागर का मंथन करके अमृत पान करने का सुझाव दिया था। अमृतपान करने के लालच में दैत्य राजा बलि ने देवताओं के साथ क्षीरसागर मंथन की सन्धि की। इस संधि के तहत सागर मंथन से विष, लक्ष्मी, चन्द्रमा, कल्पवृक्ष, कामधेनु, अमृत इत्यादि रत्न निकले। इन्द्र के इशारे से उसका पुत्र जयन्त अमृत कलश लेकर भाग गया। गुरु शुक्राचार्य के आदेश पर दैत्यों ने 12 दिन-रात जयन्त का पीछा किया।

जयन्त के संग दैत्यों की छीना-झपटी में कलश से अमृत की कुछ बूँदें पृथ्वी पर हरिद्वार, उज्जैन, प्रयाग और नासिक की नदियों से गिर गई थी।[2] इन 12 दिनों की छीना-झपटी के दैरान चन्द्रमा ने कलश के रिसाव, सूर्य ने कलश की टूटने और बृहस्पति ने अपहरण एवं शनि ने इन्द्र के भय से अमृत कलश की गिरने से रक्षा की थी।[3] तब भगवान विष्णु ने मोहिनी रूप धारण करके लड़ाई को सुझालते हुए सूझबूझ के साथ देवताओं को अमृतपान कराया था। इस प्रकार देवाताओं के 12 दिन, पृथ्वी पर 12 साल तुल्य और राशियों के संयोजित योग *(सूर्यन्दुगुरुसंयोगस्तद्राशौ यत्र वत्सरे। सुधाकुम्भप्लवे भूमौ कुम्भो भव्यति नान्याथा।।)* को धार्मिक पवित्रता प्राप्त हुई। इसी कारण कुम्भ 12 साल पर ग्रहों व राशियों के खगोलीय संयोजन पर आयोजित किया जाता है।[4]

कुम्भ की दूसरी कहानी गरुड़ और उनकी माता विनिता के दासत्व से मुक्ति की है। भगवान विष्णु वाहन गरुड़ की माता अपनी ही बहन कद्रु की दास थी। कद्रु और विनिता ऋषि कश्यप की पत्नियाँ थीं। सर्प माता कद्रु ने अपने पुत्रों के रक्षण और भलाई के लिए बहन विनिता और उसकी संतान को अपनी सूझबूझ से दिग्भ्रमित करके दास बनाया था। कद्रु ने गरुड़ से विनिता और उसको अमृत लाकर देने के समझौते पर आजादी देने का वादा किया था। गरुड़ ने मातृ निष्ठा के तहत इन्द्र से अमृत कलश छीनकर ऋषि कश्यप के आश्रम की तरफ उड़ान भरी थी। उड़ान के दौरान गरुड़ ने विश्राम के लिए हरिद्वार, प्रयाग, उज्जैन और नासिक नामक चार स्थानों पर कलश रखा ता। कलश रखने के दौरान इन स्थानों पर अमृत की कुछ बूँदें गिर गईं थीं। इसी कारण इन चार स्थानों पर कलश यानि कुम्भ पर्व का आयोजन किया जाता है। गरूड़ ने अमृत कलश विमाता कद्रु को देकर बदले में अपनी माता और स्वयं की आजादी प्राप्त की थी। गरुड़ ने सूझबूझ और समयगत फैसला लेकर सर्पों को अमृत पात न करने देकर देवताओं के प्रति निष्ठा के तहत इन्द्र को वापस कलश सुपुर्द कर दिया था।[5]

प्रयाग कुम्भ : इतिहास और नामकरण : इतिहासकार मैकलीन के अनुसार प्रयाग में कुम्भ पर्व का पहला ऐतिहासिक लिखित विवरण 1870 ई. का है जोकि तीर्थयात्रा के दौरान स्वच्छता नियन्त्रण बढ़ाने के संबंध में है। हालांकि 1864 ई. में जी.एच.एम. रिकेट्स ने अर्द्ध कुम्भ मेले में असाधारण भीड़ का उल्लेख किया है। इस प्रकार प्रयाग का पहला कुम्भ मेला 1870 में सम्पन्न हुआ था जो कि ब्रिटिश रिपोर्ट के अनुसार बहुत ज्यादा संख्या में लोगों के आने के बावजूद बिना किसी दुर्घटना के सम्पन्न हो गया था।[6] सवाल उठते हैं कि बिना दुर्घटना का क्या अर्थ है? 1870 से पहले प्रयाग या इलाहाबाद में मेला आयोजित होता था या नहीं? कुम्भ मेला नामकरण से पहले इसे मेले का नाम क्या था? यदि मेला आयोजित होता था तो उसकी निरन्तरता को कायम रखने में किस समुदाय का योगादान है? प्रयाग में ब्रिटिशर्स क्या कर रहे थे तथा उनका कुम्भ मेले से क्या संबंध था?

प्रयाग-मेले के कुम्भ नामकरण की कहानी ब्रिटिश शासन और अधिकारियों से जुड़ी हुई है। 1765 की सन्धि के तहत पराजित मुगल शासक शाहआलम से ब्रिटिश कम्पनी को इलाहाबाद का अधिकार प्राप्त हुआ था। शुरुआत में कम्पनी इलाहाबाद के किले, क्षेत्र और मेले पर अपनी पकड़ मजबूत करने के लिए स्थानीय लोगों की सेवा ले रही थी। 1801 में ब्रिटिश कम्पनी ने मुनाफा और राजस्व वृद्धि के लिए जनवरी माह में आयोजित होने वाले सालाना मेला में स्वयं स्थानीय लोगों को नियुक्त करके राजस्व एवं करों का संग्रह करना आरम्भ कर दिया था जो कि वहाँ के प्राग्वाल ब्राह्मणों के अधिकारों पर सीधे तौर पर हमला था। सदियों से प्राग्वाल ब्राह्मण इलाहाबाद में जनवरी माह में मेले

का आयोजन करके तीर्थ यात्रियों को श्राद्ध, मुंडन, धार्मिक कार्यों निमित्त हवन-यज्ञ और वंशावली संरक्षण की सेवा प्रदान कर रहे थे। कम्पनी ने 1806 ई. में स्थानीय लोगों को मध्यस्थ बतौर हटाकर स्वयं तीर्थ-यात्रा कर संग्रह करने के तहत तीर्थ यात्रियों पर प्रति व्यक्ति एक रुपया कर तथा वाहन कर एवं अन्य कर अतिरिक्त आरोपित किए थे। कम्पनी को भारी मात्रा में कर देने के बाद तीर्थ यात्रियों की धार्मिक अनुष्ठानों पर खर्च करने की क्रय शक्ति में कमी आ गई थी, तीर्थ-यात्रियों की संख्या कम हो गई थी। इस प्रकार कम्पनी ने प्रत्यक्ष तौर पर प्राग्वाल ब्राह्मणों की धार्मिक भूमिका पर हमला किया था जिससे प्राग्वाल ब्राह्मण कम्पनी से प्रत्यक्ष संघर्ष की स्थिति में आ गए थे। इलाहाबाद किले में रहने वाले अधिकारी फैनी पार्क्स ने कहा था कि प्रत्येक तीर्थयात्री यहाँ तक कि भिखारी तक को एक रुपया कर त्रिवेणी में स्वतंत्रता पूर्वक स्नान करने के लिए अदा करना पड़ता था जो कि बहुत ज्यादा था। उस समय एक रुपया प्रति व्यक्ति एक महीने के जीवन-यापन के लिए खर्चा होता था।

1815 में 4000-5000 प्राग्वाल ब्राह्मणों ने ब्रिटिश व्यवस्था का विरोध करते हुए मेले के दौरान अनुष्ठान न करने का फैसला लेकर मेला कार्यों से हाथ खींच लिया, जिसके कारण ब्रिटिश कम्पनी को तीर्थ यात्रा कर राजस्व का नुकासन हुआ। परन्तु व्यापारियों, दुकानदारों, मिठाईवालों, नाईयों और अन्य सेवा दाताओं पर कई प्रकार के कर और शुल्क लगाकर लाभ कमाना जारी रखा। उस समय ईसाई मिशनरियों ने प्राग्वाल ब्राह्मणों और तीर्थ यात्रियों को अज्ञानी एवं अंधविश्वासी कहकर आलोचना की। मिशनरियों ने मेले, अनुष्ठानों, मूर्तिपूजा और हिन्दू देवी-देवताओं के खिलाफ साहित्यिक दुष्प्रचार करके तीर्थ-यात्रियों को ईसाई बनाने का प्रयास किया। इसके विरोध स्वरूप प्राग्वाल ब्राह्मणों ने 1857 की क्रान्ति में हिस्सा लेकर दारागंज में नावों के पुल पर अधिकार करके कम्पनी के गंगा नदी में संचार मार्ग को भंग कर दिया और तीर्थ यात्रियों में मिशनरियों और चर्चों को हिन्दू धर्म विरोधी बताकर प्रचार किया। प्राग्वाल ब्राह्मणों की कार्यवाहियों के खिलाफ अत्याचारी हथकंडों के माध्यम से कर्नल नील ने कुम्भ-स्थल को निशाना बनाया। प्राग्वाल ब्राह्मणों पर गोलीबारी करके हत्या कर निवास स्थलों को जला दिया गया। इस प्रकार 1857 की क्रान्ति के दौरान कुख्यात-दमनात्मक और क्रूर हिंसक प्रणाली द्वारा कम्पनी ने दोबारा इलाहाबाद पर अपना अधिकार स्थापित किया। अधिकार स्थापना के बाद सर्वप्रथम ब्रिटिश-तख्त ने प्राग्वाल ब्राह्मणों पर विद्रोही होने और अव्यवस्था फैलाने का आरोप लगाकर उन्हें उजाड़ा, कुम्भ-भूमि एवं कीड़गंज की भूमि जब्त करके छावनी में तब्दील की और प्राग्वाल ब्राह्मणों को फांसियाँ दी। जिसके कारण 1500 प्राग्वाल ब्राह्मण परिवारों को पूरी की पूरी बस्ती जला देने की घटनाओं से और गोलियां मार देने के डर से प्रयाग छोड़कर दूसरे स्थानों पर जाकर उन्हें शरणार्थी जीवन जीने और जंगलों में छुपकर रहने के लिए मजबूर होना पड़ा था। तथापि प्राग्वाल ब्राह्मणों ने हार न मानते हुए ब्रिटिश की अनुमति न होने और विरोध के बावजूद 1860 में दोबारा पूरी शक्ति से मेला आयोजित किया। मेले के दौरान प्राग्वाल ब्राह्मणों ने अपने झण्डों पर ब्रिटिश विरोधी प्रतीकों, निशानों और मिशनरी गतिविधि विरोधी साहित्य द्वारा तीर्थ यात्रियों और विदेशी मीडिया का आकर्षण प्राप्त किया था। अतः मेले के सफल आयोजन पर ब्रिटिश मीडिया ने घृणात्मक तरीके से लंदन के अखबारों में लिखा था कि मेले में प्राग्वाल ब्राह्मणों ने ब्रिटिश विरोधी निशानों का उपयोग किया था।[8] 1870 में पहली बार इलाहाबाद कमीश्नर राबर्टसन ने लिखा कि चार साल पहले अर्द्ध कुम्भ था। इस बार पूर्ण कुम्भ का आयोजन हुआ है, पूर्ण कूम्भ की विशेषता साधुओं का जुलूस होता है। साधुओं का जुलूस

केवल कुम्भ पर्व के दौरान निकलते हैं, न कि अन्य मेलों के समय।[9]

प्रयाग में कुम्भ पर्व के नामकरण के बाद सवाल उठता है कि, 1870 से पहले कुम्भ पर्व का नाम क्या था तता उसका ऐतिहासिक महत्व क्या था? 1870 से पहले जनवरी माह में मकर संक्रांति के दिन से आरम्भ होने वाले मेले को **माघ मेला** कहा जाता था। जॉन इर्विन के अनुसार प्राचीन काल से संगम स्थल पर माघ मेला भरता है। प्राचीन काल से आज तक माघ मेले में लोग संगम नदी-जल में डुबकी लगाकर पापों का नाश और स्वर्ग प्राप्ति की राह चुनते थे। *हर साल सूर्य मेष राशि, बृहस्पति कुम्भ राशि में प्रवेश करता है, तब माघ मेला सम्पन्न होता है जिसे आज कुम्भ मेले के रूप में मान्यता प्राप्त है।* प्रयाग में राजा अशोक के पूर्ववर्ती काल में बने और तिथिबद्ध कोसम स्तम्भ या रोसेटा स्टोन पर प्रयाग और माघ मेले का ऐतिहासिक धार्मिक और पुण्य स्थल के रूप में विवरण उल्लेखित है। प्रारम्भिक दस्तावेजों में प्रयाग को पृथ्वी की नाभि अर्थात ईश्वर संग संवाद-संचार की भूमि कहा गया है। ब्राह्मण की उत्पत्ति जल से मानी जाती है तथा उस जल में से उभरने वाली पहली मिट्टी-संरचना प्रयाग को माना जाता है। इस प्रकार प्रयाग संग पौराणिक कथा वराह भगवान द्वारा हिरण्याक्ष द्वारा जल में छुपाई पृथ्वी को ढूंढकर अपनी नाक पर रखकर बाहर लाने की कथा भी साम्यता करती है।[10]

पृथ्वी और स्वर्ग का पृथक्करण भी प्रयाग में माना जाता है। स्वर्ग और पृथ्वी को अलग करने वाला साधन वृक्ष या स्तम्भ को माना जाता है। इस वृक्ष द्वारा स्वर्ग और पृथ्वी के बीच की शून्यता को अन्तरिक्ष से भरा गया और सूर्य को जल से मुक्त किया गया था। सूर्य द्वारा पृथ्वी पर प्रकाश का फैलाव करके जीवन-संचार किया गया था। ब्रह्मण्डीय जीवन-चक्र की प्रतीक उच्च भूमि को झूसी गाँव के रूप में पहचान प्राप्त है। यहाँ महाभारत-काल में पाण्डवों ने अपने निर्वासन काल के दिन व्यतीत किए थे। यहाँ पर स्थित कूप को समुद्र कूप कहा जाता है, इसके जल का प्राग्वाल समुदाय अनुष्ठान की गतिविधियों में उपयोग करता था। प्रयाग माघ मेले में आने वाले तीर्थ यात्रियों के लिए यहाँ स्थित वृक्ष और कूप की पूजा करना अनिवार्य है। यह कूप भूमिगत नाली के माध्यम से संगम-जल से भरता है। ब्रह्माण्ड उत्पत्ति स्थल के रूप में दारागंज और वहाँ के वासुकी मंदिर को पहाचाना जाता है, जोकि नदियों में आने वाली बाढ़ के दौरान भी नहीं डूबता है, क्योंकि दारागंज की रक्षा वासुकी नाग करता है। इसी कारण वासुकी मंदिर में माघ-मेला श्रद्धालुओं द्वारा पूजा-अर्चना करना जरूरी है। पुरातत्वशास्त्रियों के अनुसार दारागंज टीला प्राचीन काल से स्थलाकृति निर्माण करता रहा है।[11]

मत्स्य पुराण के प्रयाग महात्म्य मंडल में प्रयाग को चार तीर्थ-स्थलों से घिरी भूमि के रूप में वर्णित कर रखा है, दारागंज का वासुकी सर्प मंदिर, झूसी का समुद्र कूप, अर्लाकपुरी का वैष्णव मंदिर और किला स्थित अक्षय वट, इन चारों पवित्र स्थलों पर माघ महीने में प्रत्येक तीर्थ यात्री को जाकर माथा टेकना, विधि-विधान से पूजा-अर्चना और ब्राह्मणों को भोजन कराना अनिवार्य है। माघ महीने में प्रयाग की पवित्रता और मेले का वर्णन प्राप्त होता है।[12]चीना यात्री ह्वेन्सांग अपने विवरण में लिखता है कि, प्रयाग और संगम भूमि का प्राचीन काल से दान-पुण्य भूमि और पवित्र स्थल के रूप में महत्व रहा है। इसलिए पहले और आज तक अनेक राजा यहाँ पर दान-पुण्य करके संगम जल में स्नान करते रहे हैं। राजा हर्ष ने भी अपने समस्त खजाने, वस्त्रों, अनाज और धातुओं का प्रयाग में दान करके हवन-यज्ञ किया था। हर्ष दान करके खुशी से चिल्लाने लगा था, कि उसने दान करके पुण्य कार्य किया है। इसी प्रकार बौद्ध धर्म के पाली साहित्य में भी माघ मेला स्नान का विवरण प्राप्त होता है। मझिम निकाय में महात्मा बुद्ध

कहते हैं कि प्रयाग में स्नान करने से व्यक्ति के बुरे और क्रूर कर्म धुल नहीं सकते, बल्कि पुण्यवान व्यक्ति को हृदय से शुद्ध और कर्म में निष्पक्ष होना चाहिए। महाभारत में प्रयाग माघ स्नान तीर्थ का अतीत की गलतियों और अपराधबोध के लिए प्रायश्चित के साधन रूप में उल्लेख किया गया है। प्रयाग को मनसा तीर्थ कहा गया है, अर्थात् व्यक्ति सत्य, दान, आत्म-नियन्त्रण, धैर्य और अन्य मूल्यों के साथ जीवन व्यतीत करने की ओर प्रशस्त हो सकता है।[13]

ह्वेनसांग ने प्रयाग के स्तम्भ का रोचक विवरण लिखा है। ह्वेनसांग के अनुसार तपस्वी इस स्तम्भ पर चढ़कर एक हाथ और पैर से स्तम्भ को पकड़कर एक हाथ और पैर को फैलाकर सूर्य पर नजर गड़ाए रखते हैं। यह सूर्य-चक्र पूजा है। अर्थात यह क्रिया सूर्य के घूर्णन और गति की अनुष्ठान प्रक्रिया है जिसे सूर्य की उर्वर शक्तियों को उत्तेजित करने के लिए वर्ष की शुरुआत में किया जाता था। ह्वेनसांग ने महान अक्षय वट या सदाबहार अंजीर वृक्ष का भी उल्लेख किया है। इस अंजीर वृक्ष की शाखाओं पर यात्री चढ़कर संगम जल में कूदकर अपने प्राण त्याग देते थे, ताकि वे जीवन-चक्र और पाप-पुण्य से मुक्त हो जाएं। इसी कारण इस वृक्ष के नीचे मानव हड्डियों का ढेर लगा रहता था। इस अंजीर वृक्ष का अलबरूनी ने भी जिक्र किया है। यह अंजीर वृक्ष शाश्वतता का प्रतीक है, जो क्षण भर में पृथ्वी और आकाश (जीवन और मृत्यु) को अलग कर देता है।[14]

मौजूदा समय में कोसम स्तम्भ, अक्षय वट और समुद्र कूप इलाहाबाद के किले के अन्दर आते हैं। इलाहाबाद किले का निर्माण मुगल शासक अकबर ने 1575-84 में करवाया था। बादशाह अकबर ने राजा बीरबल के साथ 1575 में माघ मेले की यात्रा की थी, जिसका वर्णन कोसम-स्तम्भ पर उत्कीर्ण है। अकबर ने माघ मेले की पवित्रता, महत्ता और प्रयाग की धार्मिक अहमियत देखकर प्रयाग का अपने दीन-ए-इलाही धर्म के मुख्यालय के रूप में चुनाव किया था। अकबर ने इस्लाम की सहब्दि संग जीवन विनाश की कहानी की सच्चाई न पाकर और हिन्दू धर्म की महत्ता के तहत दोबारा जीवन निर्माण के लिए प्रयाग चुनाव किया था। अकबर ने अपने नए धर्म की शुरुआत कर एवं किला निर्माण करवाकर प्रयाग का नाम इलाहाबाद, इलाहा (अरबी भाषा में ईश्वर), आबाद (आवास) अर्थात् ईश्वर का निवास रखा था। अकबर ने प्रयाग में माघ मेले में जीवन-चक्र समाप्ति की धारणा के तहत मृत्यु-अनुष्ठान पर पाबंदी लगा दी थी और समुद्र कूप जलाशय को बंद कर दिया था। शायद यह कार्य ब्रिटिशों ने इलाहाबाद किले को शस्त्रागार में तब्दीली के दौरान 1798 में समुद्र कूप जलाशय को नष्ट करके किया था। अकबर के समय भी अक्षय वट को जीवन-वृक्ष और अविनाशी रूप में मान्यता प्राप्त थी। विलियम फिंड ने अंजीर वृक्ष के हरे-भरे होने और टिफैनथलेर ने 1766 में अपनी यात्रा के दौरान अक्षय वट के सूख जाने, परन्तु उसकी टहनियों को काटने पर दूध जैसा सफेद पदार्थ निकलने के बार में लिखा है। यह सफेद दूध वीर्य यानि जीवन संभावना की अभिव्यक्ति था। आज किले के अन्दर अक्षय वट और पाताल पुरी मंदिर, दर्शन गृह के नाम से प्रसिद्ध हैं जो किला निर्माण के कारण भूमि को ऊँचा उठाने के कारण स्थिति का द्योतक है। भक्त भूमिगत मार्ग, जिसका निर्माण 1611 से 1766 के बीच हुआ था, से होकर अक्षय वट और मंदिर में पूजन करते हैं।[15]

चैतन्य चरितामृत के अनुसार 16वीं सदी में चैतन्य जी ने माघ मेले की पवित्र यात्रा और स्नान किया था। रामचरितमानस के रचयिता तुलसीदास ने भी सालाना माघ मेला की पवित्रता का उल्लेख करते हुए कहा है कि, रबी की फसल बाद हिन्दू तीर्थ यात्री हजारों की संख्या में माघ मेले की तरफ उमड़ पड़े थे, जिनको रोकने में जंगल और मैदान भी बाधा न बन सके थे।

माघ मकरगति रवि जब होई, तीरथपति आव सब कोई।

देव, दनुज, किन्नर, नर श्रेणी, सादरमज्जहि सकल त्रिवेणी।।

'तबकात-ए-अकबरी' और 'यादगार बहादुरी' में इलाहाबाद में सर्दियों में माघ महीने में सालाना माघ मेले के आयोजन और प्रयाग को तीर्थराज कहकर उसकी पवित्रता का उल्लेख कर रखा है। यह मेला सूर्य के मकर राशि में प्रवेश करने पर भरता था।[16] इस प्रकार प्रयाग या इलाहाबाद में सर्दियों में भरने वाले मेले की माघ मेले के रूप में पुष्टि होती है, जिसका प्रमाण पुराण, महाभारत,, रामायण और ऐतिहासिक विवरणों में भरपूर मात्रा में देखने को मिलता है। 1765 से कम्पनी के इलाहाबाद पर अधिकार बाद के रिकार्डों में माघ मेले की पुष्टि होती है जिसमें कर संबंधी और प्रशासनिक कार्यों एवं व्यवस्था की जानकारी है। इसके अलावा कई राजाओं और राजकुमारों द्वारा भी माघ मेले में कर में छूट देने की मांग के भी कई रिकार्ड दर्ज हैं। एशियाटिक सोसाइटी के भोलानाथ चंदर ने भी 1869 में इलाहाबाद के इस सालाना महान मेले का विवरण अपनी किताब में दर्ज कर रखा है। फिर 1870 में इस मेले को 'कुम्भ मेला' नाम प्राग्वाल ब्राह्मणों के विशेष प्रयास के कारण मिला था।[17]

स्थानीय परम्परा से अकबर के काल की एक घटना की जानकारी प्राप्त होती है। अकबर ने प्रयाग के इलाहाबाद नामकरण बाद इलाहाबाद किले की नींव बारिश के मौसम में रखी थी, जोकि बारिश के कारण आने वाली बाढ़ से बह गई थी। ज्योतिषियों ने अकबर को किले की नींव को बुराई से बचाने के लिए एक ब्राह्मण की बलि देने का उपाय सुझाया था। एक स्थानीय प्राग्वाल ब्राह्मण ने स्वयं को बलि के लिए पेश करके अपने समुदाय के ब्राह्मणों को त्रिवेणी पर अनुष्ठान करने का एकाधिकार देने की मांग की थी। अकबर ने मांग पूरी करके ब्राह्मण की बलि देकर किले की नींव को सुरक्षित किया था। इसी कारण त्रिवेणी पर प्राग्वाल ब्राह्मण ही तीर्थयात्रियों को स्नान और धार्मिक अनुष्ठान कराने वाले पुरोहित होते हैं।[18]

अखाड़े और साधु : कुम्भ मेले में साधु-संन्यासियों के अखाड़े (सम्प्रदाय) प्रमुख आध्यात्मिक संस्थाएँ हैं, जोकि अनुष्ठानों, सांस्कृतिक गतिविधियों और स्नान के माध्यम से हिन्दू परम्पराओं को संरक्षित करते हैं। अखाड़े अपनी समृद्ध परम्परा और इतिहास के साथ हिन्दू दर्शन और अभ्यास की विभिन्न परम्पराओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। इन परम्पराओं में उग्र तप से लेकर आध्यात्मिक शिक्षा शामिल है। प्रत्येक अखाड़े की विशिष्ट पहचान, दर्शन और परम्परा है, जोकि कुम्भ मेले को जीवंतता प्रदान करती हैं। कुम्भ में अखाड़ों की मौजूदगी उनके भव्य जुलूस, शाही स्नान और बड़े-बड़े अनुष्ठानों से चिह्नित होती है। अखाड़े में महामण्डलेश्वर सहित अनेक पद और भूमिकाएँ होती हैं। अखाड़े प्राचीन परम्पराओं, आध्यात्मिकता, पवित्र ग्रन्थों और भजनों को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तांतरित करते हैं। अखाड़ा परम्परा का प्रारम्भ 8वीं सदी में हुए शंकराचार्य से माना जाता है। 18वीं सदी तक 13 अखाड़े संगठित हो चुके थे, जिनमें से 10 हिन्दू धर्म और 3 सिख धर्म से सम्बन्धित हैं। 13 अखाड़ों की परम्परा में 2015 में किन्नर अखाड़ा का भी सम्मिलन हुआ।

अखाड़ा परम्परा हमें दशनामी अखाड़ों के तहत 7 शैव (महानिर्वाणी, अटल-निरंजनी, आनन्द, जूना, आवाहनी और अग्नि), 3 वैष्णव (निर्वाणी, दिगम्बर और निर्मोही) और 3 सिख (बड़ा पंचायती उदासीन, छोटा पंचायती उदासीन और निर्मल)। ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा इलाहाबाद का अधिकार प्राप्त करने तक माघ मेले का आयोजन और प्रबन्धन इन अखाड़ों द्वारा किया जाता था। अखाड़े मेले में व्यापार, रसद आपूर्ति, निगरानी, व्यवस्था संयोजन,

कर एकत्रीकरण और विवादों का निपाटारा करते थे। ये अखाड़े कुम्भ पर्व के मुख्य आनुष्ठानिक व्यक्तित्व हैं। मेले का औपचारिक संगठन अखाड़ों की श्रेष्ठता को स्पष्ट रूप से अभिव्यक्ति प्रदान करता है। अखाड़े अपनी वरीयता क्रम का निर्धारण ईस्ट इंडिया कम्पनी ने किया था। ब्रिटिशों ने अखाड़ों से व्यापार, निगरानी और न्यायिक अधिकार छीनकर स्वयं के लिए लाभमय व्यवस्था का निर्माण किया। अखाड़ों के जुलूस निकालने के तरीकों को संहिताबद्ध और बड़े एवं शक्तिशाली अखाड़ों को पहले जल में प्रवेश एवं स्नान करने का अधिकार प्रदान किया था। 1947 के बाद राज्य सरकारों ने कुम्भ पर्व में बुनियादी ढाँचों और व्यवस्था का प्रबन्धन संभाला है।[19]

तपस्वी, योद्धा, भिक्षुओं के समूह को अखाड़ा नाम से जाना जाता है। इनमें से सैकड़ों योद्धा भिक्षु नागा तपस्वी है। नागा नाम साधुओं को युद्ध में वस्त्रहीन होकर युद्ध करने के कारण प्राप्त हुआ था। धीरे-धीरे अखाड़ों ने शक्ति ग्रहण करके स्वयं को आर्थिक-राजनैतिक हितों व धन और शक्ति के अन्य साधनों की तरफ मोड़ा।[20]

नागा साधु यौगिक अभ्यासों के दौरान, जीवन की क्षणभंगुरता के अहसास को अभिव्यक्त करते रहते हैं, जिसमें से एक शरीर पर राख मलकर रखना है। पवित्र राख अनुस्मारक बतौर शरीर के मृत्यु संग जलकर राख हो जाने की सत्यता की अभिव्यक्ति है। साधु दर्द के प्रति उदासीनता, कांटों पर लेटना-चलना, अत्यधिक गर्मी-सर्दी को सहना, लिंग की ताकत के अविश्वसनीय करतब, शारीरिक अंगों को विकृत करना आदि से शारीरिक संवेदनाओं पर श्रेष्ठता हासिल करने का उद्घोष करते हैं। ये साधु अपनी तपस्याओं के कारण शक्तिशाली व्यक्तित्व बनकर दर्शनार्थियों को आशीर्वाद प्रदान करते हैं। कुम्भ के समय साधु मेला मैदान में अपने शिविरों में रहकर नए साधुओं को दीक्षा देने, आध्यात्मिक चर्चा, प्रार्थना अनुष्ठान, बैठकें, यौगिक करतब, ध्यान, प्रवचन और सत्संग करते हैं।[21]

जूना अखाड़ा ने लक्ष्मी नारायण किन्नर की मांग और साहसिक कदम का स्वागत करते हुए हिन्दू संस्कृति की विशालता का प्रमाण देकर किन्नर अखाड़ा को मान्यता दी। किन्नर अखाड़ा, जूना अखाड़ा के अधीन रहकर अपना जुलूस निकालता है। लक्ष्मी नारायण ने प्राग्वाल ब्राह्मणों के दिशा-निर्देशन में मृत किन्नरों का सामूहिक श्राद्ध अनुष्ठान करके किन्नरों को हिन्दू संस्कृति के प्रामाणिक हिस्से के रूप में अभिव्यक्त किया है।

संदर्भ एवं पाद टिप्पणी

1. असीम श्रीवास्तव और मंजुश्री श्रीवास्तव,प्रयाग कुम्भ उत्पत्ति तथा इतिहास -- एक विश्लेषण, (हिन्दुस्तानी, भाग- 80, अंक-1 जनवरी-मार्च 2021), पृष्ठ संख्या, 139-70। **2.** S.L. Gupta, Kumbh Mela : An Interpretation, article in kumbh Mela Pilgrimage to Greatesst Cosmic Fair, Eds by D.P. Dubey, (Allahabad : Society of Pilgrimage Studies, 2013), pp. 63-70 and kama Maclean, Making the Colonial State Work for You : The Modern Beginning of the Ancient Kumbh Mela in Allahabad, (The Journal of South Asia, Vol. 62, No. 3, 2003), pp. 873-905. **3.** Lotty Eldering and Janak Pandey, Experiencing the Mahakumbh Mela : The Biggest Hindu Fair in the World. (Social Psychology of Collectivity, Vol. 52, No. 4,2007), pp. 273-85. **4.** सुरेश चन्द्र श्रीवास्तव, कुम्भ ज्योतिष शास्त्रीय आधार, (हिन्दुस्तानी, भाग- 80 अंक-1, जनवरी-मार्च 2021), पृष्ठ संख्या 52-53। **5.** D.P.Dubey, Kumbh Mela : origin and Historicity of Indias Greatest Pilgrimage Fair Article in Kumbh Mela Pilgrimage to Greatest Cosmic Fair, Eds by D.P. Dubey, pp.1-49. **6.** Kama Maclean, Making the Colonial State Work for You : The Modern Beginning of the Ancient Kumbh Mela in Allahabada, pp. 873-905. 1868 की रिपोर्ट में रिकेट्स ने 1870 में भरने वाले कुम्भ मेले में स्वच्छता

नियन्त्रण की आवश्यकता पर चर्चा की थी जोकि पहला कुम्भ-विवरण हैं। **7.** Ibid कामा मैकलीन के अनुसार कम्पनी प्राग्वाल ब्राह्मणों को ईसाई परिसरों, शिविरों, चर्चों और अन्य ईसाई धार्मिक स्थलों एवं त्योहारों पर प्रवेश नहीं करने देती थी। न ही हिन्दुओं को उनके खिलाफ साहित्यिक विवरण आलोचनात्मक रूप से पेश करने देती थी। हिन्दुओं की पादरियों और ईसाई संस्थाओं के मेले में प्रवेश करने पर रोक लगाने की मांग को नजरअंदाज करती रही थी, क्योंकि कम्पनी जानती थी कि, अगला विरोध या बारी उनकी होगी। **8.** Kama Maclean, Pilgrimage and Power, The Kumbh Mela in Allahabad, 1763-1954 (New York : Oxford University Press, 2008), pp. 60-126 and Kama Maclean, Making the Colonial State Work for You : The Modern Beginning of the Ancient Kumbh Mela in Allahabad, pp. 873-905. रीवा के राजकुमार विशुनाथ सिंह ने 1833 में कम्पनी को 5490 रुपये का कर त्रिवेणी में स्नान न करने के आधार पर अदा करने से मना कर दिया था। परंतु कम्पनी ने राजकुमार से प्राग्वालों की सेवा लेने और अनुचरों के मुंडन करवाने के आधार पर कर मांगा था। 1836 में रीवा राजा ने दोबारा अपने 5000 के दल को शाही व्यक्ति और उसके अनुचरों के आधार कर अदायगी से छूट कम्पनी से मांगी थी। परन्तु कम्पनी ने केवल 1000 व्यक्तियों को कर छूट देने का प्रस्ताव रखा था। जिस पर राजा ने कम्पनी नीतियों को हिन्दू तीर्थस्थलों पर अत्याचारी कहकर यात्रा को रद्द कर दिया था। हालांकि कम्पनी ने 1808 में अपने देशी सैनिकों को कर से मुक्ति देकर उनकी निष्ठा प्राप्त की थी। 1857 के बाद प्राग्वाल ब्राह्मणों ने माघ मेले की पवित्रता और धार्मिक महत्ता के तहत उसका प्रचार-प्रसार करने के लिए 'कुम्भ' शब्द का उपयोग किया था। प्राग्वालों के इस कार्य में ब्रिटिशों ने न चाहते हुए कुम्भ शब्द के प्रचार में आर्थिक फायदे के तहत योगदान किया था। इस प्रकार माघ मेला को प्राग्वाल ब्राह्मणों ने अपने बलिदान, संघर्ष और संस्कृति को निरन्तरता के तहत कुम्भ पर्व या मेला में रूपान्तरित किया था। **9.** Kama Maclean, Making the Colonial State Work for You : The Modern Beginning of the Ancient Kumbh Mela in Allahabad, pp. 873-905. ब्रिटिशों ने माघ मेले के कुम्भ मेला नाम में रूपान्तरण बाद भी अपनी हिन्दू धर्म विरोधी कार्यवाहियों को जारी रखा था। ब्रिटिश लगातार मेले में शिविर लगाकर और प्रबन्धन कार्यों में लगी रही। दूसरा, मेला प्रबन्धक के रूप में मुस्लिम अधिकारियों को नियुक्त किया, क्योंकि वे मेले के दौरान पवित्र व्यक्तियों और धार्मिक अनुष्ठानों के प्रति उदासीन होते हैं। दूसरा मुस्लिमों को अनेक कार्यों के लाइसेंस प्रदान किए थे। जिसके खिलाफ हिन्दुओं ने याचिका दायर की। प्राग्वाल ने अनुष्ठानों एवं धार्मिक गतिविधियों में ब्रिटिशों और मुस्लिमों की ताकझांक पर आपत्ति व्यक्त की। कामा मैकलीन के अनुसार समय के साथ कुम्भ मेला हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य के स्थान पर हिन्दू हितों को व्यक्त करने और बढ़ावा देने के लिए एक आदर्श आयोजन में तब्दील हो गया। **10.** John Irwin, The Ancient Pillar Cult at praga : its Pre-Asokan Origins, (The Journal Of Ryoal Asiatic Society of Great Britain and Ireland. 1983, No.2), pp.253-80. **11.** Ibid. **12.** C.S. Krishnaswamy and Amlaanand Ghosh, A Note on the Allahabad Pillar of Asoka, (The Journal Of Royal Asiatic Society of Great Britain and Ireland, Oct 1935, No.4), pp. 697-706. **13.** Giorgio Bonazzoli, Prayaga and its Kumbh Mela : An Interpretation and S.L. Gupta, Kumbh Mela : An Interpretation, Article in Kumbh Mela Pilgrimage to Greatest Cosmic Fair, Eds by D.P. Dubey, pp. 63-123 and Kama Maclean, Pilgrimage and Power : The Kumbh Mela in Allahabad, 1765-1954, pp. 25-60. **14.** John Irwin The Ancient Pillar Cult at Praga : its Pre-Asokan Origins, pp. 253-80. **15.** Agehananda Bharti, Pilgrimage in the Indian Traditio, (History of Religion, Summer 1963, Vol. 3, No. 1), pp. 135-67, Giorgio Bonazzoli, Prayaga and its Kumbh Mela : An Interpretation and article in Kumbh Mela Pilgrimage to Greatest Cosmic Fair, Eds by D.P. Dubey, pp. 85-123, John Irwin, The Ancient Pillar Cult at Praga : its Pre-Asokan Origins, pp. 253-80. अबुल फजल आईने अकबरी में इलाहाबाद सूबे का प्राचीन

नाम प्रयाग, गंगा-जमुना, सरस्वती नदी के संगम स्थल और बृहस्पति के सिंह राशि में प्रवेश करने पर एक महीने तक एक पहाड़ी के नदी से निकलने का उल्लेख करता है। इस पहाड़ी पर श्रद्धालुओं द्वारा पूजन करने की बात भी बताता है। **16.** तुलसीदास, रामचरितमानस, उतरकाण्ड 87, Kama Maclean, Making the Colonial State Work for You : The Modern Beginning of the Ancient Kumbh Mela in Allahabad, pp. 873-905. **17.** Kama Maclean, Pilgrimage and Power : The Kumbh mela in Allahabad. 1785-1954.pp.85-90 **18.** Giorgio Bonazzoli, Prayaga and its Kumbh Mela : An Interpretation and article in Kumbh Mela Pligrimage to Greatest Cosmic Fair, Eds by D.P. Dubey, pp. 85-123. प्राग्वाल ब्राह्मणों द्वारा लिखी और संरक्षित वंशावली का लोग जमीन विवाद और पारिवारिक धरोहर विवादों के समय न्यायिक मामलों में उपयोग करते हैं, जिसकी सत्यता पर अदालत तक को पूर्ण विश्वास है। यह प्राग्वाल ब्राह्मणों की वंशावली लेखक के रूप में ऐतिहासिकता और सच्चाई की जीत है। **19.** James. G. Lochtefeld, Getting in line : The Kumbh Mela Festival Processions article in South Asian Religion on Display, Eds by Knut A. Jacobsen, (Routledge Taylor & Francis Group, 2008), pp. 28-29, Kama Maclean, Pilgrimage and Power : The Kumbh Mela in Allahabad, 1765-1954, pp. 53-60 and Kama Maclean, Seeing Being Seen and Not Being Seen Pilgrimage Tourism and Layer of Looking at the Kumbha Mela, (APRIL, Sept. 2009), pp. 319-41. **20.** Ibid. **21.** Kama Maclean, Seeing Being Seen and Not Being Seen Pilgrimage Tourism and Layer of Looking at the Kumbha Mela, pp. 319-41.

(लेख में विस्तृत विवेचन के बावजूद यह रहस्य ही है कि 'माघ मेला' का नाम 'कुम्भ मेला' नाम किस आधार पर, क्यों हुआ ? - संपादक)

तिकारी कलम, नई दिल्ली - 4
मो. : 9599560417

●

प्रतिस्वर

'वैचारिकी' नवम्बर-दिसम्बर, 2024 अंक लंबे अंतराल के पश्चात् मुझे डाक द्वारा प्राप्त हुआ। नीतीश्वर महाविद्यालय की प्रधानाचार्य रही डॉ. अंजना वर्मा द्वारा लिखित आलेख 'ईदगाह' के बहाने जरूरी सवाल शीर्षक प्रभावोत्पादक एवं हृदयस्पर्शी लगा। प्रस्तुत अंक में अध्यक्षीय अभिभाषण डॉ. बिट्ठलदास मूंधड़ा एवं डॉ. बाबू लाल शर्मा द्वारा प्रस्तुत संपादकीय अत्यंत समसामयिक हैं। 'वैचारिकी' सचमुच में भारतीय संस्कृति-साहित्य की शोध द्वैमासिकी पत्रिका है और इसलिए इसे यू.जी.सी. केयर लिस्ट में सम्मिलित किया गया है।

'वैचारिकी' पत्रिका के उत्तरोतर चतुर्दिक विकास की मंगल कामना।

डॉ. हरि किशोर प्रसाद सिंह
लेनिन चौक, मुजफ्फरपुर-842001 (बिहार)
चलभाष- 7979096971

हिन्दी का समर्थ काव्यात्मक प्रस्थान : मैथिली शरण गुप्त

सीताराम पाण्डेय

हिन्दी काव्याकाश के ज्योतिर्मय नक्षत्र, सरस्वती के वरद्पुत्र, वैष्णव-धर्म के परम् प्रचारक, गाँधीवादी विचारों के समर्थक, भारतीय संस्कृति के संपोषक, राष्ट्रीय भावनाओं से सराबोर, इतिवृत्तात्मक एवं वर्णनात्मक काव्य-धारा के कवि, खड़ी बोली के उन्नायक तथा आधुनिक हिन्दी काव्य के तुलसी राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त, काव्य संसार में शाश्वत रूप से सतत् याद किये जाते रहेंगे। आधुनिक युग के द्वितीय उत्थान में ब्रजभाषा के स्थान पर खड़ी बोली में कविता करने वाले कवियों में महावीर प्रसाद द्विवेदी, श्रीधर पाठक, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', गया प्रसाद शुक्ल 'स्नेही', सियाराम शरण गुप्त, लाला भगवान दीन, रामनरेश त्रिपाठी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इन्हीं सुप्रसिद्ध कवियों के बीच आगे बढ़कर जिन साहित्य-सर्जकों ने खड़ी बोली का संस्कार सुनिश्चित किया और हिन्दी-कविता को अंगुली पकड़ कर चलना सिखाया, उनमें 'हरिऔध' और 'मैथिली शरण गुप्त' का नाम सर्वोपरि है। 'हरिऔध' ने प्राचीन आख्यानों को बौद्धिक धरातल पर प्रतिष्ठित करते हुए जीवन को देखने की एक नयी दृष्टि दी, तो मैथिली शरण गुप्त ने भारत के गौरवमय अतीत का गुण-गान करते हुए वर्तमान पतनोन्मुख दशा से देश को त्राण पाने की प्रेरणा दी। आचार्य द्विवेदी जी का काल हिन्दी कविता में इतिवृत्तात्मकता, वर्णनात्मकता और वस्तुनिष्ठता की प्रवृत्तियों से नियंत्रित- परिचालित रहा। महावीर प्रसाद द्विवेदी की प्रेरणा एवं प्रोत्साहन से मैथिली शरण गुप्त ने खड़ी बोली में न केवल कविता-कामिनी का श्रृंगार सजाया बल्कि मध्यकालीन कल्पना लोक के कुहासे की जगह इतिवृत्तों की वर्णनात्मक दीवार के पार नैसर्गिक उपादानों और सौन्दर्यात्मक संस्पर्शों से साहित्य की भाषा को एक नया आयाम भी दिया।

सन् 1900 ई. में इलाहाबाद से निकलने वाली सरस्वती पत्रिका का प्रारंभिक संपादन-कार्य जगन्नाथ दास, बाबू श्याम सुन्दर दास और किशोरी लाल के संपादकत्व में सम्पन्न हुआ। किन्तु, जब 1903 ई. में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी उसके संपादक नियुक्त हुए तब से श्री गुप्त और प्रेमचन्द की रचनाएँ 'सरस्वती पत्रिका' में समाहित होने लगी। 1905 ई. में मैथिली शरण गुप्त की पहली रचना सरस्वती पत्रिका में 'हेमन्त' शीर्षक से प्रकाशित हुई और तब से लेकर देहान्त के कुछ समय पूर्व तक उनकी काव्य-साधना निरंतर चलती रही। उन्होंने खड़ी बोली की काव्य-धारा के सम्पूर्ण विकास की बहुविध प्रभावित किया।

अर्द्धशती से भी अधिक समय तक पौराणिक, ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर आधृत काव्य-सर्जना द्वारा गुप्त जी ने अपनी रचना-दृष्टि की उपस्थापना की। उनका काव्य प्राचीन का नवीन उत्थान है। खड़ी बोली के द्वारा किया गया समर्थ काव्यात्मक प्रस्थान है। वर्तमान काल के भारतीय संस्कृति और हिन्दी भाषा के सर्वोत्तम कवि के रूप में गुप्त जी सर्व-समादृत हैं। मैथिली शरण गुप्त ने तीन अगस्त 1886 ई. में अपनी माता कौशल्या बाई की प्यारी गोद में तीसरी संतान के रूप में उत्तर प्रदेश के अन्तर्गत झांसी के सन्निकट चिरगाँव में उस समय अपने जीवन और जगत के प्रथम प्रकाश का साक्षात्कार किया जिस समय सम्पूर्ण राष्ट्र स्वतंत्रता-संग्राम के संक्रमण-काल से गुजर रहा था। उनके माता-पिता बहुत बड़े भगवद्भक्त औक कट्टर वैष्णव थे। इसलिए गुप्त जी की रचनाओं में पैतृक-प्रदत्त वैष्णव-संस्कार की झांकी दिखाई पड़ती है। इनके पिता सेठ रामचरण 'कनकने' वरिष्ठ कवि के रूप में प्रतिष्ठापित थे। मैथिली शरण गुप्त को प्रारंभिक शिक्षा'चिरगाँव की प्राथमिक पाठशाला से ही प्राप्त हुई। तद् पश्चात् उच्च शिक्षा अध्ययन करने हेतु वे झांसी के 'मेकडानल' स्कूल में भर्ती हुए लेकिन विद्यालय के अन्तर्गत होने वाली खेल-कूद प्रतियोगिताओं में उनका ध्यान अत्यधिक केन्द्रित हो गया। जिसके कारण उनकी विद्यालयी शिक्षा अधूरी रह गयी। फिर गुप्त जी ने घर पर ही स्वाध्याय किया और हिन्दी, संस्कृत, बंगला साहित्य का ज्ञान प्राप्त कर विशद्-विद्वान बन गये।

बारह वर्षों की छोटी उम्र से ही मैथिली शरण गुप्त ब्रजभाषा में कविता रचने लगे। वे 'कनकालताध्वज' के नाम से काव्य-सर्जना करते थे। 1906 ई. में उनका 'रंग में भंग' लघु काव्य संग्रह प्रकाशित हुआ। तद्पश्चात् उनकी 'जयद्रथ वध' नामक पुस्तक का प्रकाशन हुआ। उन्होंने बंगाली काव्य-ग्रन्थ 'मेघनाथ वध', 'ब्रजांगना' आदि कई पुस्तकों का अनुवाद भी किया। उस समय से श्री गुप्त लघु या वृहदाकार प्रबंध काव्यों के प्रणयन-कार्य में अनवरत संलग्न हो गये। भले ही मैथिली शरण गुप्त ने विद्यालयी एवं महाविद्यालयी शैक्षिक-प्रमाण-पत्र प्राप्त करने की औपचारिकताएँ पूरी नहीं की, लेकिन अपनी प्रखर-प्रतिभा एवं स्वाध्याय के सहारे जीवनोपयोगी सार्थक शाश्वत साहित्य की सर्जना कर, यह तो साबित कर ही दिया कि स्वाध्याय के बल पर व्यक्ति शैक्षिक डिग्री प्राप्त किये बिना भी जीवन के सभी क्षेत्रों में न केवल विशिष्ट ज्ञान प्राप्त कर विद्वान बन सकता है बल्कि डिग्रीधारियों की अपेक्षा साहित्यिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक आदि सभी क्षेत्रों में अत्यधिक उपादेयता का प्रमाण-प्रस्तुत कर सकता है।

1931 ई. में श्री गुप्त राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के सम्पर्क में आये। उनकी प्रखर प्रतिभा, सार्थक कृतित्व, सुकवित्व एवं विशद् कृति को देखकर गाँधीजी ने श्री मैथिली शरण को राष्ट्रकवि की संज्ञा से विभूषित किया। 1941 ई. में व्यक्तिगत सत्याग्रह के अन्तर्गत वे जेल भी गये। 'आगरा' विश्वविद्यालय द्वारा इन्हें डी.लिट् की उपाधि से सम्मानित किया गया। 1952 ई. से लेकर 1964 ई. तक वे राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत राज्यसभा के सदस्य के रूप में कार्यरत रहे। उनकी देशभक्तिपूर्ण साहित्यिक सेवाओं के लिए भारत सरकार के द्वारा सन् 1955 ई. में इन्हें 'पद्मभूषण' सम्मान की माणक उपाधि प्रदान की गयी। तत्कालीन भारत के राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद ने श्री गुप्त को 1962 ई. में अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया तथा हिन्दू विश्वविद्यालय के द्वारा इन्हें 'डी. लिट्' की डिग्री से सम्मानित किया गया। हिन्दी-साहित्य सम्मेलन प्रयाग में इन्हें 'साकेत' ग्रन्थ पर मंगला प्रसाद पुरस्कार प्रदान किया गया। इसके अतिरिक्त भी श्री गुप्त जी और कई साहित्यिक सम्मानों से सम्मानित हुए। 1954 ई. में प्रयाग के अन्तर्गत 'सरस्वती पत्रिका' की स्वर्ण जयन्ती समारोह का आयोजन किया गया। जिसकी अध्यक्षता मैथिली शण गुप्त ने की।

उन्होंने अपनी रचनाओं में स्वदेश का अत्यन्त ओजस्वी गौरव-गान किया है। उनके काव्य में खड़ी बोली के सारे गुण-दोष पाये जाते हैं। किन्तु, खड़ी

बोली को परिमार्जित कर भविष्य में आने वाले कवियों के लिए काव्योपयुक्त बनाने में उनका योगादन अद्वितीय है। मैथिली शरण गुप्त ने अपनी 78 वर्षों की लम्बी उम्र में दो महाकाव्य 19 खण्ड काव्य, काव्य-गीत, नाटिकायें, प्रबंध काव्यादि ग्रन्थ लिखे। उनके काव्य में राष्ट्रीय चेतना, धार्मिक भावना और मानवीय उत्थान प्रतिबिम्बित है। उनके द्वारा लिखी गयी भारत-भारती पुस्तक के तीन खण्डों में देश के अतीत, वर्तमान और भविष्य का चित्र उपस्थापित किये गये हैं। वे मानवतावादी, नैतिक और सांस्कृतिक काव्य-धारा के विशिष्ट कवि माने जाते हैं। उन्होंने 50-55 वर्षों में प्रचलित सभी काव्य-शैलियों में रचनाएँ की। प्रबंध काव्य लिखने में गुप्त जी को सर्वाधिक सफलता प्राप्त हुई। राष्ट्रकवि दिनकर ने गुप्त जी की अमूल्य देन का आकालन करते हुए लिखा है-"श्री मैथिली शरण गुप्त जी अट्ठारह करोड़ हिन्दी जनता के सबसे बड़े प्रतिनिधि कवि और हमारे गौरव हैं। खड़ी बोली की कविता का बहुत बड़ा इतिहास, गुप्त जी की कृतियों का इतिहास है।"

श्री मैथिली शरण गुप्त द्वारा रचित कृतियाँ हैं। **काव्य -** (क) प्रबन्ध : साकेत, जय भारत। (ख) खण्ड काव्य : जयद्रथ वध, पंटवटी, प्रदक्षिणा, बक संहार, सैरन्ध्री, नहुष, विष्णुप्रिया, हिडिम्बा, गुरु तेग बहादुर, विकटभट्ट, सिद्धराज, रत्नावली, पृथ्वीपुत्र, अंजलि और अर्घ्य, द्वापर, अजित। **मुक्तक -** (ग) भारत भारती, रंग में भंग, किसान, हिन्दू, गुरुकुल, झंकार, मंगलघाट, कुणाल गीत, उच्छ्वास, त्रिपथगा। **चम्पू काव्य -** यशोधरा। **नाटक -** काबा और कर्बला, अर्जन और विसर्जन, चन्द्रहास, तिलोत्तमा, वैतालिक। **गीति नाट्य-** अनघ, लीला। **अनूदित ग्रन्थ -** मेघनाद वध, वृत्र संहार, पलासी का युद्ध, वीरांगना, स्वप्नवासवदत्ता, रूबाइयात उमरखय्याम, विरहिणी-ब्रजांगना, प्रतिमा, अविमारक, अभिषेक।

1914 ई. में प्रकाशित राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत उनकी **भारत-भारती** ने भारत के अतीत की सुनहरी झाँकी का चित्र खींचते हुए वर्तमान अधोगति की सही तस्वीर भी सीधी-साफ खड़ी बोली में प्रस्तुत की। काव्य-गुण की न्यूनता के बावजूद देश के अतीत और वर्तमान के मार्मिक तथ्यों का आकलन साफ-सुथरी भाषा में होने के कारण यह ग्रन्थ देशभक्त युवकों में काफी लोकप्रिय हो गया। वह सामाजिक सरजमीन पर सम्प्रति भी प्रभूत प्रासंगिक है जिसकी वजह से आज भी लोग उसकी कविताओं को गुनगुनाते रहते हैं -

हम कौन थे क्या हो गये और क्या होंगे अभी, आओ हम मिल-जुल सजायें, बिखरे भारत को सभी।

कवि स्वदेश के लिए प्यार, सेवा, कर्त्तव्यनिष्ठा और समर्पण के भाव को सर्वोपरि मानते हुए उसके प्रति हृदय में असंवेदनशीलता, नीरसता, उदासीनता तथा उपेक्षा का भाव रखने वाले देशवासियों की तुलना वज्र के समान कठोर निर्जीव पाषाण से की है। *-जो भरा नही हो भावों से बहती जिसमें रसधार नहीं, वह हृदय नहीं है पत्थर है, जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं।* इतना ही नहीं कवि ने 'मातृभूमि' शीर्षक कविता में भारत-माता की कल्पना भवानी के रूप में की है। इस तरह भारत का सजीव रूप खड़ा करके गुप्त जी ने इस देश की प्राकृतिक सुन्दरता, इसकी सम्पन्नता, इसकी शक्तिमत्ता और सत्यनिष्ठा को उजागर किया है- *तेरा अतुल अतीत काल है आराधन के योग्य समर्थ, वर्तमान साधन के हित है और भविष्य सिद्धि के अर्थ। मुक्ति-भुक्ति की युक्ति, हमें तू रख अपना अभिमानी, जय-जय भारत-भूमि भवानी।* कवि कहता है - हे भवानी रूपी भारत माता! मुक्ति और बैकुण्ठ का भोग-विलास का सुख, भारतवासी होने के सुख के आगे तुच्छ है। मुझे बैकुण्ठ और भोग-विलास नहीं चाहिए। बस चाहिए केवल स्वदेशाभिमान। यहाँ कवि के हृदय में राष्ट्रभक्ति की भव्य-भावनाएँ हिलोरें मारती हैं।

साकेत में कथा का संबंध अयोध्या में घटित होने वाली घटनाओं से है। राम के अभिषेक की तैयारी कैकेयी की वर-याचना, परिणाम स्वरूप राम का

वन-गमन, भरत का अवध आगमन और चित्रकूट में बन्धु-मिलन की स्वर्गीय शोभा की कहानी आठ सर्गों तक कही गयी है।

इसके उपरान्त 'साकेत' का नवम एवं दशम सर्ग है, जहाँ उपेक्षित उर्मिला के वियोग विह्वल हृदय में उठने वाली वेदना को सरल, मधुर, अलंकारिक पद्धति से व्यक्त किया गया है। वियोग की दशा में भी अपने पति की कर्त्तव्य-भावना की उच्चता से सती नारी का हृदय गर्व-संयुक्त है। सच्चे प्रेम में मंगल का उत्सर्ग है। अतः उर्मिला की कामना सर्वभूत की ही है। वह स्वयं जलकर अन्य को आह्लादित करने की आकांक्षा रखने वाली महिला है। नवम् एवं दशम सर्ग के भीतर कवि ने प्राचीन पद्धति के अनुकरण पर अलंकार युक्त पद्यों की रचना की है और साथ ही छायावादी शैली पर लाक्षणिक वैचित्र्य वाले गीत भी रचे हैं। उर्मिला की अन्तर्दशा के विभिन्न पक्षों की वियोग-जन्य स्थितियों की अभिव्यंजना सुन्दर ढंग से की गई है। करुणा की अजस्र धारा इन सर्गों में प्रवाहित होती हुई परिलक्षित होती है। 'साकेत' के अन्तर्गत पौराणिक कथा के बीच में आधुनिक परिस्थितियों और भावनाओं का भी संतुलित एवं सुन्दर गुंफन हुआ है। सत्याग्रह, विश्व बन्धुत्व, मनुष्यत्व आदि आधुनिक तत्त्वपूर्ण भावनाएँ भी साकेत में संयोजी गयी हैं, जो उनके पौराणिक कथानक की मर्यादा को बिना विकृत किये हुए नवीन युग का प्रतिबिंब प्रकट कर रही हैं। मैथिली शरण गुप्त जी का कलाकार भारतीय पुरातन-मर्यादा की प्रतिष्ठा रक्षा के प्रति जागरूक प्रतीत होता है। रामायण के पात्रों का जो परम्परागत स्वरूप है, उसको अधिकृत रखने के साथ ही आधुनिक भावना एवं समस्याओं का समावेश गुप्त जी की कला की संतुलनशीलता एवं समन्वय कुशलता का साक्षी है।

यशोधरा काव्य को चम्पू की श्रेणी में रखा जाता है। इसमें गद्य-पद्धति का सहारा लिया है। वज्रादपि कठोर, कुसुमादपि कोमल स्वरूप का स्पष्ट अंकन यशोधरा के चरित्र के माध्यम से करने के लिए कवि का स्तुत्य प्रयास है। अर्धांगिनी अपने अधिकार की अवहेलना से क्षुब्ध हो उठती है और अरण्यवासी भ्रमणशील संत सिद्धार्थ की अर्धांगिनी महल के प्रांगण में कठोर एकान्त साधना का पालन करती है। कुसुम-कोमल-कामिनी का यह वज्र-कठोर जीवन उसके सतीत्व की सम्यक् विविक्षा है तभी तो सीता, सावित्री के आदर्श पर चलने वाली पति के कंधे से कंधा एवं कदम से कदम मिलाकर बढ़ने की चाहत वाली यशोधरा अपने दिल का दर्द और अपनी मनोव्यथा एक सखी से कहती है -

सिद्धि हेतु स्वामी गये, यह गौरव की बात/ पर, चोरी-चोरी गये, यही बड़ा व्याघात/ सखि, वे मुझसे कहके जाते।

आध्यात्मिक साधनों की सिद्धि के लिए स्वामी ने घर-बार छोड़ा- यह गौरव की बात है, पर दुख तो इस बात का है कि वे मुझसे बिना बताए चले गये। यहां कवि ने यशोधरा के मनोभावों में भारतीय नारी का स्वर मुखरित किया है। भारतीय कुल-वधुओं की सच्ची कसौटी अपने सतीत्व और सुहाग को अक्षुण्ण बनाए रखना है। भारतीय नारी अपने पति को देवता का दर्जा देती है तथा उसकी पूजा करती है। एक वीर क्षत्रीय-नन्दन कर्त्तव्य के महान आदर्श से विमुख होकर अपनी प्रिया की रूप-रेखा में डूबा रहे, भला यह एक वीर क्षत्राणी को कैसे गंवारा हो सकता है? तभी तो वह कह उठती है --

स्वयं सुसज्जित करके क्षण में, प्रियतम के प्राणों के पण में/

हमीं भेज देती हैं रण में क्षात्र-धर्म के नाते/ सखि! वे मुझसे कहकर जाते।।

'यशोधरा' कहती है, यदि मेरे पति मुझसे बताकर गृह त्याग करते, तो उन्हें मैं अवश्य सहर्ष, विदा करती। क्योंकि मैं क्षत्राणी हूँ और क्षत्राणियाँ अपने पतियों को सुसज्जित करके युद्ध-क्षेत्र में भी सहर्ष भेजती हैं। यह सौभाग्य भी मुझे नहीं प्राप्त हो सका। भारतीय पत्नियाँ पतियों को परवान चढ़ाने के लिए अपने सर्वस्व का परित्याग करने में कभी पीछे नहीं रहती। यहाँ कवि ने यशोधरा के दिव्य-चरित्र के माध्यम से भारतीय नारियों् को अपने पति के प्रति

कर्त्तव्योन्मुख रहने हेतु त्याग-संदेश संप्रेषित किया है। यशोधरा हृदय के टुकड़े 'राहुल' को पाल-पोषकर पति की झोली में डाल देती है। लेकिन तभी, जब स्वयं बुद्ध उसके कक्ष में आकर उपस्थित होते हैं। आज इस पुरुष प्रधान परिवेश में सामाजिक सरजमीन पर निर्बल-निरीह नारियों को अपने सत्य को साबित करने में अर्थात् विश्वास दिलाने के लिए दो ही मुख्य आधार दिखाई पड़ते हैं। एक है आँखों में आँसू आना और दूसरा है शपथ का सहारा लेना। तभी तो यशोधरा की आँखों से अविरल अश्रु प्रवाहित होते देख कवि का हृदय महिलाओं के प्रति कारुणिक भाव से भर जाता है और कह उठता है-

अबला जीवन हाय! तुम्हारी यही कहानी, आँचल में है दूध और आँखों में पानी।

आधुनिक हिन्दी काव्य-धारा के जाज्वल्यमान कवि मैथिली शरण गुप्त ने 'पंचवटी' खण्ड काव्य में लक्ष्मण के महान आदर्श एवं उद्दात्त चरित्र को दर्शाया है और प्रसाद गुण से सम्पन्न कविता का श्रृंगार उन्होंने मनोरम एवं प्रांजल भाषा द्वारा किया है। जिस लक्ष्मण ने अपने भाई राम के लिए फूलों की सेज, राजमहलों का ऐश्वर्य और नवोढ़ा उर्मिला का उर-प्रेम एवं साहचर्य छोड़ दिया। निद्रा तक का परित्याग किया और भाई के प्रेम और सेवा में चौहद वर्षों तक ताप और पावस में वन की कंटीली-कंकरीली राहों पर जीवन बिताया। क्या उसके लिए राम आँसू के दो बूँद भी नहीं बरसाते। राम को जंगल में मंगल मिला और वनवास में ग्रार्हस्थ्य। पर लक्ष्मण इस भोग विलास से परे रहे। तभी तो राम के स्वर में 'साकेतकार' श्री गुप्त जी को कहना पड़ा - *'लक्ष्मण तुम हो तपस्गृही मैं वन में भी रहा गृही, वनवासी हे निर्मोही! हुए वस्तुतः तुम द्रोही।'*

खड़ी बोली को काव्य के लिए उपयुक्त प्रमाणित करने में गुप्त जी की रचनाओं को बहुत बड़ा श्रेय है। गुप्त जी ने भिन्न-भिन्न छन्दों में खड़ी बोली को ढालने और उसका परिष्कार करने की दिशा में प्रशंसनीय कार्य किया। गुप्तजी ने 'तिलोत्तमा' आदि छोटे-छोटे पद्य-बद्ध रूपक भी लिखे। 'द्वापर' में कविवर ने कंस, यशोदा आदि की मनोवृत्ति का विशद चित्र प्रस्तुत किया है। मैथिली शरण गुप्त की कला में सामंजस्य और समन्वय का स्वर है। लोक में व्याप्त श्रेष्ठ भाव और तत्व उन्हें प्रियकर है। अपने अतीत के प्रति गुप्त जी के हृदय में सम्मान की भावना है और नवयुग के प्रति आकर्षण भी। गुप्त जी की प्रारंभिक रचनाओं में रुक्षता और इतिवृत्तात्मकता है और इनमें सरस, मंजुल, कोमल शब्द-विन्यास का अभाव पाया जाता है। बंग साहित्य के अध्ययन-मनन और 'मेघनाद वोध' आदि के अनुवाद के फलस्वरूप उनकी काव्य-शैली में सरसता एवं कमनीयता का प्रवेश हुआ। उदाहरणस्वरूप कवि की राष्ट्र और मातृभूमि के प्रति समर्पित पंक्तियाँ नीचे उद्धृत की गयी हैं :-

नीलांबर परिधान हरित पट सुन्दर है। सूर्य, चन्द्र-युग-मुकुट, मेखला रत्नाकर है।।

नदियाँ प्रेम-प्रवाह, फूल तारे मंडन हैं। बन्दीजन खग-वृन्द, शेष-फन सिंहासन है।।

करते अभिषेक पयोद है, बलिहारी इस देश की। हे मातृभूमि! तू सत्य ही सगुण मूर्ति सर्वेश की।।

छायाबीदा प्रवृत्ति के प्रभाव की स्पष्ट छाया हम उनके प्रगीत-मुक्तकों में और लाक्षणिक वैचित्र्य की योजनाओं में देखते हैं। प्रगीत-मुक्तकों को 'साकेत' और 'यशोधरा' में भी हम पाते हैं। यह बिल्कुल सही बात है कि समय की परिवर्तित प्रवृत्तियों और पिरिस्थितियों को ग्रहण कर गुप्त जी की कला विकासोन्मुख हुई। उनमें युगधार के साथ तारतम्य स्थापित करने की प्रशंसनीय प्रतिभा थी। सन् 1963 ई. में अनुज सियाराम शरण गुप्त के निधन ने मैथिली शरण गुप्त के हृदय पर अपूर्णनीय आघात पहुँचाया। फलस्वरूप 12 दिसम्बर 1964 ई. को दिल का दौरा पड़ने के कारण हिन्दी काव्याकाश का यह सूरज, अचानक स्थाई रूप से अस्त हो गया।

रामबाग चौड़ी, पो. - रमना,
जिला- मुजफ्फरपुर - 842002
मो.- 9386752177

●

हजारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में नारी चरित्र

डॉ. विजय लक्ष्मी शर्मा

हिंदी साहित्य में ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप में ख्याति पाने वाले आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने 'अनामदास का पोथा', 'पुनर्नवा', 'बाणभट्ट की आत्मकथा' और 'चारुचंद्र लेख उपन्यासों की रचना कर इतिहास के बिखरे सूत्रों को प्रासंगिकता की वाणी देकर हिंदी जगत की गरिमा में वृद्धि की। इनके उपन्यासों में वर्णित नारी चरित्र सांस्कृतिक चेतना और उदात्त मानवीय मूल्यों से परिपूर्ण है। द्विवेदी जी ने निबंध, इतिहास, शोध, समीक्षा, संपादन में अपनी लेखनी की कुशलता का परिचय दिया है और अपने चार उपन्यासों में भारतीय संस्कृति के इतिहास की छिपी घटनाओं के पौराणिक प्रसंगों को कल्पना के रंग से रंग कर नूतन-पुरातन समन्वयात्मक अभिव्यक्ति प्रदान की है।

अनामदास का पोथा उपन्यास की कथा छांदोग्य उपनिषद के चौथे अध्याय के प्रथम खंड से ली गई है। इसकी छोटी सी कथा को मनोवैज्ञानिक स्थितियों से जोड़कर मानवीय भाव के विकास के कुशल शिल्पी की भांति उपन्यास की रचना की गई है। इसकी प्रमुख नारी पात्र जाबाला और ऋतम्भरा हैं। जाबाला सहृदय नारी की एक ऐसी आकर्षक चेतन प्रतिभा है जिसमें नारी के सभी श्रेष्ठ गुणों का पूर्ण समन्वय हुआ है। वह जड़ में भी चेतना का संचार करती नजर आती है। केवल रैक्व ही नहीं बल्कि उपन्यास के हर पात्र के हृदय में उसके प्रति श्रद्धा है। यह राजा जानश्रुति की कन्या है, जाति से शूद्र है- एक बार रथ पर आरूढ़ होकर वन गमन करने पर आंधी तूफान में फंस कर शिथिल मूर्छित पड़ जाती है।

तापस कुमार रैक्व जो सदैव तत्वचिंतन, तप, ध्यान में लीन रहता है उसकी नजर जब जाबाला पर जाती है तो वह उसे एक बार मरा समझ लेता है किंतु जब उसकी सांस का चलना देखता है तो उसके कपड़ों से हवा करके उसकी जीवन रक्षा करता है । तापस रैक्व को वायु के अलावा संसार के स्थूल पदार्थों का कुछ भी ज्ञान नहीं होता है। उसे स्त्रीलिंग या पुलिंग का भी ज्ञान नहीं होता है। जाबाला रैक्व को नारी शक्ति को समझने हेतु विवश करती है। विदुषी, बुद्धिमती, सुशीला एवं सुंदरता की मूर्ति जाबाला में तेज है, वह सविता शक्ति का प्रत्यक्ष विग्रह है। उसकी वाणी रैक्व को सामगान की भांति पवित्र लगती है। जीवन के हर क्षेत्र से अपरिचित रैक्व को लोक व्यवहार और जीवन जगत की शिक्षा प्रदान करती हुई ज्ञान के माध्यम से ज्ञान का मार्ग बताती हुई कहती है "ऋषि कुमार तुमने व्याकरण पढ़ा है?.. तो फिर

जानते हो, व्याकरण में पुल्लिंग और स्त्रीलिंग होता है। तुम पुलिंग हो मैं स्त्रीलिंग हूं। आगे मुझे संबोधित करना हो तो वह व्याकरण सम्मत स्त्रीलिंग के अनुसार होना चाहिए। तुम मुझे शुभे कह कर पुकारो। मैं देवलोक से नहीं आई हूं, इसी पृथ्वी लोक पर महाराज जानश्रुति की कन्या हूँ।"[1] जाबाला देश, जाति और समाज के लिए वरदान स्वरूप है। वह सेवा भावना से ओतप्रोत संयमित नारी है। अनभिज्ञ रैक्व द्वारा उसका स्पर्श करने पर एक मीठी सी झिड़की देकर लोक व्यवहार की शिक्षा देती हुई कहती है कि, "देखो ऋषि कुमार मैं महाराज जानश्रुति की कन्या हूँ। तुम्हें इतनी जानकारी तो होनी ही चाहिए कि इस तरह से स्त्रियों को स्पर्श करना अनुचित है पाप है, परंतु मैं तुम्हारी सफलता पर मुग्ध हूं।"[2]

ऋतंभरा इसी उपन्यास की दूसरी प्रमुख नारी पात्र है। वह औषस्ति मुनि की पत्नी और साथ ही रैक्व की मुंहबोली मां भगवती रितंभरा है जो वात्सल्य की प्रतिमूर्ति, उदारता की खान और नास्तिक को भी महान धार्मिक की संज्ञा दे देने वाली विशाल हृदया सेवाभावी स्त्री है। वह जन को सेवा और प्रेम के रस से सींचने वाली स्त्री है। वह रैक्व को समझाती है कि "तपस्या की कसौटी समाज है। मान ले बेटा तू किसी जंगल में अकेला तप कर रहा है, तो सत्यवादी है। अब इस बात की परीक्षा कैसे होगी कि तू सचमुच सत्यवादी है। जब दस मनुष्यों के संपर्क में आएगा, कहीं तेरे स्वार्थ को चोट पहुंचेगी, उस समय अपना मतलब साधने के लिए जब झूठ नहीं बोलेगा, किसी बात को छुपाने का प्रयत्न नहीं करेगा, तभी ना मालूम होगा तू सत्य पर दृढ़ है? अकेले-अकेले तो हर आदमी सत्यवादी और धर्मनिष्ठ होने का दावा कर सकता है। दस जनों के संपर्क में आने से ही न उसकी निष्ठा की परीक्षा होगी जो अपने आप की सुख सुविधा का ध्यान न रखकर दूसरों के दुख को दूर करने का प्रयत्न करता है सत्य से च्युत नहीं होता, दूसरों का कष्ट दूर करने के लिए अपने प्राण तक त्याग सकता है वही धार्मिक है। बड़ी बात यह है कि वह औरों के साथ कैसा व्यवहार करता है-- उनके लिए कितना त्याग कर सकता है, यही तय करेगा कि वह धर्म परायण है या नहीं।"[3] अकाल पड़ने पर ऋतम्भरा घूम-घूम कर जनसेवा कर रही है। मृत गाड़ीवान की पत्नी और बच्चे को सरंक्षण प्रदान करती है और बच्चों को प्यार भी प्रदान करती है। ऋतम्भरा क्रियात्मक आस्था और भावात्मक सत्य में विश्वास करने वाली एक उदात्त चरित्र वाली नारी है।

द्विवेदी जी नारी को समाज की आधारशिला मानते हैं तभी वे नारी के समान अधिकार और उसके उदार चरित्र पर बल देते हैं- उनका मत है कि नारी को पुरुष के समान स्वतंत्रता व अधिकार मिलने चाहिए और दोनों ही एक दूसरे के प्रति सर्मपित होने चाहिए। केवल नारी ही सर्मपिता नहीं मानी जाए, उन्होंने नारी के भीतरी मूल्यों की प्रतिष्ठा अधिक की है।

पुनर्नवा की प्रमुख नारी पात्र मंजुला, मृणाल मंजरी, चन्द्रा, मादी, मदनिका हैं। मंजुला नगर की अभिमानिनी गणिका है जो रूप व कलात्मक नृत्य के कारण प्रसिद्ध है। देवरात उसकी कलात्मकता या दूसरों की भांति रीझते नहीं बल्कि नृत्य में कमी निकालते हैं अतः मंजुला उनसे ईष्या रखती है। अन्य आयोजन में वह अपनी कमी को दूर कर देवरात को प्रशंसा हेतु विवश कर देती है। देवरात उसमें देवत्व को प्रतिष्ठित करते हैं । देवरात मंजुला से कहते हैं-- "देवता न बड़ा होता है न छोटा, न शक्तिशाली होता है न अशक्त। वह उतना ही बड़ा होता है जितना बड़ा उपासक बनाना चाहता है।"[4] इस कथन से एक नवीन मंजुला का अवतरण होता है। वह परिस्थितियों वश भौतिकता की तरफ बढ़ रही थी, अब भौतिकता से ऊपर उठकर भावात्मकता की ऐसी ऊँचाई पर पहुंच जाती है कि वह गणिका से देवी बन जाती है। महामारी की शिकार होकर मृत्यु को प्राप्त होती है और पीछे अपनी पुत्री मृणाल मंजरी को छोड़ जाती है।

मृणाल मंजरी का चरित्र उच्च गौरवशाली नारी

रूप में प्रतिष्ठित है। देवरात के आश्रम में पलती है और उसका विवाह गोपाल आर्यक से होता है। एक नगरवधू चंद्रा भी उसे चाहती है। विषम से विषम परिस्थितियों से भी टक्कर लेने वाली मृणाल मंजरी एक आदर्श पत्नी व स्नेहशील माता ही नहीं वरन संकट के समय देशवासियों की प्रेरणादायी शक्ति भी है। यह एक उदार आदर्श पत्नी है जो चंद्रा को सेवा की मूर्ति मानकर सखी तुल्य प्रेम देती है। उसके हृदय की उदारता देखते ही बनती है। चंद्रा का चरित्र विवादास्पद जरूर है किंतु वह एक क्रांतिकारी महिला के रूप में हमारे सामने आती है। जिससे विवाह हुआ वह मनुष्य नहीं बल्कि पशु था अतः उसको अस्वीकृत कर दिया। समाज के बंधन, कुरीतियों समाज परिवार के लोकोपवादों के भय को त्यागकर वह अपना जीवन प्रिय गोपाल आर्यक के चरणों में समर्पित कर देती है। वह समर्पण और आत्मदान के भावों से संचालित है। वह धार्मिक रूढ़ियों का भी जमकर विरोध करती है। नट मंडली में मादी और मदनिया का भी मनोहर चित्र सामने आता है। वसंतसेना भी साध्वी पत्नी रूप में है और धूता एक ऐसी प्रेरणामयी पत्नी है कि गणिकागामी चारुदत्त पर पूर्ण प्रेम रखती है। इन गणिका पात्रों में भी द्विवेदी जी ने देवत्व की प्रतिष्ठा की है। इनमें नारी चरित्र पुरुष चरित्र से कहीं बहुत ऊपर है। इनके नारी चरित्र, जाति, धर्म, समाज के बंधनों से मुक्त होकर प्रेम, दया, सेवा, समर्पण, मानवता का संदेश देने वाले हैं।

'बाणभट्ट की आत्मकथा' उपन्यास में प्रमुख स्त्री पात्र भट्टिनी, निपुणिका, महामाया, मदनश्री और चारुस्मिता हैं। भट्टिनी चरित्र गौरवशाली है। वह राज कुल में पैदा होकर दस्युयों द्वारा अपहृत छोटे राजकुल के अंतःपुर में बंदी जीवन व्यतीत करते हुए भी पवित्र होकर महावराह की उपासक वह तपस्विनी है। वह कमल से कोमल, चांदनी से पवित्र, नवनीत से तरल, सागर से गंभीर, हिमालय से भी दृढ़ चरित्र वाली नारी है। संयम, मर्यादा, आदर्श एवं सरलता का अद्‌भुत संयोग हमें भट्टिनी के चरित्र में दिखाई देता है। वह एक प्रेरक रूपवती शक्ति है जिसके कारण बाणभट्ट 'बण्ड' से ऊपर उठाकर शिव का प्रतीक बन जाता है।

निपुणिका भारतीय नारी के आत्म बलिदान की अपूर्व कथा का बेजोड़ चरित्र है। विवाह के एक वर्ष बाद वैधव्य को प्राप्त निपुणिका नाटक मंडली में कार्य करती है। बाण की हंसी से दुखी होकर मंडली छोड़ कर भाग जाती है। छः वर्षों के बाद पुनः अपने प्रेमी बाण के सानिध्य में आती है किंतु बाण उसका प्रेम समझ नहीं पाता। अंत में उसका प्रेम भक्ति में बदल जाता है। इसका चरित्र उदार है वह भट्टिनी के उद्धार में जान की बाजी लगा देती है। वह कुशल, निडर, चतुर और समर्पित स्त्री पात्र है। सच्चे अभिनय में अपना जीवन भी समाप्त कर लेती है। वह अपने सुख की खातिर दूसरों के मार्ग की बाधा नहीं बनती। वह बाणभट्ट की भक्त, गुरु हितैषी और रक्षिका भी है। महामाया एक गरिमामय नारी चरित्र है जो नारी सुलभ श्रेष्ठ गुण-वात्सल्य, सेवा, दया और प्रेम से युक्त है। इसी प्रकार सुचरिता कलुषित समाज के कीचड़ में फंसी एक ऐसी मणि है जो समय आने पर अपनी चमक से रूढ़िग्रस्त समाज को आलोकित करती दिखाई देती है। मदनश्री सुंदर गणिका है, जो अभिनय कला में निपुण, सहायता के भावों से युक्त स्त्री पात्र है। चारुस्मिता स्थाणीश्वर की अत्यंत सुंदर राजनर्तकी है, जो कलाप्रिय, प्रवीण, नारीजनोचित कोमलता, उदात्त भावों से युक्त स्त्री है। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' उपन्यास की निपुणिका में भी इतने गुण है कि वह समाज और परिवार की पूजा का पात्र हो सकती थी पर हुई नहीं।

चारुचंद्रलेख की नायिका चंद्रलेखा नाम की स्त्रीपात्र है । इसका व्यक्तित्व रानी और सिद्ध योगिनी के रूप में हमारे सामने आता है। इसके जीवन में एक विचित्र अंतर्द्वंद है। चंद्रलेखा नागराज के प्रति आकर्षित होकर पति धर्म की उपेक्षा कर कोटिबोधि रस सिद्ध करने चली जाती है। पति की तरफ से भी

कोई रुकावट नहीं होती है। उसका व्यक्तित्व दुविधा में विभक्त हो जाता है। वह न तो पूर्णरूपेण राजा की रह पाती है और न ही तप साधना में लीन हो पाती है। उसका मानसिक संतुलन बिगड़ जाता है तथा नागराज की मृत्यु से रानी विक्षिप्त हो उठती है। माता विष्णु प्रिया के प्रयत्न से रानी की कुंठा धीरे-धीरे समाप्त हो जाती है तब रानी के अंतर्मन में ग्लानि, लज्जा, पति निष्ठा, कर्तव्य के भाव उदित होते हैं और वह कहती है-- "मैं पतिव्रत धर्म की उपेक्षा से अशुचि हो गई हूं, मैं सौभाग्यवंचित असती हूं। मैं सिद्धि योगिनी नहीं, महा अधम नारी हूं।"[5] जबकि चंद्रलेखा वाकविदग्ध परिहास चतुर तीक्ष्ण बुद्धि नारी है। जब वह सातवाहन की रानी बनती है तो राजा के कार्यों में सहायक होने का संकल्प प्रकट करती हुई कहती है-- "इस देश में मिथ्या खंड, अभिमानों को चूर्ण करने के लिए चंद्रलेखा वज्र के हथौड़े का काम करेगी और हतदर्प वीर्य पराजित प्रजा के चरित्र में इतिहास की मंगलमय प्रेरणा देने के लिए अमृत की तरह झरेगी।"[6] रानी की योजना चरितार्थ भी होती है लेकिन कोटिबोधि रस सिद्ध में जाने के साथ ही रानी चंद्रलेखा सिद्धियोगिनी में संशयशील होकर विलुप्त हो जाती है।

दूसरा स्त्री पात्र मैना है जो मैन सिंह के रूप में दोहरा व्यक्तित्व जीती है। मैना डेढ़ वर्ष की अवस्था में देवदासी के रूप में मंदिर के लिए किसी के द्वारा दी गई थी। उसका पोषण नारी माता के हाथों उसके आश्रम में हुआ। बोधा प्रधान के कहने से उसने पुरुष रूप रखकर मैना से मैन सिंह होकर विभिन्न स्थानों से नटों एवं ग्रामीणों की सेना संगठित की। उसके व्यक्तित्व में त्याग, तपस्या, सेवा, शौर्य, साहस और सूझबूझ से स्वयं राजा सातवाहन प्रभावित थे। मैना की सेवा में प्रेम और समर्पण भाव है। अपने को दलित द्राक्षा की भांति क्षरित होने की दुर्दम जिजीविषा है। उसके आत्म समर्पण की भावना और पुष्पवत् मन के बह जाने की आशंका निरस्त करने की जो उसकी इच्छा है, वह उसके व्यक्तित्व को महान बना देती है। उसके चरित्र में रानी दीदी के धन का लोभ नहीं है। राजा के संपर्क में रोमांटिक प्रभाव है किंतु आत्मदान का ही भाव दृष्टिगोचर होता है। नारी माता सहज भाव से भक्ति करने वाली स्त्री ही कलुषित व्यवसाय से मुक्ति की खोज में संन्यासिनी हो गई थी। आरंभ में वह जयित्र चंद्र के यहां नर्तकी थी। कालान्तर में राज्य नष्ट होने पर जंगल में कुटी बनाकर भक्ति भाव में लीन हो गई। उसी आध्यात्मिक वातावरण में मैना को पालकर उसे ऐसा व्यक्तित्व दिया जो समय आने पर राष्ट्र हित में समर्पित हो जाता है। नारी माता भक्ति की ऐसी प्रतिमूर्ति है जो मैना के माध्यम से सामाजिक गतिविधियों में योगदान देती है। द्विवेदी जी ने भारतीय समाज में सर्वाधिक उपेक्षित नारी की समस्याओं को उठाया और सामाजिक प्रतिष्ठा दिलाने के लिए ऐसे पात्रों की कल्पना पौराणिक एवं ऐतिहासिक संदर्भों में की है जो वर्तमान सामाजिक जीवन में नेतृत्व की क्षमता रखते हैं।

नारी पात्रों के माध्यम से सामाजिक जटिलताओं और मिथ्याडम्बरों के प्रति विद्रोह की भावना को भी अभिव्यक्ति प्रदान की है। द्विवेदी जी के विचार में समाज में नारी-पुरुष के स्वस्थ रिश्तों से ही स्वस्थ समाज का विकास संभव होगा। उनका मानना है कि "नारीहीन तपस्या संसार की भद्दी भूल है। वह धर्म कर्म का विशाल आयोजन, सैन्य संगठन और राज्य व्यवस्थापन सब फेन बुद बुद की भांति विलुप्त हो जाएंगे क्योंकि नारी का इसमें सहयोग नहीं है तो यह सारा ठाठ बाट संसार में केवल आशंति पैदा करेगा। बाणभट्ट की आत्मकथा उपन्यास में नारी समस्याओं की सूक्ष्म अभिव्यक्ति के साथ ही साथ भारतीय नारी की शालीनता, लज्जा, संयत प्रेम का स्वाभाविक वर्णन हुआ है। उसकी दया, क्षमा और सतीत्व मर्यादा, धर्म शीलता, गुरुजनों के प्रति श्रद्धा भक्ति एवं उसकी महिमामयी मर्यादा भी इस उपन्यास के छोटे से छोटे बड़े से बड़े नारी पात्रों में दिखाई पड़ती है। समाज के उपेक्षित, दलित और कलंकित समझी जाने वाली

नारियों के प्रति भी उनकी दृष्टि सहानुभूतिप्रद व गरिमायुक्त है।

द्विवेदी जी की दृष्टि में भारतीय नारी का सबसे बड़ा अस्त्र सेवा व समर्पण है जो उसकी विजय यात्रा का आधार स्तंभ है। उसके आंतरिक जीवन मूल्य ही उसे प्रतिष्ठा प्राप्ति में सहायक है। लोकमानस में शुष्क धर्माचार एवं रूढ़ मान्यताओं के कारण पुरुष प्रधान समाज ने नारी के अधिकारों की उपेक्षा की उन्हें दिलाने के लिए और उन मान्यताओं के विरोध में आवाज उठाने के लिए अपने उपन्यासों में नारी पात्रों को माध्यम बनाया।

संदर्भ

1. अनामदास का पोथा-- आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ-- 31 संस्करण--1976 ईस्वी। **2.** अनामदास का पोथा-- आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ-- 31 संस्करण--1976 ईस्वी। **3.** अनामदास का पोथा-- आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ-- 31 संस्करण--1976 ईस्वी। **4.** पुनर्नवा--- आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ--22 संस्करण--1973 ईस्वी। **5.** चारुचन्द्र लेख--- आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ---208 संस्करण--1963 ईस्वी। **6.** चारुचन्द्र लेख--- आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ--32 संस्करण--1963 ईस्वी। **7.** बाणभट्ट की आत्मकथा--- आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ--18 संस्करण--1946 ईस्वी। **8.** बाणभट्ट की आत्मकथा--- आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ--193 संस्करण--1946 ईस्वी।

सहायक आचार्य - हिन्दी
राजकीय महारानी सुदर्शण महाविद्यालय,
गजनेर रोड़, बीकानेर (राजस्थान), 334001
मो.-8824016859

●

करुणा

दयालु भगवान ने एक बार विचार किया, 'मैं एक बार ऐसे नए प्राणी का निर्माण करूँ जो स्वर्ग और धरती के सभी प्राणियों से उत्तम हो।'

जब सत्य को यह बात मालूम हुई तो उसने कहा– 'ऐसा प्राणी दंभ और बेईमानी फैलाकर आपको बदनाम करेगा।'

न्याय ने कहा– 'वह स्वार्थी बनकर सबको सताएगा।' तब करुणा ने आकर कहा– 'भगवन्! ऐसे प्राणी को अवश्य पैदा कीजिए। जब आपके सब दूत उसे सुधारने में असफल होंगे तो मैं उसे सुधारूंगी।'

करुणा की बात मानकर भगवान ने मनोवांछित प्राणी 'मानव' का सृजन किया।

सच है, सत्य व न्याय दंड दे सकते हैं – पर, धरती के लिए एक ही आश्वासन है– वह है 'करुणा'। वह जब भी आ जाती है– बुद्ध बन, गांधी बन, संत बन, पीर-फकीर बन– तब आशा की ज्योति जगती है।

'केवल सत्य नहीं- क्षमा,
केवल न्याय नहीं- करुणा।'

यही करुणा– सेवा बन, ममता बन, प्यार बन इस जलती धरती के लिए सावन की रिमझिम वर्षा बनती है।

- पं. अक्षयचन्द्र शर्मा

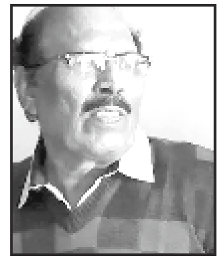

प्रयोगवादी काव्यधारा के प्रणेता : अज्ञेय

राजेन्द्र परदेसी

हिन्दी के काव्य क्षेत्र में द्विवेदी युग की उपदेशात्मक एवं नैतिकता प्रधान इतिवृत्तात्मक कविता के विरुद्ध जो आन्दोलन आरंभ हुआ था उसमें रहस्यमयी भावनाओं, लाक्षणिक एवं प्रतीकात्मक प्रयोगों, चित्रमयी भाषा, मधुमयी दुरारूढ़ कल्पना, स्वानुभूति की संवेदनात्मक विवृति, प्रकृति के रमणीय चित्रों की बहुलता आदि का प्राधान्य था। इस कविता-धारा में द्विवेदी-कालीन कविता में व्याप्त नैतिकता एवं सुधारवादी उपदेशात्मकता के स्थान पर मानवता के पक्ष का समर्थन दृढ़ता के साथ किया गया था, शृंगार-चित्रण की मांसल एवं स्थूल प्रणाली के स्थान पर अतीन्द्रिय एवं मानसिक पक्ष का संवहन करने वाली सूक्ष्म चित्रण-प्रणाली को स्वीकार किया गया था, साम्प्रदायिकता एवं परम्परागत धार्मिकता के स्थान पर सर्व-चेतनावाद एवं सर्वात्मकता की भावना का प्रचार एवं प्रसार किया गया था। इस नूतन काव्य धारा में पूर्व प्रचलित जगत के मिथ्यात्व सम्बन्धी सिद्धान्त का विरोध करके प्रकृति को आत्मा का सचेतन रूप मानते हुए जगत एवं प्रकृति सभी को सत्य घोषित किया, सर्वत्र चेतनता को विलास करते हुए देखा, मानवता को विजयिनी बनाने के लिए प्रेरणा प्रदान की और सूक्ष्म भावानुगामिनी कवित्व-धारा को प्रवाहित करके पूर्व प्रचलित पौराणिक कथाओं एवं नारी के बाह्य सौन्दर्य-चित्रण से भिन्न संवेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति को सर्वाधिक महत्त्व प्रदान किया। इस नूतन काव्य-धारा को *छायावाद* के नाम से अभिहित किया गया।

छायावादी काव्य-धारा में स्वानुभूति की प्रबलता के कारण जो व्यक्तिवादिता अधिक थी, उसके विरुद्ध समष्टिवादिता का प्रचार हुआ। उसमें कल्पना के मनोराज्य में विचरण करने की जो प्रबलता थी, उसके विरुद्ध यथार्थ-चित्रण को महत्व दिया गया। उसमें अभिव्यक्ति सम्बन्धी जो गहनता-गम्भीरता एवं किसी सीमा तक दुरूहता थी, उसके विरुद्ध विषय-वस्तु के प्रति आग्रहशील बनते हुए अभिव्यक्ति की सरलता, सुबोधता एवं स्पष्टता पर अधिक बल दिया गया। इतना ही नहीं, छायावाद ने कवियों को जो मानव-जीवन एवं प्रकृति से सम्बन्धित वर्ण्य-विषय दिए थे, उनके विरुद्ध भी प्रतिक्रिया हुई क्योंकि उन चित्रणों को अभिजात्य वर्ग से सम्बन्धित मानकर उनका सर्वसाधारण के जीवन से कोई लगाव स्वीकार नहीं किया गया। उनके स्थान पर मजदूरों, कृषकों, शोषितों, दलितों एवं सर्वहारा-वर्ग के पीड़ित मानवों के

चित्रण को सर्वाधिक महत्त्व प्रदान किया गया। छायावाद के विरुद्ध उत्पन्न काव्य की इस नूतन धारा को *प्रगतिवाद* के नाम से अभिहित किया गया। इस काव्यधारा के प्रवर्त्तक कवियों ने मार्क्सवाद से गठबंधन करके इस बात का प्रचार-प्रसार अधिक किया कि जीवन में सतत संघर्ष अनन्त काल से चला आ रहा है। संघर्ष को जन्म देने वाली प्रकृति समाज के उन दो वर्गों के कारण उत्पन्न होती है, जो पूँजीपति-वर्ग एवं मजदूर-वर्ग कहलाते हैं। इनमें से पूंजीपति शोषक है और मजदूर शोषित है। अतः मजदूर, किसान आदि सर्वहारा वर्ग को शोषकों के विरुद्ध आवाज बुलन्द करके एक ऐसे समाज की स्थापना करने के लिए आन्दोलन करना चाहिए, जहाँ कोई शोषक न हो, पूँजीपति न हो अपितु पूंजी का समान विभाजन हो। इन कवियों के लिए रूस और चीन की क्रान्तियाँ आदर्श बन गयी और ये भारतीय न रहकर कुछ-कुछ रूसी तथा चीनी बन गये। इस प्रकार छायावाद ने हिन्दी कविता में जो कल्पना की रंगीनी एवं स्वानुभूति की सुकुमारता प्रदान की थी, प्रगतिवाद ने उसके स्थान पर कठोर यथार्थवाद को लाकर काव्य के क्षेत्र को शुष्कता एवं रुक्षता से परिपूर्ण कर दिया। फिर हिन्दी के अधिकांश कवि यह अनुभव करने लगे कि प्रगतिवादी नूतन काव्य-धारा न होकर राजनीतिक धारा है जो साहित्य के माध्यम से प्रवाहित हो रही है और जिसका एकमात्र उद्देश्य मार्क्सवादी विचारधारा को भारतीय जन-जीवन में व्याप्त कर देना है। अतः जैसे छायावादी कविता का विरोध उसकी अतिशय अन्तर्मुखी प्रवृत्ति के कारण हुआ था, उसी तरह प्रगतिवादी कविता का विरोध उसकी अतिशय बहिर्मुखी प्रवृत्ति के कारण होने लगा।

सन् 1940-41 के आसपास भारतीय जन-जीवन में दमन, गतिरोध, भ्रष्टाचार, राष्ट्रीय संघर्ष ने ऐसी उथल-पुथल मचा दी थी कि भारत का मध्ववर्गीय बुद्धिजीवी वर्ग इनसे विक्षुब्ध हो उठा। उसके अन्दर अंसतोष की तीव्र ज्वाला धधकने लगी, अधिक संवेदनशील होने के कारण वह बेचैन दिखाई देने लगा और आन्दोलनों की असफलताओं ने उसे नूतन क्रान्ति की ओर उन्मुख कर दिया। ऐसी स्थिति में एक ऐसी काव्य-धारा का श्रीगणेश हुआ जिसमें न तो छायावाद की-सी मधुर एवं सुकुमार कल्पनाओं की रंगीनी थी और न जिसमें प्रगतिवाद के यथार्थ की शुष्कता एवं रुक्षता थी अपितु जिसमें प्रयोगशीलता के प्रति ललक थी। उसमें कविता की नई-नई राहों के अन्वेषण की प्रवृत्ति थी, छायावादी रोमांटिक भावुकता से छुटकारा दिलाने की प्रेरणा थी। नवीन परिवर्तनों से विक्षुब्ध संवेदना को नई सौन्दर्य दृष्टि प्रदान करने की उत्कंठा थी। व्यक्ति की इकाई तथा समाज की व्यवस्था के बीच सम्बन्ध को स्वर देने एवं उसे शुभ बनाने की लालसा थी। काव्य की सामाजिक स्वीकृति का आग्रह था और जिसमें सादृश्यमूलक अलंकारों के स्थान पर वृहत्तर अर्थों को प्रतिध्वनित करने वाले स्वतः स्फूर्त प्रतीकों एवं सजीव बिम्बों को सजाकर एवं संवारकर रखने के लिए अधिक जोर दिया गया था। इस काव्य-धारा को *प्रयोगवाद* नाम दिया गया और अज्ञेय द्वारा 'तार सप्तकों' के माध्यम से इसे सामने लाने का काम किया गया।

अज्ञेय द्वारा 'प्रयोगवाद' नाम से नवीन काव्य-धारा का उद्घोष किया गया। वे न केवल प्रयोगवादी काव्यधारा के यशस्वी कवि हैं अपितु इस धारा के कवियों को प्रकाश में लाने वाले, उन्हें नूतनता की ओर प्रेरित करने वाले, उनके लिए काव्यभूमि तैयार करने वाले, उनकी उपलब्धियों से हिन्दी पाठकों को अवगत कराने वाले भी हैं।

अज्ञेय का पहला कविता संग्रह 'भग्नदूत' 1933 में प्रकाशित हुआ। इस संग्रह की अधिकांश कविताओं में प्रणय का स्वर अधिक मुखरित हुआ है। इसमें 'दृष्टि पथ से तुम आते हो जब', 'असीम प्रणय की तृष्णा', 'कहो कैसे मन को समझा लूँ,' 'विफले विश्व क्षेत्र में खोजा' आदि कविताओं में एक प्रणयी

उच्छावासपूर्ण हृदय विगलित होकर प्रेमानुभूति की तरलता से ओतप्रोत दिखाई देता है। इसी संकलन में 'दीपावली का एक दीप' जैसी कुछ प्रतीकात्मक कवितायें भी हैं और 'बत्ती और शिक्षा', 'रहस्य घट' आदि कुछ ऐसी कविताएँ हैं जो अन्योक्तिमूलक हैं तथा जिनके द्वारा कवि ने सूक्तियों एवं सुभाषितों की सृष्टि की है। इसी संकलन में 'अपना गान', 'भग्नदूत' आदि ऐसी कविताएँ हैं जिनमें कवि ने अपने काव्य-सम्बन्धी विचारों को भी अभिव्यक्ति प्रदान की है। कवि ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि उसके काव्य का लक्ष्य क्या है और वह कौन-सा प्रेरक भाव है जिससे प्रोत्साहित होकर वह इस कवि-कर्म में प्रवृत्त हुआ है।

सन् 1942 में अज्ञेय का दूसरा कविता संग्रह 'चिन्ता' नाम से प्रकाशित हुआ। कविता-संग्रह दो खंडों में विभक्त है। प्रथम खण्ड का शीर्षक 'विश्वप्रिया' है और द्वितीय खंड का शीर्षक 'एकायन' है। विश्वप्रिया के अन्तर्गत कवि ने पुरुष की उस प्रेमानुभूति को चित्रित किया है, जिसके फलस्वरूप वह सहज एवं स्वाभाविक रूप से नारी की ओर आकृष्ट होता है। इस प्रेमानुभूति को व्यक्त करने वाली पुरुष की प्रणय कथा के चार आयाम हैं -- समर्पण, छाया-कथा, विश्वप्रिया और निष्पत्ति। द्वितीय खंड 'एकायन' में अज्ञेय ने नारी के उस एकमात्र मार्ग का चित्रण किया है, जिसको अपनाकर वह अपने जीवन में सुख और संतोष की सांस लेती है। नारी का एकमात्र मार्ग है, उस पुरुष के लिए आत्म-समर्पण जिसकी ओर वह आकृष्ट हुई है, अथवा जिसके प्रणय-बन्धन में उसका जीवन बंध गया है। समपर्ण की यह भावना 'कामायनी' की उन पंक्तियों का स्मरण दिला देती है, जिनमें आद्या नारी श्रद्धा ने "समर्पण लो सेवा का सार, सहज संसृति का यह पतवार, आज से यह जीवन उत्सर्ग, इसी पग तल में विगत विकार" कहकर मनु के प्रति अपना सर्वस्य समर्पित कर दिया था। इस संग्रह में कवि ने क्रमशः पुरुष और स्त्री के दृष्टिकोण से मानवीय प्रेम के उद्भाव, उत्थान, विकास, अन्तर्द्वन्द्व, ह्रास, अन्तर्मन्थन, पुनरुत्थान और परम संतुलन की कहानी कहने का यत्न किया है।

सन् 1949 में अज्ञेय का तीसरा कविता संग्रह 'इत्यलम्' प्रकाशित हुआ। संग्रह चार खंडों में विभक्त है। प्रथम खंड 'बन्दी का स्वप्न' में कुछ कविताएं कवि के जीवन से सम्बन्धित हैं, कुछ कविताओं में तत्कालीन क्रान्तिकारी आन्दोलनों का स्वर मुखरित हुआ है। कुछ देशभक्ति एवं राष्ट्रप्रेम की भावना अभिव्यक्त हुई है, कुछ कविताओं में विफल प्रेम एवं प्रणय की अनुभूति का चित्रण हुआ है और कुछ कविताएं सुभाषितों पर आधारित गद्यांशों एवं पद्यांशों से परिपूर्ण हैं। दूसरे खंड 'हिय-हारिल' में अधिकांश कविताएँ प्रणयानुभूति से ओत-प्रोत हैं, और इसमें कवि ने कतिपय रहस्यवादी कविताएँ भी लिखी हैं जिनमें प्रकृतिवादी रहस्यवाद न होकर व्यक्तिवादी रहस्यवाद ही चित्रित है, क्योंकि इसमें कवि उस अव्यक्त एवं अगोचर सत्ता के अन्वेषण में तत्पर न होकर अपने अन्तर्गत व्याप्त शक्ति की ही खोज में व्यग्र दिखाई देता है। वैसे यह खण्ड प्रतीकात्मक कविताओं से परिपूर्ण है, क्योंकि इसमें 'हारिल' को कवि ने अपना ही प्रतीक बनाया है और जैसे हारिल पक्षी सदैव अपने पंजे में तिनका पकड़े रहता है, वैसे ही कवि का हिय-हारिल भी प्रिया की याद का तिनका सदैव दृढ़ता के साथ पकड़े रहता है। संग्रह के तीसरे खण्ड 'वंचना के दुर्ग' में कवि की प्रयोगात्मक एवं व्यंग्य-प्रधान वे कविताएं संकलित हैं, जिनको प्रयोगवादी काव्य-धारा की आरम्भिक कृतियाँ माना जाता है और जिनमें से अनेक रचनाएं प्रयोगवाद की घोषणा करने वाले उनके द्वारा संपादित प्रथम कविता-संग्रह 'तार-सप्तक' में भी संकलित हैं। नूतन काव्य-दृष्टि एवं विशिष्ट आत्मानुभूति से परिपूर्ण यह खंड कवि अज्ञेय का नवीन काव्य-पद्धति का उद्घोषक होने के कारण महत्वपूर्ण है। इसी संग्रह का

चौथा खंड 'मिट्टी की ईहा' है जिसमें कुछ कविताएं प्रणयानुभूति से सम्पृक्त हैं, कुछ ऋतु-गीत हैं और कुछ कविताओं में कवि ने अपने जीवन का आदर्श अंकित किया है।

अज्ञेय का चौथा काव्य संग्रह 'हरी घास पर क्षण भर' 1949 में प्रकाशित हुआ। इसमें कुछ कविताएं आत्मान्वेषण से सम्बन्धित हैं, कुछ कविताओं में प्रकृति के मार्मिक दृश्यों का चित्रण हुआ है। कुछ कविताओं में प्रेमानुभूति का निरूपण किया गया है और सबसे लम्बी एवं सर्वाधिक मार्मिक कविता 'हरी घास पर क्षण भर' में कवि ने प्रतीकात्मक शैली के अन्तर्गत जीवन का चित्रण किया है क्योंकि यहाँ हरी घास स्वतंत्र जीवन के आमंत्रण का प्रतीक है जिसके द्वारा कवि ने नगर के कृत्रिम एवं बंधनपूर्ण सभ्य जीवन पर मार्मिक व्यंग्य किया है। इसी संकलन में कवि की कुछ ऐसी कवितायें भी हैं जिनमें काव्य का मौलिक स्वरूप क्या है, नई शैली एवं नूतन अप्रस्तुत योजना कैसी होती है, नये कवि का क्या कर्तव्य है, काव्य का लक्ष्य क्या होता है आदि-आदि अनेक प्रश्नों पर कवि ने अपने स्वतंत्र विचार व्यक्त किए हैं। इनमें 'हुआ फिर क्या', 'नयी व्यंजना,' 'कलगी बाजरे की,' 'छन्द है यह फूल,' 'बने मंजुष यह अन्तस्' आदि कविताएँ द्रष्टव्य हैं।

अज्ञेय का पांचवां काव्य संग्रह 1954 में 'बावरा अहेरी' शीर्षक से आया। यह सभी संग्रहों से छोटा है, किन्तु इसकी रचनायें अधिक सजीव एवं सुन्दर मानी जाती हैं। इसका शीर्षक ही प्रतीकात्मक है। 'बावरा अहेरी' सूर्य का प्रतीक है और वह अपने किरण जाल में नित्य वृक्ष, पुष्प, लता, पक्षी, मन्दिर-शिखर, तारघर, पार्क की कन्नेर आदि सभी को फंसाकर सींचता है। संकलन में कुछ कविताएँ जीवन-दर्शन से संबंधित हैं और कुछ कविताओं में प्रकृति की सजीव झांकियाँ अंकित की गई हैं जैसे 'झरने के लिए', 'विज्ञप्ति' आदि में यदि जीवन-दर्शन है तो 'वसंत गीत', 'शरद सांझ के पंछी,' 'उषा-दर्शन', 'अन्धड़' आदि कविताओं में प्रकृति सम्बन्धी चित्र अंकित हैं। 'वहीं जात हूँ सोने,' 'सन्ध्यातारा,' 'वह नाम,' 'वहाँ रात' ऐसी कविताएँ हैं जिनमें प्रणय-सम्बन्धी भावनाओं को चित्रित किया गया है। इस संकलन में 'हवाई यात्रा', 'जनवरी छब्बीस' जैसी फुटकर रचनायें हैं, और 'दफ्तरशाम', 'हवायें चैत की' आदि जैसी व्यंग्यपूर्ण कविताएं भी हैं। यह लघुकाव्य संकलन कवि अज्ञेय के विकसित विचारों एवं नूतन काव्य-शिल्प का द्योतक है।

सन् 1957 में अज्ञेय का छठा काव्य संग्रह 'इन्द्रधनुष रोंदे हुए थे' प्रकाशित हुआ। इस संग्रह का शुभारम्भ 'मंगलाचरण' से हुआ जिसमें कवि ने विराट से करुणा-कण की याचना की है। 'एक दिन जब,' 'जितना तुम्हारा सच है,' 'सत्य तो बहुत मिले,' मैं वहाँ हूँ,' 'मैं तुम्हारा प्रतिभू' कविताओं में कवि ने आत्म-निवेदन को अभिव्यक्ति प्रदान की है। इस संग्रह की कुछ कविताओं में कवि ने वास्तविक सत्य के रूप का निर्णय किया है, जिसके लिए 'सत्य तो बहुत मिले' कविता उल्लेखनीय है। इस संग्रह में 'सांप' एवं 'रेंक' जैसी व्यंग्य प्रधान कविताएं भी हैं। इसमें 'इतिहास की हवा' एक लम्बी कविता भी है जिसमें सभ्य कहलाने वाले वर्तमान युग की विषमतापूर्ण स्थिति का प्रतीकात्मक वर्णन है।

'अरी ओ करुणा प्रभामय' नामक अज्ञेय का काव्य संग्रह 1959 में प्रकाशित हुआ। यह संग्रह 'रोपयित्री', 'रूपकेकी', 'एक चीड़ का खाका' और 'द्वार-हीन-द्वार' नामक चार खण्डों में विभक्त है। प्रथम 'रोपयित्री' खण्ड की अठारह कविताओं के अन्तर्गत तथाकथित नई कविता एवं नए कवि की विशेषताओं का उल्लेख किया गया है, जिनमें 'अच्छा खण्डित सत्य', 'हंस कृती नहीं है', 'शब्द और सत्य', 'नया कवि आत्म स्वीकार', 'नया कविः आत्मपोदेश' उल्लेखनीय हैं। संग्रह के दूसरे खण्ड 'रूप-केकी' में कितनी ही प्रतीकात्मक कविताएं हैं, जिनमें अज्ञेय ने जीवन की अनुभूति एवं उसकी

आनन्दमयी स्थिति का निरूपण किया है। इनमें से 'खिड़की एकाएक खुली', 'पहेली', 'उन्मत्त', 'रश्मिवाण' आदि उल्लेखनीय हैं। तीसरे खण्ड 'एक चीड़ का खाका' में जापानी कविताओं को संकलित किया गया है, जिन्हें उन्होंने अंग्रेजी के माध्यम से पढ़ा था। चौथे 'द्वार-हीन-द्वार' खण्ड में अधिकांश प्रतीकात्मक कविताएं हैं, जिनमें सागर को विराट् या अज्ञात सत्ता का प्रतीक मानकर कवि ने अपने प्रकृति-प्रेम, हृदय की कसक, आह आदि को चित्रित किया है। इसके लिए 'सागर पर सांझ', 'रात और दिन', 'मोह-बंध', 'रात-कटी ब्राह्म मुहुर्तःस्वस्ति वाचन' आदि कविताएं विशेष द्रष्टव्य हैं। इस खण्ड की अंतिम कविता 'द्वार-हीन-द्वार' में अज्ञेय के अगले कविता संग्रह 'आंगन के पार द्वार' तक जाने के लिए संकेत दिया है।

अज्ञेय का आठवां कविता-संग्रह 'आंगन के पार द्वार' 1961 में प्रकाशित हुआ। यह संग्रह तीन खण्डों में विभक्त है--'अन्तःसलिला', 'चक्रान्त शिला' और 'असाध्य वीणा'। इसमें आते-आते कवि वस्तुवादी से क्रमशः उन्नत होता हुआ रहस्यवादी बन गया है। इसके पश्चात् अज्ञेय के सात और कविता संग्रह प्रकाशित हुए। इन समस्त काव्य-संग्रहों का अनुशीलन करने पर ज्ञात होता है कि कवि ने किस तरह एक भग्नाशा प्रेमी एवं क्रान्तिकारी बंदी के रूप में कविता-रचना आरम्भ की थी और किस तरह वह उत्तरोत्तर जीवन, प्रकृति एवं विराट् का सहारा लेकर सर्वत्र व्याप्त सौन्दर्य का साक्षात्कार करने लगा। कैसे उसका प्रौढ़ मस्तिष्क जीवन में व्याप्त कुण्ठाओं, मौन पीड़ाओं, आवर्जनाओं व विषमताओं से द्वन्द्व-युद्ध करता हुआ वास्तविक तथ्यों के उद्घाटन में प्रवृत्त हुआ और फिर कैसे विश्व व्यापी सौन्दर्य में आत्म-विभोर होकर अज्ञात अगोचर सत्ता के प्रति आकृष्ट होता हुआ रहस्यवादी विचारक की भांति आत्मान्वेषण एवं सत्यान्वेषण में लीन हो गया।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि अज्ञेय के 'अहम्' में अन्तर्विरोध हैं जिससे उनका कवि अपनी कविताओं में सदैव सामंजस्य की खोज में भकटता रहा है और कभी राष्ट्रवादी, कभी मानवतावादी, कभी बुद्धिवादी और कभी रहस्यवादी बना है। अज्ञेय का यह सतत् अन्वेषी और प्रयोगवादी रूप ही उनका सच्चा स्वरूप है। अपने अहम् की अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने साहित्य में नूतन काव्य-पद्धति, नूतन प्रयोग, नूतन विषय आदि में चित्रण को महत्त्व दिया जिससे अज्ञेय एक प्रयोगवादी काव्य-धारा के प्रणेता के रूप में हिन्दी साहित्य में दृष्टिगोचर होते हैं।

44-शिव विहार, फरीदीनगर
लखनऊ - 226015
मो. 9415045584

●

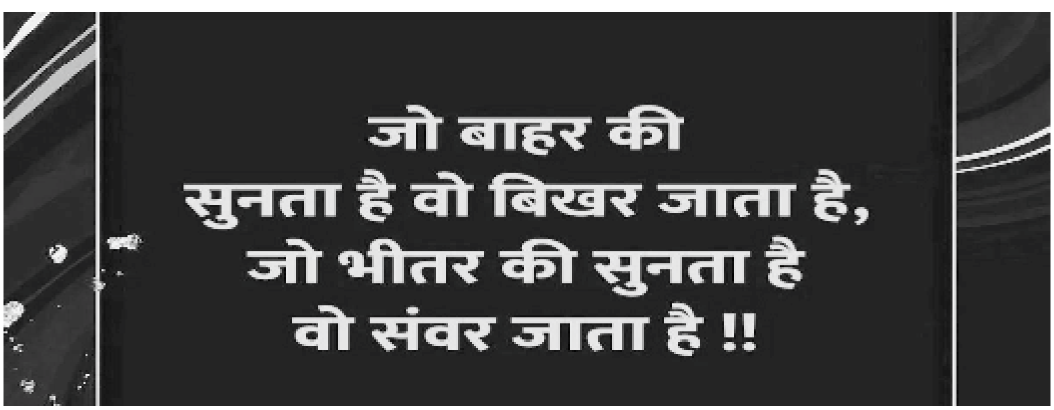

मुक्तिबोध के काव्य का भावलोक एवं दर्शन

प्रो. अर्चना जैन

मुक्तिबोध नई कविता की विकास यात्रा में एक मील के पत्थर की भांति हैं। उन्होंने नई कविता के इतिहास में परंपरा को आत्मसात् करते हुए भी हिन्दी कविता को सर्वथा अछूते आयाम प्रदान किये एवं नई कविता को नूतन संदर्भ भी। छायावाद, प्रगतिवाद तथा प्रयोगवाद तीनों काव्य-परंपराओं से प्रभावित होने के बावजूद मुक्तिबोध ने नई कविता में एक ऐसे वातावरण का सृजन किया जिससे जनजीवन की आशा-आकांक्षाओं एवं संघर्षों का महत्त्व बढ़ गया। उन्होंने अपनी कविताओं में युगीन सामाजिक जटिलताओं, पाखण्ड- दंभ, मानसिक तनाव एवं विषमतापूर्ण जीवन की भयावहता को रूपायित किया है। साथ ही उन्होंने शोषण एवं भ्रष्टाचार पर आधारित आज की पतनोन्मुख भारतीय सभ्यता का यथार्थ चित्र भी प्रस्तुत किया है। मुक्तिबोध के काव्य का भावपक्षीय मूल्यांकन करने के लिए परंपरागत रसवादी मानदण्ड व्यर्थ नहीं तो अपर्याप्त अवश्य सिद्ध होंगे। उनकी काव्य-साधना का कथ्य युगीन समस्या-संकुल समाज में एवं समाज की विद्रूप समस्याओं के भीतर ढूंढ़ा जा सकता है। मुक्तिबोध की कविताओं का प्रतिपाद्य यथार्य जीवन से सम्बद्ध है। उनके अपने शब्दों में- *इसीलिए मेरी ये कविताएं/ भयानक हिडिम्बा है/ वास्तव की विस्फारित प्रतिमाएं/ विकृताकृति बिम्बा हैं। पुनश्च- नहीं होतीं, कहीं भी खत्म कविता नहीं होती/ कि वह आवेग त्वरित कालयात्री हैं।* मुक्तिबोध के काव्यगत भाव-लोक के वैभव को निम्मलिखित उपशीर्षकों में विभक्त कर परखा एवं समझा जा सकता है--

युगीन जीवन की विभीषिकाओं का चित्रण : मुक्तिबोध ने युगीन जीवन में व्याप्त विभिन्न विभीषिकाओं, विसंगतियों एवं विडम्बनाओं को जिस पैनी, सूक्ष्म और गंभीर दृष्टि से देखा परखा है वैसी दृष्टि बहुत कम समकालीन कवियों को प्राप्त है। यही कारण है कि वे युगीन कवियों में मूर्धन्य स्थान पर प्रतिष्ठित हैं। प्रस्तुत हैं कुछ काव्य-पंक्तियां जिनमें युगीन जीवन की विभीषिकाओं का यथार्थ चित्रांकन हुआ है-- *आज वे अभाव के व कल के उपवास के / व परसों की मृत्यु के/ दैन्य के महा अपमान के, व क्षोभपूर्ण / भयंकर चिन्ता के उस पागल यथार्थ का / दिखता पहाड़ / स्याह।*

आज के स्वार्थी, निर्मम लोगों के प्रति उनका पैना व्यंग्य देखिए-लोहित पिता को घर निकाल दिया / *जन-मन करुणा-सी मां को हंकाल दिया / स्वार्थों के एरियार कुत्तों को पाल लिया।*

दुःख, निराशा और कुंठा का चित्रण : आज के परिवेश में अभाव, आकस्मिकता, उच्छृंखलता, षड्यंत्र, हत्याएं आदि मरणोन्मुखी स्थितियाँ और कुंठा, तनाव, घुटन आदि को भोगने की विवशता को मुक्तिबोध ने अत्यंत सूक्ष्मता से चित्रित किया है। 'चांद का मुंह टेढ़ा है' शीर्षक कविता का निम्नलिखित अंश चिन्तनीय है, जिसमें सन् 53 के उस वर्ष का जिक्र है जब एम्प्रेस मिल-मजदूर गोलीकांड हुआ था। फ्रीज वालों के लिए चांद भले ही अमृतवर्षी होगा किन्तु सर्वसाधारण अभावग्रस्त लोगों के लिए तो वह विद्रूप टेढ़ा या काला है और है विषवर्षी भी-- *कारखाने-अहाते के उस पार / धूम्रमुख चिमनियों के ऊंचे-ऊंचे / उद्‌गार चिह्नाकार-मीनार / मीनारों के बीचोंबीच / चांद का है टेढ़ा मुंह / भयानक स्याह सन् तिरपन का चाँद वह / गगन में कर्फ्यू है / धरती पर चुपचाप ज़हरीली छिः थूः है।*

कृष्ण का सबल और सफल रूप है-- 'मुझे पुकारती हुई पुकार' कविता। कवि की जीवन्त आस्था यथार्थ के कठोर आघात-प्रत्याघातों से लड़खड़ा उठती है। वह वेदना से कराह उठता है-- *'पुकार खो गई कहीं बिखेर अस्ति के समूह / जीवनानुभूति की गंभीर भूमि में / अपुष्प-पत्र, वक्र-श्याम, झाड़-झंखाड़ों घिरे असंख्य ढूह / भग्न निश्चयों रुंधे विचार स्वप्न भाव के/मुझे दिखे/ अपूर्ण सत्य की क्षुधित/अपूर्ण यत्न की तृषित / अपूर्ण जीवनानुभूति-प्राण मूर्ति की समस्त भग्नता दिखी।'*

कुण्ठा के ऐसे भी क्षण जीवन में आते हैं जब उसे लगता है कि दुनिया को बेहतर बनाने की क्षमता अब उसमें नहीं रह गई है। 'मैं तुम लोगों से दूर हूं' कविता की निम्नलिखित पंक्तियाँ देखिए-- *'असफलता का धूल-कचरा ओढ़े हूँ / इसलिए कि वह चक्करदार जीनों पर मिलती है / छल छद्‌म की / किन्तु मैं सीधी-सादी पटरी-पटरी दौड़ा हूँ / जीवनी / फिर भी अपनी सार्थकता में खिन्न हूँ / विष से अप्रसन्न हूँ / इसलिए कि जो है उससे बेहतर चाहिए / पूरी दुनिया साफ करने के लिए मेहतर चाहिए / वह मेहतर मैं हो नहीं पाता।'*

'एक भूतपूर्व विद्रोही का आत्मकथन' शीर्षक कविता की निम्नोक्त पंक्तियों में युग का संत्रास कवि का अपना संत्रस बन गया है। देखिए-- *दुःख तुम्हें भी है / दुःख मुझे भी / हम एक ढ़हे हुए मकान के नीचे दबे हैं / चीख निकलना भी मुश्किल है / असंभव... / हिलना भी।'*

इन तमाम युगीन कुंठाओं, संत्रासों के बावजूद कवि न तो अकर्मण्यता का शिकार होता है और न ही जीवन में पराङ् मुख। उसकी दुःखानुभूति भी छाया-वादी कवियों की-सी पलायनवादी मनोवृत्ति नहीं है।

मुक्तिबोध लिखते हैं-- 'क्रमशः मेरा झुकाव मार्क्सवाद की ओर हुआ। अधिक वैज्ञानिक, अधिक मूर्त और अधिक तेजस्वी दृष्टिकोण मुझे प्राप्त हुआ। यहाँ एक तथ्य उल्लेखनीय है कि मुक्तिबोध तथोक्त मार्क्सवाद के पिछलग्गू नहीं हैं, इसलिए वे नारेबाजियों से दूर रहे हैं, लाल रूस के गीत भी उन्होंने नहीं गाए। उनका उद्देश्य केवल समाज में व्याप्त वर्ग-वैषम्य को उभारना रहा है। उत्पीड़ित मानवता का आकाश अवश्य ही एक दिन ज्वालामुखी के रूप में फूटेगा। यह वह लावा है जिसे रोकना या टालना असंभव हैः ' जन-जन के आंसू के द्रव का / मूल ओषजन, शूल उद्‌जन / यहां ज्वलंत रश्मि-पूंजों में ....../ उसको रोक सके यों कोई / किसका दावा? / ज्वालामुखी से वे फूटें / तो उनको कहते हो लावा!! / लावा कहकर निंदा करके / कोई न उनको रोक सकते।

(कल हमने जो चर्चायें की थी)।

बुर्जुआ संस्कृति के विरुद्ध क्षोभ की तीव्र व्यंजना : कवि स्वयं जिस सफेदपोश बुर्जुआ संस्कृति का सदस्य है, उसके प्रति उसके हृदय में इतना गहरा क्षोभ है कि वह अपने सफेद वस्त्रों को फाड़कर फेंक देने के लिए तत्पर हो जाता है-- *मुझको है भयानक ग्लानि / निज के श्वेत वस्त्रों पर / कि*

नगरों के सुसंस्कृत सौम्य चेहरों से / उचटता मन / उतारूं आवरण / यह साफ गहरा दूधिया कुर्ता / व चूने की सफेदी में चिलकते-से / सभी कपड़े निकालूंगा।.... (मेरे लोग)। कवि की ग्लानि का एक कारण और भी है-- रिफ्रीजरेटरों, विटॉमिनों, रेडियोग्रैमों के बाहर की--/ गतियों की दुनिया में / मेरी वह भूखी बच्ची मुनिया है शून्यों में / पेटों की आतों में न्यूनों की पीड़ा है / छाती के कोषों में रहितों की व्रीड़ा है। ......(मैं तुम लोगों से दूर हूं)।

बुर्जुआ समाज के प्रति व्यक्त कवि का सहज आक्रोश निम्नलिखित पंक्तियों में भी द्रष्टव्य है-- *छोड़ो हाथ, केवल घृणा औ दुर्गंध / तेरी रेशमी वह शब्द-संस्कृति अंध / देती क्रोध मुझको खुब जलता क्रोध / तेरे रक्त में भी सत्य का अवरोध / तू है मरण, तू है रिक्त, तू है व्यर्थ / तेरा ध्वंस केवल एक तेरा अर्थ।......* (पूंजीवादी समाज के प्रति)।

व्यंग्य-विद्रूप की प्रधानता :

मुक्तिबोध की कविता में राजनीतिक-सामाजिक तथा मानव मूल्यों की विसंगतियों का अत्यधिक व्यंग्य-विद्रूपमय चित्रण है। जीवनभर भीषण अर्था-भाव के संकट से त्रस्त होने पर भी वे अपने सिद्धान्तों और आत्मा के मूल्य पर कभी समझौता नहीं कर सके। 'अंधेरे में' शीर्षक कविता में उन्होंने ऐसे कलाकारों पर जमकर कशाघात किया है जो जनाक्रोश को देखकर भी अनदेखा कर देते हैं, क्योंकि मूलतः वे रक्तशोधी पूंजीपति-वर्ग के क्रीतदास हैं। पंक्तियां देखिए-- *सब चुप, साहित्यिक चुप और कविजन निर्वाक / चिन्तक, शिल्पकार, नर्तक चुप हैं। उनके ख्याल से यह सब गप हैं / मात्र किंवदन्ती। / रक्तपायी वर्ग से नाभिनाल बद्ध ये सब लोग / नपुंसक भोग शिरा-जालों में उलझे। (अंधेरे में)*

पुनश्च, बौद्धिक है क्रीतदास / किराये के विचारों का उद्भास।

राजनीतिक जीवन में परिवाप्त मूल्यहीनता और मिथ्याडंबरों पर उनका व्यंग्य देखिए-- *मानव मस्तक में से निकले / कुछ ब्रह्मराक्षसों ने पहनी / गांधीजी की टूटी चप्पल।*

कवि की आस्था और उसका आत्मपर्यवेक्षण : अनेक नाम-रूपों में प्रसिद्ध आज के पलायनवादी तथा नये-पुराने अध्यात्मवादी, मानवीय नियति के सम्बन्ध में जैसे कतई असंपृक्त हैं। कुछ तो योग-क्षेम का सारा उत्तरदायित्व ईश्वर को सौंपकर बिल्कुल निर्द्वन्द्व हो जाते हैं और कुछ ऐसे अलमस्त हैं जो प्रत्येक क्षण को मस्ती के साथ भोगने के पक्ष में हैं क्योंकि इनकी दृष्टि में जो कुछ होना है, उसमें कोई रद्दोबदल नहीं होगा--

यही कारण है कि मानवीय नियति के संबन्ध में परम आस्था रखते हुए भी वे रोग को असाध्य नहीं मानने। कवि की आस्था है कि उसके सम्मुख मानव का जो एक प्रकाशमय भविष्य है वह एक दिन अवश्य यथार्थ होगा (भले ही आज वह एक कल्पना मात्र हो)। *मानव दिगंत के कूलों पर / जिन किरनों का ताना-बाना / उस रश्मि-रेशमी / क्षितिज क्षोभ पर पर अंकित / नूतन व्यक्तित्वों के सहसदल स्वर्णोज्ज्वल- / आदर्श-बिम्ब मानव-युग के। .... उस स्वर्ग-सरोवर का जल / चमक रहा, देखो / उस दूर क्षितिज-रेखा पर झलमला रहा।......* ('जब प्रश्नचिह्न बौखला उठे')

इस स्वर्णिम स्वप्न की पूर्ति करने का क्या ढंग है? क्या हर एक व्यक्ति का सुधार? या फिर महापुरुषों के प्रवचनों को सुनकर मानव प्रत्येक व्यक्ति महामानव बन जाए, या फिर केवल सही मावन ही बन जाए तो यह स्वार्थान्ध शोषण समाप्त हो जाए। किन्तु आज के तथाकथित महापुरुषों की दशा को कवि ने देखा है, तभी तो वह लिखता है-- *बुद्ध के स्तूप में / मानव के सपने / गड़ गए, गाड़े गए! ईसा के पंख सब / झड़ गए, झाड़े गए! / सत्य की देवदासी -चोलियां उतारी गई / उतर गई / सपनों की आंतें सब / चीरी गई, फाड़ी गई। / बाकी सब खोल है, जिन्दगी में झोल है!* .... (चाँद का मुंह टेढ़ा है)।

कवि मानव-मुक्ति के लिए समझौतावादी दर्शनों किंवा उनके निर्दिष्ट तरीकों का प्रबल विरोधी है। कवि के अनुसार संगठित जन-संघर्ष या क्रांति के बिना शोषणमुक्त समाज-रचना असंभव है। यह जनसंघर्ष सर्वत्र जारी है, कहीं खुलकर तो कहीं दबे-दबे-- *मुझे मालूम/ अनगिनत सागरों के क्षुब्ध कूलों पर, पहाड़ी-जंगलों में मुक्तिकामी लोक-सेवाएं / भयानक वार करतीं शत्रु-मूलों पर / व मेरे स्याह बालों में उलझता और / चेहरे पर लहरता है / उन्हीं का अग्निक्षोभी धूम।.....* ('चकमक की चिनगारियाँ')

मुक्तिबोध की कविताओं में अनेकत्र आत्मपर्यवेक्षण, आत्मालोचन एवं आत्मशोधन की भावना भी व्यक्त हुई है। साफगोई तथा सपाट बयानी के रूप में 'आत्मालोचन' का एक उदाहरण द्रष्टव्य है-- *किन्तु असंतोष मुझको है गहरा / शब्दाभिव्यक्ति--- अभाव का संकेत / काव्य-चमत्कार उतना ही रंगीन / परंतु ठंडा / मेरे भी फूल हैं तेजस्क्रिय, पर / अतिशय शीतल।*

डॉ. सम्पत ठाकुर के शब्दों में- 'जो लोग आस्था--अनास्था, आशा-निराशा, तिमिर तथा आलोक के परस्पर विरोधी स्वर मुक्तिबोध में सुनते हैं, वे फिर एक बार समग्र रूप से मुक्तिबोध को पढ़ें और समझें, तो पाएंगे कि जितनी बड़ी आस्था का स्वर इस कष्टजीवी कवि की वाणी से बुलंद हुआ है, हिन्दी में अन्यत्र वह दुर्लभ है। जहां उन्होंने आज की शोषणकारी भट्टियों का अंकन किया है, वहां वे तिमिर और घुटन न देखेंगे तो क्या देखेंगे?"

सत्-चित् वेदना का भाव : मुक्तिबोध ने अपनी अनेक कविताओं में समाज में असुरक्षित जीवन के प्रति अपनी वेदना व्यक्त की है-- *वधू मूर्च्छिता, पिता अर्धमृत, दुखिता माता स्पंदनहीना / घनी रात, बादल रिमझिम है, दिशा मूक कवि का मन गीला।*

इस मरणोन्मुख युग तथा मरणासन्न जीवनादर्शों के उद्धार के लिए आवश्यकता इस बात की है कि सकर्मक सत्-चित् वेदना के नए सहचर खोजे जाएं-- *मर गया एक युग मर गया जीवनादर्श। / इतने में मुझको चिढ़ाता है कोई / सवाल है-- मैं क्या करता अब तक / भागता-फिरता था सब ओर (फिजूल है इस वक़्त कोसना खुद को) / एकदम ज़रूरी दोस्तों को खोजूं / पाऊं मैं नए सहचर / सकर्मक सत्-चित्-वेदना-भास्कर।......* ('अंधेरे में')।

डॉ. राजपाल शर्मा के शब्दों में- "मुक्तिबोध मसीही चेतना के कवि नहीं हैं। दुःख उनके लिए प्रसाधन न होकर जीवन है। वे दुःख के सहारे नहीं अपितु दुःख में जीनेवाले कवि हैं। मसीही 'तटस्थ दुःखवादी दर्शन' से मुक्तिबोध को तीव्र असंतोष है।' कवि की ये पंक्तियां- *दुनिया न कचरे का ढेर जिस पर / दानों के चुगने चढ़ा कोई भी कुक्कुर / कोई भी मुरगा / यदि बांग दे जोरदार / बन जाए मसीहा।*

वस्तुतः मुक्तिबोध के काव्य का समूचा भाव-जगत महाकवि निराला की उन्मुक्त मानवतावादी परंपरा का ही अगला प्रशस्त मार्ग है। में मुक्तिबोध की दृष्टि में वही कवि आदर्श है, जो मानवीय वास्तविकता का बौद्धिक और हार्दिक आकलन करते हुए सामान्यजनों के गुणों और उनके संघर्षों से प्रेरणा और प्रकाश ले और उनके संचित जीवन-विवेक को स्वयं ग्रहण करे तथा उसे और अधिक निखारकर कलात्मक रूप में उन्हीं की चीज को उन्हें ही लौटा दे।"

मुक्तिबोध के काव्य का प्रमुख प्रयोजन पीड़ित मानवता की वेदना का भाव-संकुल चित्रण, पूंजीवाद की शोषणकारी व्यवस्था का विरोध और नवीन, शोषणहीन समाजवादी व्यवस्था की स्थापना के प्रयासों में काव्य के माध्यम से योग देना है। मुक्तिबोध जीवन को अतिशय महत्त्व देते हैं और जीवन को ही वे काव्य का प्रेरणा-केन्द्र मानते हैं। यही उनका आदर्श कवि-चरित्र है।

मुक्तिबोध ने अपनी एक कविता में दर्शन-सम्बन्धी कुछ बुनियादी प्रश्न उठाए हैं-- *'बुनियादी*

सवाल अपना पहचान न पाया'। मैंने कहा- 'बताया है आपने उसे / मैं कौन, मुझे इसका उत्तर आपसे चाहिए-- क्या हूँ, क्यों हूँ, कैसे हूँ, यह सब बताइए।...... (इस चौड़े ऊँचे टीले पर)।

मुक्तिबोध की कुछ महत्त्वपूर्ण दार्शनिक आस्थाएँ इस प्रकार हैं--

मार्क्सवादी दर्शन के प्रति आस्था : मुक्तिबोध ने जीवन और काव्य दोनों में ही सर्वाधिक महत्त्व मार्क्सवादी दर्शन को ही दिया है। मार्क्सवाद के प्रति कवि की यह आस्था किसी आकस्मिक स्थिति की फलश्रुति नहीं थी और न ही उसमें भावुकता कोई आधार है, अपितु वह उनकी अनुभवसिद्ध वास्तविकताओं के आधार पर विकसित हुई थी, साथ ही वह तद्विषयक गंभीर अध्ययन की परिणति थी। एक समय ऐसा भी था जब वे व्यक्तिवादी थे। उनकी 'आंतरिक विनष्ट शांति के और शारीरिक ध्वंस के उस समय में, व्यक्तिवाद कवच की भांति काम करता था, किन्तु इसी काल में, 'एक अनुभवसिद्ध व्यवस्थित तत्त्व-प्रणाली अथवा जीवन-दर्शन' आत्मसात् कर लेने की दुर्दम प्यास भी उनके मन में हमेशा रहा करती थी। उसके परिणाम के सम्बन्ध में वे स्वयं लिखते हैं-- "क्रमशः मेरा झुकाव मार्क्सवाद की ओर हुआ। अधिक वैज्ञानिक अधिक मूर्त और अधिक तेजस्वी दृष्टिकोण मुझे प्राप्त हुआ।"

मुक्तिबोध की इस निर्भ्रान्त एवं प्रामाणिक आत्मस्वीकृति के बावजूद जो लोग उन पर व्यक्तिवादी होने का आक्षेप लगाते हैं वह वस्तुतः उनकी अपनी भ्रान्ति ही है।

मुक्तिबोध की यह दृढ़ मान्यता रही है कि मार्क्सवादी दर्शन को छोड़कर विश्व के सारे के सारे महत्त्वपूर्ण दर्शन आज तक मानव को शोषणमुक्त नहीं कर पाए। दार्शनिक और चिन्तक तत्त्व-निरूपण में ही दत्तचित्त रहे और शोधक-वर्ग उनके दार्शनिक सिद्धान्तों का उपयोग अपने वर्गीय स्वार्थ की पूर्ति एवं हित-साधन में ही करता आ रहा है। मुक्तिबोध आधुनिक चिन्तक-दार्शनिक-कवि-कलाकार से एक कमिटमेंट चाहते हैं-- वह खुल्लम खुल्ला घोषित करे कि वह किसका पक्षधर है-- स्वर्ण-सिंहासन पर आसीन शोधक का या अंधकूप में सड़ते हुए शोषित का। मुक्तिबोध अपनी 'चकमक की चिनगारियां' कविता में लिखते हैं-- *मेरे मित्र / कुहरिल गत युगों के अपरिभाषित / सिन्धु में डूबी / परस्पर जो कि मानव पुण्य धारा है, उसी के क्षुब्ध काले बादलों को साथ लाई हूँ, बशर्ते तय करो, किस ओर हो तुम अब / सुनहले उर्ध्व आसन के / दबाते पक्ष में, अथवा / कहीं उसे लूटी-टूटी /अंधेरी निम्न कक्षा में तुम्हारा मन/ कहां हो तुम?*

आज तक चिन्तक-दार्शनिक तटस्थता का लबादा ओढ़े रहे, यही कारण है कि शोषण और वर्ग-वैषम्य की समस्या आज तक किसी-न-किसी रूप में विद्यमान है। यह एक चिरंतन समस्या बन गई है- *"सभी प्रश्नोत्तरी की तुंग प्रतिमाएं / गिराकर तोड़ देता हूं हथौड़े से कि वे सब प्रश्न कृत्रिम और उत्तर और भी छलमय / समस्या एक / मेरे सभ्य नगरों और ग्रामों में / सभी मानव / सुखी, सुंदर व शोषणमुक्त / कब होंगे?" .....*(चकमक की चिनगारियाँ)।

सच है, जिस दुनिया में 99 प्रतिशत लोग मौत की आगोश में घटु-घुट कर जी रहे हैं, उनके बुनियादी सवाल तो पहले हम लोग हल कर लें, बाद में पुनर्जन्म, पूर्वजन्म, स्वर्ग-नरक की गुत्थियां सुलझाने के लिए हमारे पास पर्याप्त समय होगा और शांति भी होगी। आज "मैं कौन हूँ, क्या हूँ, कहाँ से आया हूँ, कहाँ जाऊंगा, जैसे प्रश्नों का दुःख के दरिया में डूबते उतराते असंख्य दीन-दुखियों शोषितों के लिए भला क्या अर्थ है? वस्तुतः सभी सुनहरे प्रश्न फुरसत के हैं।

ईश्वरवाद के विरुद्ध :

ईश्वर में आस्था रखने वाले विश्व के समस्त प्रत्ययवादी दर्शन जगजीवन की सभी समस्याओं का समाधान ईश्वर में प्राप्त कर लेते हैं। सामान्यतः उन

सबका एक मात्र यही विचार या दृष्टिकोण होता है कि- "सभी उसी एक ईश्वर से और उसी के लिए उत्पन्न हुए हैं और उसके आदेश का पालन करते हुए या तो उसमें लय हो जाएंगे या फिर से जन्म-मरण के फेरों में भटका करेंगे।" किन्तु मुक्तिबोध ईश्वर को 'एक परम शून्य' के अतिरिक्त और कुछ नहीं मानते। उनकी दृष्टि में यह ईश्वरवादी दर्शन उपहासास्पद है। उन्हीं के शब्दों में- *आज अनस्तित्व का इतना बड़ा अस्तित्व / ऐसे घुप्प अंधें का इतनी तेज उजाला / लोग बाग/अनाकार ब्रह्म के समाहीन शून्य के/ बुलबुले में यात्रा करते हुए गोल-गोल / गोलगोल / खोजते हैं जाने क्या? / बेछोर सिफर के अंधेरे में बिला बत्ती / सफर भी खूब है! ....* (एक अरूप शून्य के प्रति)।

निष्काम कर्मवाद का विरोध :

निष्काम कर्मवाद का निरूपण उपनिषद् और विशेषतः गीता में हुआ है जिसमें भारतीय मनीषियों ने मनुष्यमात्र के समस्त दार्शनिक प्रश्नों का उत्तर खोजने का प्रयत्न किया है। यही कारण है कि भारतीय चिन्तन-परंपरा में निष्काम कर्मवाद एक बहुचर्चित और प्रतिष्ठित दर्शनउभरकर सामने आया है। किन्तु मुक्तिबोध प्रस्तुत दर्शन को सामंती व्यवस्था एवं पूंजीवादी सभ्यता के एक शोषण-शस्त्र के रूप में ही स्वीकार करते हैं और मानते हैं कि यह निष्काम कर्मवाद वस्तुतः मानव-सभ्यता के चेहरे पर गुलाबी पावडर के नीचे छिपा चेचकनुमा दाग है। यह कैसी असंगत और बेतुकी बात है कि बस काम करते रहो, फल पर तुम्हारा कोई अधिकार नहीं। देखिए प्रस्तुत दर्शन पर मुक्तिबोध का चुटीला व्यंग्य- *"कर्म के फल पर नहीं-- कर्म पर ही अधिकार/सिखाने वाले वचन का आडंबर / पॉउडर में सफेद अथवा गुलाबी / छिपे बड़े-बड़े चेचक के दाग मुझे दीखते हैं / सभ्यता के चेहरे पर/ शोषण की सभ्यता के नियमों के अनुसार / बनी हुई संस्कृति के तिलिस्मी / सियाह चक्रव्यूहों में / कैसे हुए प्राण सब मुझे याद आते हैं। (मुझे याद आते हैं)।*

मुक्तिबोध के काव्यगत आधारभूत दार्शनिक सिद्धांतों के मूल में उनकी मानवतावादी दृष्टि ही सक्रिय रही। निष्कर्षतः उन्हीं के शब्द यहां प्रस्तुत हैं-- "नवयौवनावस्था के पूर्व से ही मेरे प्रयोजन प्राप्त और विकसित होते गए और उन्हीं के अनुसार मैंने अपनी भावधारा विकसित की..... ये प्रयोजन मेरे निजत्व के मूल चक्र हैं। वे प्रयोजन क्या हैं? घर में, परिवार में, समाज में, मनुष्य को मानवोचित जीवन प्राप्त हो।..... आर्थिक उत्पीड़न और शोषणमूलक यह जो भयानक पूंजीवादी समाज-व्यवस्था है, वह हमेशा के लिए समाप्त हो। उत्पादन तथा श्रम के समस्त माध्यमों तथा साधनों पर पूरे समाज का अधिकार हो। किसी को भी किसी का व्यक्ति-स्वातंत्र्य खरीदने का अधिकार नहीं हो, न बेचने का, किन्तु जो व्यक्ति-स्वातंत्र्य, समाजवाद और जनतंत्र-समन्वय में बाधक हो, उस व्यक्ति स्वातंत्र्य को पूरा समाज सार्वजनिक रूप से निंदित और तिरस्कृत करे। समाजवाद जनता की, जनसाधारण की मुक्ति का राजपथ है।"..... (नयी कविता का आत्मसंघर्ष)।

सहायक स्रोत

1. चांद का मुंह टेढ़ा - मुक्तिबोध। **2.** नई कविता का आत्मसंघर्ष - मुबोक्तिबोध। **3.** आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब-विधान - डॉ. केदारनाथ सिंह। **4.** 'कल्पना' पत्रिका का नवम्बर 1964 का अंक। **5.** 'मुक्तिबोध : विचारक, कवि और कथाकार' - डॉ. सुरेन्द्र प्रताप। **6.** गजानन माधव मुक्तिबोध का साहित्य : एक अनुशीलन - डॉ. शशि शर्मा।

203, वात्सल्य फ्लैट, वकीलबाड़ी,
एल.जी. कॉर्नर, मणिनगर,
अहमदाबाद, 380008, (गुजरात)
मो.-9429625150

●

डॉ. रामदरश मिश्र की लघु कविता का शिल्प

डॉ. सविता मिश्र

डॉ. निर्मल शर्मा के अनुसार 'लघुता शब्द स्वरूप का वाचक है। इसमें कविता कुछ पंक्तियों में ही अपना स्वरूप प्राप्त करती है। निश्चय ही यहाँ अभिव्यक्ति का अनुशासित रूप होता है और उसके शिल्प में कसावट होती है। उनमें सूत्र शैली का प्रयोग और शब्दों में प्रतीक बद्धता होती है।[1] डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ लघु कविता के सम्बन्ध में कहते हैं -"हिन्दी में लघु कविता की चर्चा कम हुई है। बहुत पहले डॉ. ओमनन्द सारस्वत ने 'लघु बौद्धिक कविता' उर्फ अगली कविता नाम से एक आन्दोलन चलाने की कोशिश की थी, लेकिन लघु कविता प्रायः फिलर के रूप में प्रयुक्त होती रही। इसे क्षणिका नाम देकर यह मान लिया गया कि इसमें युग का बड़ा और महत्त्वपूर्ण सत्य व्यक्त नहीं किया जा सकता। रामदरश मिश्र जी की बसंत, ककड़ी, पत्थर, चिट्ठियाँ, चिड़ियाँ आदि लघु कविताएँ इस भ्रम को तोड़ती हैं।"[2] डॉ. निर्मल शर्मा व डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ ने लघु कविता विषयक जो विचार व्यक्त किये उनसे लघु कविता का आशय, स्वरूप, विशेषताएँ एवं महत्त्व के विषय में महत्त्वपूर्ण तथ्यों का पता चलता है। लघु कविता का कथ्य बिन्दु-बिन्दु होता है और वह किसी एक मुद्दे के कुछ अंश को ही प्रस्तुत करती है। बिम्बों और प्रतीकों के माध्यम से लघु कविताएँ अपने वक्तव्य में अत्यन्त प्रभावी होती हैं। कथ्य के साथ-साथ शिल्प भी वैविध्यपूर्ण होता है। भाषा की सामासिकता एवं संकेतात्मकता का प्रयोग करने से ये लघु कविताएँ पाठकों पर अपना अनूठा प्रभाव छोड़ती हैं। मिश्र जी की लघु कविताओं में संक्षिप्तता, समग्रता, एकाग्रता के साथ-साथ चिन्तन और भाषा का अद्भुत प्रयोग है। डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ कहते हैं कि अपनी कविता-यात्रा के इस दौर में मिश्र जी की कविताएँ आकार में लघु किन्तु अर्थ गौरव से सम्पन्न और प्रभाव में पर्याप्त मारक हो चली हैं।[3]

इस दृष्टि से मिश्र जी के विभिन्न कविता-संग्रह और उनमें संकलित लघु कविताएँ उल्लेखनीय हैं जो निम्नवत् हैं -

1. पक गई धूप - यात्राएँ, भाग्यशाली, भाषा का मौन, समय, जलसा : नौ कविताएँ, पतझर की दोपहर, ग्रीष्म दोपहरी : छः कविताएँ, आँगन से द्वार तक ताल। **2. कंधे बेनाम चिट्ठियाँ -** रात और सुबह, सहयात्री, ज्वार, नावें और किनारे, निशान, सीमा रेखा, विस्तार। **3. कंधे पर सूरज -** खो गई सब यात्राएँ साथ की, अस्तित्त्व-बोध, सार्वभौम बोध, मृत्युबोध,

वसंत, कोई ऋतु आई, सहयात्रा, घूमती कुर्सी, तीन सुअर, जोकरों की दुनिया, आजकल, शीशा, जनतंत्र, अलविदा, साहचर्य की यातना, शहर में सवेरा, देश, झंडे, वसंत का दिन, रचना, सुबह, कहाँ मेरी जेब, मौसम, अप्रतीक्षा, रचना और आलोचना। **4. दिन एक नदी बन गया-** नदी बहती है, कलम, पता, मौसम, घरौंदे, वह, सेमल, चूहे, इंतजार, अस्पताल, दर्पण : दो कविताएँ, धूल, दिन, रात, कुहरा, लोग, रोशनी, कल्पवृक्ष, मार्ग, दर्द, पक्षी और जंगल, उड़ो बगुलो, व्यापारी, समय (1) समय (2) अपना रास्ता, रात भर बारिश, मुहावरे, पेड़, परिणति।

5. जुलूस कहाँ जा रहा है - चिड़िया, पत्थर, धूप, सरोवर, फूल, पाँच कविताएं, बिल्ली रानी, बसंत, नई शताब्दी, हाथ, इस वक्त, नेता : तीन कविताएँ बहाना, सौंदर्य-बोध, नदी एक कविता, चट्टान और बिरवा, हस्ताक्षर। **6. आग कुछ नहीं बोलती -** संवाद, कंकड़ी, झरबेरी, घर, गली, तलाश। **7. बारिश में भीगते बच्चे -** शब्द, अपरिचय। **8. ऐसे में जब कभी -** बात, प्रतीक्षा, कहाँ-कहाँ, एक दिन और इंतजार, डाकिया, पुरानी चिट्ठियाँ, सवाल, इच्छा, प्यार। **9. आम के पत्ते -** पता नहीं, नंगे, हँसती रहने वाली कविता से, कला, उत्तर।

मिश्र जी की यहाँ कुछ प्रसिद्ध और विशिष्ट कविताओं के उदाहरणों द्वारा उनकी लघु कविताओं का विश्लेषण प्रस्तुत है --

'हमेशा आकाश से झरती है एक नदी/ और हमेशा ऊपर ही ऊपर कोई पी लेता है। धरती प्यासी की प्यासी रहती है/ और कहने को आकाश से नदी बहती है।[4]' (नदी बहती है) । *'हर चौराहे पर/दुर्घटना ग्रस्त होकर तड़प रहा है एक देश। और हम/ डाक्टर के बदले/ पुलिस का इंतजार कर रहे हैं।[5]* *(इंतजार)*। 'नदी बहती है' कविता में 'नदी', 'धरती' और 'आकाश' प्रतीकात्मक शब्द हैं। दूसरी पंक्ति में प्रयुक्त 'कोई' शब्द में विशिष्ट व्यंजना है। चार पंक्तियों की इस कविता में सत्ता पक्ष की ओर से घोषित सुख-सुविधाओं एवं लाभ को केवल एक विशिष्ट वर्ग ही भोग लेता है। आम जनता सदैव, उससे वंचित रहती है। यहाँ 'आकाश' को 'उच्च व सम्पन्न वर्ग', 'धरती' को 'आम जनता' व 'नदी' को 'सुख-सुविधाओं' का प्रतीक माना है। 'कोई' शब्द सत्ताधीशों से लाभान्वित होने वाले व्यक्ति का प्रतीक है। 'इंतजार' पाँच पंक्तियों की कविता है। इसमें मिश्र जी ने व्यंजना के माध्यम से देश की व्यवस्था एवं देशवासियों की मानसिकता पर व्यंग्य किया है जो दुर्घटना के बाद चिकित्सा प्रदान करने के स्थान पर पुलिस की प्रतीक्षा करते रहते हैं। समाज-बोध की व्यंग्यात्मक प्रस्तुति ने उक्त कविता को अत्यन्त प्रभावी बना दिया है।

'उदास खड़े हैं कब से/ पिछली आँधी में टूटे हुए पेड़/नये पत्तों की प्रतीक्षा में/और नया मौसम/जोर शोर से अभी इसी बात पर बहस कर रहा है/कि आँधी के खिलाफ/कौन-कौन से अभियोग लगाये जायें।[6] सात पंक्तियों की इस कविता 'पेड़' में 'आँधी', 'टूटे हुए पेड़', 'नये पत्ते', 'नया मौसम' आदि प्रतीकात्मक शब्द हैं। इन प्रतीकों के माध्यम से मिश्र जी ने यह बतलाने का प्रयास किया है कि किसी भी पार्टी का शासन क्यों न हो, आम व्यक्ति की नियति अभिशप्त ही रहती है। आम आदमी नई सरकार के प्रति आशान्वित होता है किन्तु नई सरकार आम आदमी के लिए कुछ न करके पिछली सरकार पर अभियोग लगाने में व्यस्त है।

'कितना बड़ा दर्द है/भीतर से एक महाभारत गुजरा हो। और कुछ कहा न जाये/ चारों ओर शोर मच रहा हो/ और अपनी जय के समय भी मौन रहा जाय।[7] 'दर्द' कविता में मिश्र जी ने समकालीन व्यवस्था की विडंबनामूलक स्थितियों पर प्रहार करते हुए, स्वयं के स्तर पर उसे भोगने की अनिवार्यता का चित्रण किया है। भीतर से महाभारत के गुजरने की क्रिया और जय के क्षणों में मौन रहने की विडंबना द्वारा कवि ने विराट् परिदृश्य में घटित घटना-बिम्बों

के माध्यम से मानव की नियति का चित्रण किया है जो वर्तमान व्यवस्था को भोगने के लिए अभिशप्त है।

'कंधे पर सूरज' में संकलित लघु कविता 'बसंत' समसामयिक परिस्थितियों के खौफ का चित्रण करती है। यहाँ मिश्र जी ने सन्नाटे और आतंक के कारण उत्पन्न संवादहीनता की स्थिति का सटीक चित्रण किया है। डॉ. पाण्डेय शशिभूषण शीतांशु ने इस लघु कविता के संदर्भ में कहा है 'कविता का मंतव्य सन्नाटा छाँटना है लेकिन विडंबना यह है कि पूरा संदर्भ सन्नाटे से सहम जाता है।'[8] 'बसंत' कविता में कोयल इतनी भयाक्रांत है कि स्वयं तो भूल ही चुकी है पर यदि कवि भी उसे सन्नाटा भंग करने के लिए गाना सुनाना चाहता है तो वह उड़ जाती है। उसके उड़ जाने के पश्चात् परिदृश्य में व्याप्त सन्नाटा और सघन हो उठता है और भयाक्रांत सन्नाटे की यह सघनता ही 'बसंत' कविता की सफलता है।

इसी संग्रह में संकलित आठ पंक्तियों की लघु कविता 'खो गई सब यात्राएँ साथ की' पहली बार में अतीत की विस्मृति का सन्दर्भ हमारे सामने रखती है। यहाँ जीवन की अनगिनत विडंबनाओं को प्रतीकों एवं बिम्बों के माध्यम से इस प्रकार चित्रित किया गया है कि कवि की सामर्थ्य पर आश्चर्य होता है। कविता की तीसरी पंक्ति 'सुबह टूटी पड़ी है निःशब्द हो' जीवन की निराशा एवं उदासी की चरम सीमा को व्यक्त करती है। पूरी कविता में 'अपने से कटी हाँफती शाम', 'आँधी के बीच टूटे पंख-सी', 'छोड़ सूखे तट नदी-सा दिन' आदि प्रयोगों के द्वारा कवि अनुरागात्मक या भावनात्मक जड़ों से विलग होने के दंश को व्यक्त कर रहा है। स्पष्ट है कि मिश्र जी की यह लघु कविता अन्तर्मन की अनेक उदासीन दशाओं का अत्यन्त सफलता से चित्रण करती है और इस चित्रण को मौलिक उपमानों के प्रयोग द्वारा वे अत्यन्त प्रभावी बना देते हैं। 'कंकड़ी', 'बसंत', 'पत्थर', 'चिड़िया' आदि कविताओं के द्वारा मिश्र जी ने समकालीन अमानवीकरण को मूर्त करने के साथ-साथ युगीन जीवन के बड़े और महत्त्वपूर्ण सत्यों को भी अभिव्यक्त किया है।

'दिन एक नदी बन गया' संग्रह में मात्र पाँच पंक्तियों की एक कविता है 'पता'। इस कविता में प्रतीकों के माध्यम से समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार के बीच जिन्दगी जीने वाले सही व्यक्ति का चित्रण है --

'चारों ओर काँटों का जंगल है/और भीतर कहीं/ एक डरी हुई लता है/ जाओ, चले जाओ/ यही उसके घर का पता है।'[9] 'दिन एक नदी बन गया' की लघु कविताओं के विषय में डॉ. फूलबदन यादव ने कहा है -- 'दिन एक नदी बन गया' की छोटी कविताओं को पढ़ने से यह ज्ञात होता है कि कवि की यथार्थ पर पकड़, सघन अनुभूतियों एवं गतिशील कल्पनाओं का संयोग पाकर अधिक प्रभविष्णु बनती गई है। परिवेश का यथार्थ प्रतीकात्मक बिम्बों में व्यक्त होता है।' मिश्र जी परिवेशगत अनुभवों को ही कविता का सेतु मानते हैं। सामाजिक एवं राजनीतिक विसंगतियों से उत्पन्न अनुभव लघु कविताओं से व्यंग्यात्मक विधान के माध्यम से उभरकर आये हैं और उनकी अभिव्यक्ति अत्यन्त सशक्त बन पड़ी है।

'चिड़िया उड़ती हुई कहीं से आयी/ बहुत देर तक इधर-उधर भटकती हुई/ अपना घोंसला खोजती रही/ फिर थक कर एक जली हुई डाल पर बैठ गई/ और सोचने लगी/ आज जंगल में कोई आदमी आया था।'[10] छः पंक्तियों की यह कविता 'चिड़िया' मानवीय क्रूरता का सजीव उदाहरण प्रस्तुत करती है। 'आज जंगल में कोई आदमी आया था' पंक्ति समकालीन यथार्थ की संश्लिष्ट पहचान कराने में पूर्णतः सक्षम है। 'जली हुई डाल' शब्दों में गहरी व्यंजना निहित है जो जलते हुए समय की भयावहता को विभिन्न कोणों से रूपायित करती है। 'सवाल' मिश्र जी की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कविता है जिसमें महत्त्वाकांक्षी व्यक्तियों का सटीक बिम्ब निर्मित हुआ है -- *'लोग लोगों की सीढ़ियाँ बनाकर/ चढ़ते रहे, ऊपर-ऊपर और ऊपर/ वे इसी तरह*

अनवरत/ एक से एक कमाल करते रहे/ और हम जीवन भर कुछ भी नहीं कर सके/ केवल अपने से सवाल करते रहे।"[11] कविता की पहली पंक्ति में निहित प्रतीकात्मकता अत्यन्त प्रभावी है। यहाँ 'सीढ़ियाँ' बने लोगों की विडंबनापरक नियति का चित्रण है और सीढ़ियों पर चढ़कर ऊपर पहुँच कर 'कमाल' करने वाले व्यक्तियों की सफलता का निरूपण है। कविता की अन्तिम पंक्ति 'केवल अपने से सवाल करते रहे' में सीधे-सादे, संतोषी प्रवृत्ति की मानसिकता वाले व्यक्ति का चित्रण है जो स्वार्थ की पूर्ति हेतु किसी का शोषण नहीं करता। अत्यन्त सहज रूप में यह कविता अवसरवादी लोगों पर व्यंग्यात्मक प्रहार करती है।

'चारों ओर का जाल समेट कर/ अगाध बने/ अपनी गहरी चुप्पियों में डूबे सरोवर/ तुम एकाएक थर्रा क्यों उठे?/ मैंने तो एक छोटी-सी कंकड़ी फेंकी थी।'[12] यहाँ कवि ने 'सरोवर' व 'कंकड़ी' जैसे बिम्बात्मक प्रतीकों द्वारा अपने अभिप्रेत को स्पष्ट किया है। यहाँ सरोवर जल का प्रतीक न होकर संचित पूँजी का प्रतीक है जिसे एक अचानक गिरने वाली कंकड़ी थर्रा देती है। यह कंकड़ी परिवर्तन का या हलके से विरोध का संकेत है। सरोवर में जल का सिमटा हुआ स्वरूप और कंकड़ी फेंके जाने पर उसका थर्रा उठना दृश्य बिम्ब को प्रस्तुत करता है और इनके माध्यम से अभिव्यक्त होने वाला अर्थ प्रतीकार्थ है।

'दिन एक नदी बन गया' संग्रह की 'चूहे' कविता में चूहे षडयंत्र के प्रतीक हैं। पूँजीपतियों के प्रतीक ये चूहे साहित्य, ज्ञान और प्रतिभा को निरंतर कुतरते रहते हैं। 'अस्पताल' मात्र तीन पंक्तियों की कविता है जो मानवीय पतन पर चिंता व्यक्त करती है-

'डॉक्टर हड़ताल पर है/
और पुलिस ड्यूटी पर/
देखिये, इस अस्पताल का क्या होता है"[13]

मानव-स्वास्थ्य के स्थान पर भय और आतंक का वातावरण तैयार करने की मानसिकता को उजागर करती यह कविता मिश्र जी की प्रखर दृष्टि की परिचायक है जो सामाजिक विसंगतियों को अनाक्रोशी मुद्रा में इतने पैने ढंग से व्यक्त करती है। 'धूल' अत्यन्त अर्थपूर्ण लघु कविता है। प्रतीकात्मक रूप में इस कविता में अस्तित्व की सुरक्षा के प्रति संघर्ष की आवश्यकता पर बल दिया गया है। मिश्र जी ने यहाँ क्रांति की चेतना के लिए धूल से प्रेरणा लेने की सीख दी है। धूल अनावश्यक शोषण सहन नहीं करती। वह कुचले जाते समय बड़ी तेजी से ऊपर उठने का प्रयास करती है। 'दूर तक पीछा करती है मुधमक्खियों की तरह' पंक्ति में मधुमक्खी के सादृश्य द्वारा मिश्र जी ने धूल के प्रतिशोधपूर्ण चरित्र को रूपायित कर कविता की संरचना में कसावट ला दी है। 'रात' कविता स्फूर्तिदायक एवं उत्साह प्रदान करने वाली कविता है। आकार में लघु होते हुए भी 'रात रोशनी की चाह है' तथा 'अपनी आँखें खुली रखें ' पंक्ति के माध्यम से मिश्र जी ने कविता को जो विशिष्ट अन्विति प्रदान की है, वह अद्भउत है। आँखें खुली रखें मुहावरे का प्रयोग अर्थ गौरव बढ़ाता है। 'लोग' कविता में वर्तमान व्यवस्था पर मारक व्यंग्य है। विशिष्ट अर्थ व्यंजना द्वारा आम आदमी की नियति का खुलाशा करती यह कविता पाठकों को चिंतन करने के लिए विवश करती है। 'पंचभूत', 'रोशनी', 'कल्पवृक्ष', 'धूप' आदि कविताओं में समग्र समकालीन स्थितियों का आकलन करते हुए मिश्र जी ने अपनी जनवादी भावनाओं को अभिव्यक्ति प्रदान की है।

यह कहने में कोई अतिशयोक्ति न होगी कि मिश्र जी की लघु कविताएँ बिम्बों, प्रतीकों व विशिष्ट व्यंजना द्वारा अत्यन्त प्रभविष्णु बन पड़ी हैं। इन कविताओं में कथ्य के साथ-साथ शिल्प में भी संवेदन की प्रधानता है। पर्याप्त वैविध्यपूर्ण विषयों के साथ-साथ भाषा की सामासिकता एवं संकेतात्मकता का प्रयोग करने के कारण ये कविताएँ पाठकों पर

अमिट प्रभाव छोड़ती हैं। मिश्र जी की लघु कविताओं से गुजरने के बाद यह निष्कर्ष निकलता है कि हर कविता की अपनी एक विशिष्ट लय और विशिष्ट मूड है। कहने का अभिप्राय यह है कि लघु कविताओं में एक भाव या एक विचार प्रस्तुत किया गया है जिसे कम से कम बिम्बों और प्रतीकों द्वारा पुष्ट किया गया है। कविता में प्रयुक्त बिम्ब और प्रतीक मुख्य भाव या विचार से जुड़े हुए हैं। लम्बी कविताओं की अपेक्षा लघु कविता में बिम्बों व प्रतीकों का प्रमुख स्थान है। उनकी छोटी कविताओं की संरचना में एक पंक्ति भी ऐसी नहीं है जो कविता का संतुलन बिगाड़ने में सहायक हो। हर लघु कविता की एक अलग ही कौंध है जो कविता के शीर्ष बिन्दू को पहचानते हुए उसके विशिष्ट अन्विति प्रदान करती है। अरविन्द कुमार त्रिपाठी ने मिश्र जी की छोटी कविताओं को ताप और गरिमा में काफी प्रभावशाली माना है।

मिश्र जी की लघु कविताओं का शिल्प प्रतीक बिम्ब, व्यंग्य और नाटकीयता से परिपूर्ण है। उनकी बिम्बधर्मी लघु कविताएँ अधिक सांकेतिक, सघन अर्थों से युक्त तथा सूक्ष्म स्तर पर यथार्थ से पहचान कराने वाली, दूर तक प्रहार करने वाली हैं। सामान्यतः लघु कविता के संदर्भ में यह कहा जाता है कि यथार्थ के द्वंद्वात्मक स्वरूप की जटिलताओं की समझ लघु कविताओं में नहीं होती। मिश्र जी की लघु कविताओं के साथ ऐसा नहीं है। वे यथार्थ के महत्त्वपूर्ण पक्षों की टकराहट को पहचान कर उनका विश्लेषण करती हैं तथा सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति हेतु रचनात्मक संघर्ष की सम्पूर्ण प्रक्रिया से गुजरती हैं और पाठकों को मूल संवेदना तक पहुँचाने में समर्थ होती हैं।

संदर्भ

1. अश्रेय काव्य की भाषा संरचना का अध्ययन - डॉ. निर्मला शर्मा, पृ. 125। **2.** रामदरश मिश्र : रचना समय - डॉ. वेद प्रकाश अमिताभ, पृ. 31। **3.** रामदरश मिश्र : रचना समय - डॉ. वेद प्रकाश अमिताभ, पृ. 96। **4.** रामदरश मिश्र रचनावाली, भाग -1, 'दिन एक नदी बन गया', पृ. 455। **5.** रामदरश मिश्र रचनावाली, भाग -1, 'दिन एक नदी बन गया', पृ. 471। **6.** रामदरश मिश्र रचनावाली, भाग -1, 'दिन एक नदी बन गया', पृ. 522। **7.** रामदरश मिश्र रचनावाली, भाग -1, 'दिन एक नदी बन गया', पृ. 502। **8.** रचनाकार रामदरश मिश्र : सं. डॉ. नित्यानन्द तिवारी, डॉ. ज्ञानचन्द गुप्त, पृ. 78-79। **9.** रामदरश मिश्र रचनावाली, भाग -1, 'दिन एक नदी बन गया', पृ. 457। **10.** रामदरश मिश्र रचनावाली, भाग -2, 'जुलूस कहाँ जा रहा है'- चिड़िया, पृ. 5। **11.** रामदरश मिश्र रचनावाली, भाग -2, 'जुलूस कहाँ जा रहा है'- सवाल, पृ. 435। **12.** रामदरश मिश्र रचनावाली, भाग -2, 'आग कुछ नहीं बोलती'- कंकड़ी, पृ. 111। **13.** रामदरश मिश्र रचनावाली, भाग -1, 'दिन एक नदी बन गया', अस्पताल, पृ. 472।

रीडर-हिन्दी विभाग,
आर.बी.डी. महिला स्नातकोत्तर
महाविद्यालय, बिजनौर (उ.प्र.)
292/10, 'शान्ति निकेतन', साहित्य विहार,
बिजनौर (उ.प्र.) - 246701
मो.-9719659317
ईमेल : drsavitamishra64@gmail.com

●

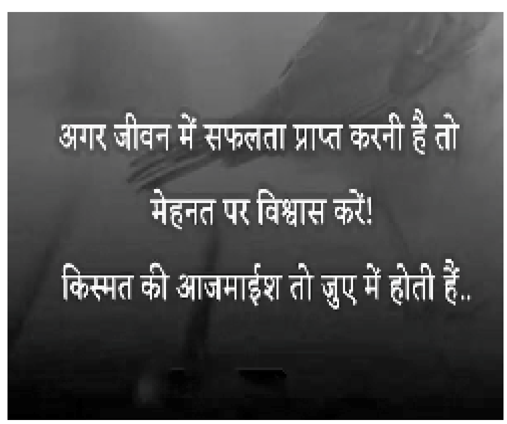

श्रीश्री ठाकुर अनुकूलचंद्र के वाङ्मय में नारी

कुमार गौरव मिश्रा

शोध सारांश : श्रीश्री ठाकुर अनुकूलचंद्र (14 सितंबर, 1888-27 जनवरी, 1969) अविभाजित बंगाल की भूमि पर अवतरित हुए एक आध्यात्मिक प्रणेता थे, जिन्होंने धार्मिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक आंदोलन द्वारा करोड़ों लोगों को जोड़ा एवं उनके जीवन को संवारा। उन्होंने पाँच बातों पर बल दिया-- ईष्टभृति (भगवान को भोग लगाना), यजन, याजन, स्वसत्यनी (सात्विक भोजन) और सदाचार। उन्होंने अपने दर्शन, विचार, मत, वाणी व साहित्य द्वारा लोगों को आकर्षित किया। उनके विपुल रचना संसार में जीवन के प्रत्येक पहलू पर प्रकाश डाला गया है। उन्होंने नारी से संबंधित भी अनेक विचार प्रस्तुत किए, जिसे 'नारी नीति', 'नारी पाथे', 'देवी सूक्त' एवं 'मातृ-मंगल' नामक पुस्तकों में संकलित किया गया है। उनकी रचनायें मूलतः बांग्ला भाषा में हैं, जिसे बाद में उनके अनुयायियों ने हिंदी एवं विभिन्न भाषाओं में अनुवाद करवाया। **बीज शब्द :** स्त्री, अनुवाद, अनूदित, बंग्ला, बंगाल, भाषा, रचना, शिक्षा, स्वास्थ्य, आहार, भोजन, प्रेम, सेवा, गुण, क्षुधा, पुष्ट, सुसंतान, सुप्रजनन, सुविवाह, सावधान, पुरुष, नर, स्त्री।

गोपाल कृष्ण गोखले की एक प्रसिद्ध उक्ति है : "बंगाल आज क्या सोचता है, भारत कल सोचता है।"[1] इस उक्ति के पीछे बंगाल का भव्य इतिहास है जिसके पन्नों में प्रबुद्ध व्यक्तियों, बुद्धिजीवियों, समाज सुधारकों, साहित्यकारों, कलाविदों, अर्थशास्त्रियों, वैज्ञानिकों, विचारकों, दार्शनिकों, स्वतंत्रता सेनानियों, साधु-संतों इत्यादि के नाम स्वर्णिम अक्षरों में अंकित हैं, जिन्होंने भारतीय जनमानस को समय-समय पर नई दशा व दिशा प्रदान की। भारत में नवजागरण भी सर्वप्रथम बंगाल में आया, तत्पश्चात् यह देश के दूसरे भागों में फैला। सुशोभन सरकार 'बांग्ला नवजागरण' में लिखती हैं-- "भारत की आधुनिक जागृति में बंगाल ने जो भूमिका निभायी उसकी तुलना यूरोपीय नवजागरण के परिप्रेक्ष्य में इटली से की जा सकती है।"[2]

भारत की धरती पर अनेकानेक साधु-संत-भक्त हुए हैं जिन्होंने अपनी वाणियों एवं विचारों से लोगों को उद्‌बोधित किया। बंगाल में भी साधु-संतों-भक्तों की एक लंबी सूची है। चैतन्य महाप्रभु, नित्यानंद प्रभु, लोकनाथ ब्रह्मचारी, हरिचंद ठाकुर, रामकृष्ण परमहंस, साधक व्यामक्ष्यप, श्रीश्री राम ठाकुर (रामचंद्र चक्रवर्ती), स्वामी विवेकानंद, स्वामी प्रभुपाद इत्यादि

संतों ने न केवल बंगाली व भारतीयों को, वरन् दूसरे कई अन्य देशों के लोगों को भी प्रभावित किया। इन्हीं संतों में एक संत श्रीश्री ठाकुर अनुकूलचंद्र हैं, जिनका जन्म 14 सितंबर, 1888 ई. को अविभाजित भारत के बंगाल राज्य के पबना जिले के हिमायतपुर में हुआ था, जो कालांतर में बांगलादेश के हिस्से में चला गया।

श्रीश्री ठाकुर अनुकूलचंद्र विभाजन से पहले देवघर चले आए और वहाँ सन् 1946 ई. में आध्यात्मिक संस्था की स्थापना की और अपनी शिक्षा, दर्शन, विचार व आध्यात्मिकता का प्रचार-प्रसार किया। श्रीश्री ठाकुर ने नाम-जप, ध्यान, ईष्टभृति, यजन, याजन, स्वसत्यनी व सदाचार पर जोर दिया व इसके माध्यम से लोगों को अध्यात्म से जोड़ा। उन्होंने कहा-- "अर्थ, मान, यश इत्यादि पाने की आशा में मुझे ठाकुर बनाकर भक्त मत बनो, सावधान होओ--ठगे जाओगे; तुम्हारा ठाकुरत्व न जागने पर कोई तुम्हारा केन्द्र भी नहीं, ठाकुर भी नहीं- धोखा देकर धोखे में पड़ोगे।"[3] इनके धर्म-समाज में योगदान को देखते हुए सन् 1987 में भारत सरकार ने इनके नाम से मेमो डाक टिकट भी जारी किया।

श्रीश्री ठाकुर की शिक्षा को विश्व पटल पर पहुँचाने में अनुवाद कार्य का योगदान अहम है। विभिन्न भाषाओं में उनकी अनूदित पुस्तकों ने पूर्वोत्तर से बाहर निकाल, उन्हें दूसरे क्षेत्रों व भाषा-भाषी लोगों के मध्य पहुँचाया, जिससे वे उनके दर्शन व विचार की ओर आकृष्ट हुए। इनके व इनके अनुयायियों द्वारा 100 से अधिक पुस्तकें लिखी गई हैं। उनके विचार एवं वाणियाँ इनमें संकलित हैं। मूलतः ये बांग्ला भाषा में हैं जिन्हें बाद में अन्य भाषाओं में अनुवाद कराया गया जिससे दूसरे भाषा-भाषी के लोग भी लाभान्वित हो सकें। वर्तमान में इनकी लगभग सभी पुस्तकों का अनुवाद हिंदी एवं अन्य भाषाओं जैसे अंग्रेज़ी, उड़िया, असमिया, संथाली, नेपाली, मराठी, तेलुगु, बोडो, गुजराती, तमिल, थार, मणिपुरी, मैथेली और मणिपुरी इत्यादि में उपलब्ध हैं। इनकी लिखी प्रमुख पुस्तकों में एवं इनके अनुयायियों द्वारा इनकी वाणियों का संकलन जिन पुस्तकों में किया गया है, उनमें 'सत्यानुसरण', 'अनुश्रुति', 'शाश्वती', 'पथेर कड़ी', 'पुरूषोत्तम', 'आलोचना प्रसंग', 'इस्लाम प्रसंग', 'अमेरिका-यात्रा', 'युगपुरूषोत्तम श्री श्री ठाकुर ने कहा एवं प्रेरक प्रसंग', 'नारी-नीति', 'उपासना' इत्यादि प्रमुख हैं।

जनमानस के अंतर्मन में उभरे नाना प्रकार से द्वंद्व एवं संशयों का निराकरण करने के दौरान श्रीश्री ठाकुर ने धर्म, समाज, अध्यात्म, पारलौकिकता, इहलौकिकता, सदाचार, नाम-जप व ध्यान इत्यादि के स्पष्टीकरण के साथ ही जीवन के विभिन्न चरणों में आहार-व्यवहार, सोच-विचार, साज-सज्जा इत्यादि कैसा हो, इस पर भी वृहद् रूप से प्रकाश डाला है। इसी संदर्भ में उन्होंने विशेषरूप से नारी को केंद्र में रख कर कुल चार पुस्तकें लिखीं- 'नारीनीति', 'देवी सूक्त', 'नारी पाथे' और 'मातृ मंगल'। इनमें से 'नारीनीति' की हिन्दी में अनुदित पुस्तक उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त, विभिन्न संवादों से उनके नारी संबंधी दर्शन व विचार दृष्टिगोचर होते हैं, जो अन्य पुस्तकों व पत्रिकाओं में संकलित हैं। 'नारीनीति' में श्रीश्री ठाकुर की कुल 180 वाणियों का अनूदित रूप काव्य में अनुवादक द्वारा प्रस्तुत किया गया है। अनुवादक श्रीरामनन्दन के अनुसार, "युगपुरुष तथा युगधर्म के मूर्त्तप्रतीक श्रीश्री ठाकुर अनुकूलचन्द्रजी की असंख्य वाणियों में नारी-समाज के विभिन्न पहलुओं जैसे-- कन्या, भगिनी, जाया, जननों एवं गृहिणी इत्यादि- पर जो उनके अमर सन्देश हैं उनका एक संकलन आज से तीस वर्ष पहले मूल बंगला भाषा में 'नारीर नीति' पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुआ, जिसकी एक प्रति प्रायः हर आदर्शनिष्ठ परिवार में निश्चय ही पायेंगे। यह पुस्तक क्या है मानो आज की दुनियाँ में समस्याओं से जर्जरित दिशाहीन नारी-जगत का एक दिक्दर्शक यन्त्र है।"[4]

नारी शिक्षा : श्रीश्री ठाकुर ने 'नारीनीति' नामक

इस अनूदित पुस्तक में नारी की शिक्षा पर अत्यधिक बल देते हुए कहा है कि उनकी शिक्षा व्यवस्था कुछ ऐसी होनी चाहिए जिससे वे अपनी सहज वृत्ति में सीखने को उत्सुक व ललायित रहें, जीवन में बिना किसी रुकावट के उन्नति की और अग्रसर हो सकें। इस प्रकार से शिक्षित करने पर ही वे जीवन और समाज में अहम योगदान दे सकेंगी और उनके द्वारा ग्रहण की गई शिक्षा सही मायने में सार्थक हो पाएगी--

"नारी को / शिक्षित करने के लिये /शिक्षा की धारा ऐसी होनी चाहिये--

जिससे/वे वैशिष्टय में वर्द्धनशील/उन्नति-प्रवण/और अव्याहत हों।"[5]

उन्होंने किसी विषय विशेष को सीखने की सहज प्रवृत्ति को शिक्षा प्रणाली में इतना महत्वपूर्ण माना है कि उसके विरुद्ध किसी बालिका को अवरुद्ध करने को, उसके जीवन को अवरुद्ध करने जैसा बताया है-

"वैशिष्ट्य का उल्लंघन कर/ शिक्षा की अवतारणा करना-

और,

जीवन को/ नपुंसक बनाना-/ एक ही बात है।"[6]

जिस महत्वपूर्ण पहलू को नई शिक्षा नीति, 2020 में अब शामिल किया गया है, वही बात उन्होंने बहुत पहले कह दी। नई शिक्षा नीति 2020 के तहत "बच्चे प्री-स्कूल में ही अपनी इंद्रियों और अपने कौशल को बेहतर ढंग से समझाने लगते हैं। इसके लिए, बच्चों को हंसी-मजाक में सीखने, खेल-खेल में सीखने, गतिविधियां करते हुए सीखने और खोजबीन आधारित ज्ञान हासिल करने के लिए स्कूलों और शिक्षकों को चाहिए कि वे बच्चों को उचित माहौल मुहैया कराएं। जैसे-जैसे बच्चा आगे बढ़ता है, उसमें अधिक से अधिक सीखने की ललक, वैज्ञानिक और तार्किक सोच, गणितीय सोच और वैज्ञानिक स्वभाव विकसित करना बहुत आवश्यक है। छात्रों को अपनी रुचि के अनुसार गतिविधियों, कार्यक्रमों, और परियोजनाओं में शामिल होना चाहिए। इससे बच्चे रचनात्मक तरीके से खुद को व्यक्त करना सीखते हैं। जो भी भाषा बच्चा आसानी से सीख सकता है, वही भाषा उसके सीखने की भाषा होनी चाहिए। इसी बात को ध्यान में रखते हुए, नई शिक्षा नीति में यह प्रस्तावित है कि प्रारंभिक शिक्षा ज्यादातर अन्य देशों की तरह मातृभाषा में होनी चाहिए।"[7]

अपनी स्वाभाविक रुचि के अनुसार विषय एवं संकाय के चुनाव को लेकर बॉलीवुड में भी कई फिल्में बन चुकी हैं। अभिनेता आमिर खान द्वारा अभिनीत फिल्म 'थ्री इडियट' इसे केंद्र में रख कर ही बनाई गई थी। श्रीश्री ठाकुर बहुत पहले ही भांप चुके थे कि हर बच्चे की रुचि अलग होती है और उसको रुचि के अनुसार शिक्षित करने पर ही वह जीवन में सफल हो सकता है। वे प्रेम व भक्ति से ओतप्रोत शिक्षा के पैरोकार हैं क्योंकि ऐसी शिक्षा ही जीवन और चरित्र को उज्ज्वल करती है

"प्रेम या/भक्ति से जो उद्‌भूत शिक्षा है--

वही/जीवन और चरित्र को रंजित कर सकती है।"[8]

नारीस्वास्थ्य : चूंकि श्रीश्री ठाकुर होम्योपैथिक चिकित्सक भी थे, अतः उनकी वाणियों में नारी के स्वास्थ्य संबंधी विवेचना व्यापक रूप में दृष्टिगत होती है। उन्होंने छोटे से छोटे बिंदुओं पर भी प्रकाश डाला है। उन्होंने स्त्रियों से आह्वान किया कि यदि वे स्फूर्तिमान रहना चाहती हैं तो भूख अथवा क्षुधा को कभी न दबायें। अर्थात् भूख लगने पर समय से भोजन करें क्योंकि भूख लगने के पश्चात् भोजन करने से ही वह शरीर के लिए पुष्टिवर्धक सिद्ध होता है। साथ ही, उन्होंने सुपाच्य भोजन ग्रहण करने की सलाह दी है जिससे जठराग्नि व क्षुधा जगी रहे--

"तुम्हारा आहार/ऐसा ही होना चाहिये-

जिसे/हजम कर/सहज में ही /तुम्हारी क्षुधा/जगा दे सकता हो;-/

और/

ऐसे हजम के फलस्वरूप/तुममें /उपयुक्त पुष्टि

ला दे।"[9]

भारतीय समाज में एक बहुत प्रसिद्ध कहावत है-- 'जैसा खाओ अन्न, वैसा हो मन।' आयुर्वेद भी इस बात की पुष्टि करता है। श्रीश्री ठाकुर ने अपने शब्दों में इसी बात को दोहराया है-

"आहार्य वस्तु / शरीर पर / जिस प्रकार क्रिया करती है-

मन की अवस्था भी / वैसी हो जाती है।"[10]

उन्होंने स्वास्थ्य व मन के संबंध एवं एक-दूसरे पर पड़ने वाले प्रभाव को बताते हुए मन को शुद्ध, सुस्वथ और सबल रखने की सलाह दी। नृत्य एवं गीत को स्त्री-पुरुष दोनों के लिए स्वास्थ्यवर्धक बताया है क्योंकि ये विनोदनकारी होते हैं। दिनचर्या में व्यक्तिगत स्वच्छता व सामुदायिक स्वच्छता कैसे बरतना है, इसे भी समझाया है। एक ही बर्तन में अनेक लोगों द्वारा आहार करने को वर्जित बताया है क्योंकि इससे अनेक रोग संक्रमित हो सकते हैं। बीमार अवस्था में जनसंपर्क में न आने की हिदायत दी है। उपयुक्त परिश्रम एवं व्यायाम को ज़रूरी बताया है जिससे पसीना निकल सके क्योंकि यह शरीर को पुष्ट करता है-

"उसी उद्देश्य से /उपयुक्त परिश्रम /कम से कम जब तक पसीना न निकले-

स्वास्थ्य के हित में/अमूल्य और अमृततुल्य है।"[11]

नारी के महान गुण : श्रीश्री ठाकुर ने नारी के महान गुणों में उनको अपने आदर्श से प्रेरित होना, सेवा में दक्ष होना, कार्य में निपुण होना, बातों में मधुरता व सहानुभूति दर्शाना और व्यवहार में सराहनीय होना बताया है। किंतु, साथ ही उन्होंने नारी को किसी प्रलोभन में आकर ऐसी सेवा करने से चेताया है जो जीवन दर्शन, आदर्श व नैतिकता का उल्लंघन करती हो और उन्हें कलंकित करते हो--

जो सेवा / तुम्हारे आदर्श को /अतिक्रम करती है /किन्तु प्रतिष्ठा नहीं करती, /वह शैतान का इशारा है!

प्रलुब्ध होकर--/ तमसा को /आलिंगन नहीं करो।"[12]

साथ ही, उन्होंने सेवा कर्म के दौरान इस बात का विशेष ध्यान रखने को कहा है कि कहीं किसी की अच्छाई करने में, किसी दूसरे का बिगाड़ न हो जाए--

"सावधान रहो-/किसी की भलाई करने में /दूसरे की भलाई को / विध्वस्त नहीं करो,

एक की सुख्याति करने में / दूसरे की अख्याति नहीं करो, /एक की सेवा करने में / दूसरे के प्रति दृष्टिहीन नहीं हो।"[13]

नारी एवं दांपत्य जीवन : श्रीश्री ठाकुर समाज की उन्नति के लिए सुसंतान की उत्पत्ति को महत्वपूर्ण मानते हैं। इसके लिए वे सुविवाह एवं सुप्रजनन को अपरिहार्य बताते हैं। वे स्त्रियों से वर का चुनाव सोच-समझ कर करने को कहते हैं। वे इसके लिए बहुआयामी दृष्टि अपनाने का सुझाव देते हुए कहते हैं--

"किन्तु जिन्हें स्वामी बनाना चाहती हो /उनके इष्ट, आयशर, वंश, वा, स्वास्थ्य / श्रद्धा, ज्ञान, इत्यादि।

तुम्हारे / काम्य, सहनीय, और वहनीय हैं या नहीं- / अवलोकन करो / एवं

मंगलाकांक्षी गुरुजन के साथ बातें करो/ प्राति में / भ्रांति / कम ही होगी।"[14]

वे पति के विपथगामी होने पर, स्त्रियों को अपने पतियों से सहानुभूति सहित वार्तालाप करके, परिणाम के गुण दोष की मीमांसा करने की युक्ति सुझाते हुए कहते हैं--

"सावधान, उसका बाधक न बनो/ आग्रह और यत्न सहित उसमें सहयोग देकर /अवस्था के आघात/

और प्रतिक्रिया पर लक्ष्य करके / सहानुभूति और वेदना सहित /वार्तालाप के जरिये /

उनके बोध और मीमांसा को सामने रखकर /तुष्टि और सन्तोष सहित /उन्हें लौटाओ।"[15]

नारी एवं लोकतांत्रिक परिवेश : भारतीय समाज में अर्धनारीश्वर की परिकल्पना रही है। शास्त्रों के अनुसार, गृहस्थी चलाने के लिए स्त्रियों को पुरुषों के बराबर माना गया है। श्रीश्री ठाकुर भी नारी को नर के समकक्ष रखते हैं और उसके मत का वही महत्व बताते हैं जो नर के मत की महत्ता है। वे लैंगिक समानता के पक्ष में खड़े दिखते हैं। प्रायः देखा जाता है घर के महत्वपूर्ण निर्णय पुरुष लेते हैं एवं स्त्री के मत के बारे में कोई पूछता तक नहीं है। श्रीश्री ठाकुर ने स्त्रियों को विनम्रतापूर्वक अपनी बात रखने की सलाह दी है और दूसरों के विचारों का भी आदर करने को कहा है-

"जो नारी / नत होकर / सम्मान सहित/ अपना मत प्रकाश करती है- एवं /

उस विषय में / किसी को भी / हीन नहीं बनाती, / वह- सहज ही/आदरणीया एवं पूजनीया होती है।"[16]

इनके अतिरिक्त, इस अनूदित पुस्तक में कौमार्य, धर्माचरण, प्रेम, लज्जा, संकोच, वाक् नियंत्रण, व्रत-नियम, सतीत्व, शुचिता, व्यय, शिल्पव्रत, स्वामीनिष्ठा, स्वधर्म, संभोग, संतोष, विधवा, माँ, पाप, परिश्रम, विद्रोह, पदस्खलन, निद्रा, नित्यकर्म, नम्यता, दुख, दोष, कामप्रवृत्ति, आत्मसुख, अभिमान, ईर्ष्या, आस्था इत्यादि अन्य नारी विषयों पर भी रोशनी डाली गई है। नीरी के जीवन पथ में चलने हेतु नित्य प्रयोजनीय यह ग्रंथ घर-संसार व दांपत्य जीवन को उश्रृंखल व मंगल पथानुवर्ती बनाने में पूर्णरूपेण समक्ष है।

निष्कर्ष : श्रीश्री ठाकुर अनुकूलचंद्र के नारी संबंधी हिन्दी में अनूदित वाड्.मय का अवलोकन करने पर, यह निष्कर्ष निकलता है कि 19वीं सदी के भारत में जब समाज रूढ़ियों में जकड़ा हुआ था और पितृसत्तात्मक मानसिकता हावी होने के कारण पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों के साथ दोयम स्तर का व्यवहार हो रहा था, उस समय उनके मुँह से उनके जीवन की उन्नति व वृद्धि एवं उनके संपूर्ण व्यक्तित्व के विकास के लिए अनेक वाणियाँ प्रस्फुटित हुई, जिससे संपूर्ण नारी जाति का जीवन सार्थक हो सके। यह उनकी वैज्ञानिक एवं प्रगतिशील सोच का परिचायक है। उन्होंने नारी जाति के जीवन के तमाम महत्वपूर्ण व गंभीर पक्षों पर, यथा-शिक्षा, स्वास्थ्य, प्रेम, विवाह, पति, ससुराल, संबंध, प्रजनन इत्यादि विषयों पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला एवं उनके द्वंद्व का निराकरण किया।

संदर्भ

1. https://www.lib.uchicago.edu.**2.** सुशोभन सरकार, बंगला नवजागरण, अनुवाद एस.एम. कानूनगो, ग्रंथ शिल्पी (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड दिल्ली, प्रथम हिंदी संस्करण, 1997, पृ.-03। **3.** अनुकूलचंद्र चक्रवर्ती, सत्यानुसरण, अनुवाद रामनन्दन प्रसाद, सत्संग पब्लिशिंग हाउस, अष्टादस संस्करण, 2011, पृ.-02। **4.** अनुकूलचंद्र चक्रवर्ती, नारीनीति, अनुवाद रामनन्दन प्रसाद, सत्संग पब्लिशिंग हाउस, सप्तम संस्करण, 2003, पृ.-03। **5.** वही, पृ.-10। **6.** वही, पृ.-11। **7.** https://www.plb.gov.in. **8.** अनुकूलचंद्र चक्रवर्ती, नारीनीति, अनुवाद रामनन्दन प्रसाद, सत्संग पब्लिशिंग हाउस, सप्तम संस्करण, 2003, पृ.-11। **9.** वहीं, पृ.-39। **10.** वही, पृ.-40। **11.** वही, पृ.-43। **12.** वही, पृ.-14। **13.** वही, पृ.-26। **14.** वही, पृ.-53। **15.** वही, पृ.-91। **16.** बही, पृ.-9,10।

शोधार्थी (हिन्दी विभाग)
जामिया मिल्लिया इस्लामिया
नई दिल्ली-110025
ईमेल : **ishrakumargaurav92@gmail.com**
मो. : 8587005252

●

सुरूर की शायरी में स्त्री की कमनीयता और गरिमा

डॉ. मोईनुद्दीन 'शाहीन'

दुर्गासहाय 'सुरूर' जहानाबादी बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी थे। उन्होंने अपनी रचनाओं से उर्दू साहित्य को समृद्धि प्रदान की है। जहाँ उन्होंने एक तरफ़ ग़ज़ल, क़सीदा, मर्सिया, नोहा, रूबाई, क़त्आ और दूसरी विधाओं में काव्य रचनाएँ प्रस्तुत कीं, वहीं दूसरी ओर इश्क़िया, रूमानी, मज़हबी, इस्लाही, नेचुरल, क़ौमी और वतनी नज़्में लिखकर अपनी अलग पहचान बनाई।

'सुरूर' को भारतीय संस्कृति पर बहुत नाज था। इसका प्रमाण उनकी अनेक कविताएं प्रदान करती हैं। उन्होंने समकालीन शायरों की तुलना में पुरज़ोर तरीके से महिलाओं के प्रति सम्मान का व्यवहार करने का आह्वान किया। इस संदर्भ में 'सुरूर' ने अनेक ऐसी कविताएँ लिखीं जिनमें स्त्री के प्रति उनकी श्रद्धा की भावनाएँ प्रकट हुई हैं। इस प्रकार की कविताएं यद्यपि उनके सभी काव्य संग्रहों में मिल जाती हैं, किन्तु 'नवा-ए-सुरूर' में सम्मिलित काव्य रचनाएं अपनी मिसाल आप होने का गौरव रखती हैं। इन कविताओं में 'नूरजहाँ के मज़ार पर', 'ज़न-ए-खुशखू', 'एक हसीना और जुगनु', 'पद्मिनी', 'सीता जी की गिरया-ओ-ज़ारी', 'रूठीरानी', 'उजड़ी हुई दुल्हन', 'लक्ष्मी जी', 'सती' और 'अदा-ए-शर्म' सरीखी कविताएँ सम्मिलि हैं। 'सुरूर' ने इन कविताओं में महिलाओं को सर्वगुण सम्पन्न आदर्श नारी के रूप में प्रस्तुत किया है।

इस सिलसिले में डॉ. हुकुमचन्द नैयर लिखते हैं : "....'सुरूर' को औरतों के जज़्बात औ अहसासात की तर्जुमानी करने पर पूरी क़ुदरत हासिल थी। उनका मुशाहिदा और नफ़शियाती मुताला बहुत वसीअ था। उनके यहाँ औरत के जज्बात और अहसासात की दिल नवाज़ तस्वीरें और गूनागूँ तफ़सीरें मिलती हैं। उनके यहाँ औरत रिवायती तस्व्वुरात के तहत सिर्फ जिन्सी ख्वाहिशात का मुजस्सिमा था एक मुक़द्दस देवी बनकर सामने नहीं आती। वह एक माँ, एक बीवी, एक मजलूमा और सितम रसीदा और सबसे बढ़कर एक औरत के रूप में सामने आती है।" प्रोफ़ेसर नैयर के उक्त मंतव्य को स्पष्ट करने हेतु 'सुरूर' के कलाम से अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं, किन्तु यहाँ कुछ बेहतरीन मिसाल पेश हैं।

तेरा देव स्थान देवी दिल के काशाने में है।
तेरी तस्वीर-ए-मुक़द्दस हर सनम ख़ाने में है।।
लक्ष्मी तू है ज़माने में उजाला है तेरा।
हर कँवल का फूल पानी में शिवाला है तिरा।।
सरस्वती का रूप है, दुर्गा के है अवतार तू।
नुत्क़-ओ-दानिश की है देवी मादर-ए-ग़मख़्वार तू।।
उफ़्ये सुन्दर छब तिरी ये सॉवरी सूरत तेरी।
दिल के मन्दिर की है ज़ीनत मोहिनी मूरत तेरी।।

'सुरूर' 'गंगा' शीर्षक के तहत लिखी अपनी कविता में गंगा नदी का वर्णन करते हैं तो ऐसा अनुभव होने लगता है गोया वे 'सिन्फ़-ए-नाज़ुक' अर्थात् ख़ूबसूरत महिला की शान में क़सीदा पढ़ रहे हों। यथाः -

ओ पाक बाज़ नाज़नीं, ओ फूलों के गहनों वाली।
सरसब्ज़ वादियों के दामन में बहने वाली।।
ओ नाज़आफ़रीं, ओ सिद्क़-ओ-सफ़ा की देवी।
ओ इफ़्फ़ते मुजस्सम पर्वत की रहने वाली।।
सल्लेअला ये तेरी मौजों का गुनगुनाना।
वहदत काये तराना, ओ चुप न रहने वाली।।
हुस्न-ए-ग़यूर तेरा है बेनियाज़ हस्ती।
तू बहर-ए-मआरिफ़त है ओ पाक बाज़ हस्ती।।

कहा जाता है कि 'सुरूर' पहले शायर हैं जिन्होंने अपने महबूब को औरत के रूप में प्रस्तुत किया। अन्यथा फ़ारसी की परम्परावादी शायरी से प्रभावित उर्दू शायरी में ऐसा नहीं हुआ। वहाँ शायर अपने महबूब (प्रेयसी) को पुरुष के रूप में प्रस्तुत करता रहा है जिसका अनुसरण लम्बे समय तक किया जाता रहा, किन्तु 'सुरूर' ने इस परम्परा को तोड़कर नए आयाम दिए।

इस बाबत प्रोफेसर हुकुमचन्द नैयर ने लिखा है कि :- "....'सुरूर' ने हुस्न और लवाज़िमात-ए-हुस्न का भरपूर मुशाहिदा किया है, और औरत के जिस्म--ओ-जमाल, रंग-ओ-रूप और आराइश-ओ-ज़ैबाइश को जिस तरह देखा है, बे कम-ओ-कास्त तस्वीर में पेश कर दिया है। यह औरत हिन्दुस्तान में पैदा हुई है, यहीं पली और बढ़ी है, इसके लवाजिमात-ए-हुस्न में चूड़ियाँ हैं, नौरत्न हैं, माँग की अफ़शाँ है जो तारों भरी अन्जुमन का समाँ दिखाती है। मशरिक़ी औरत शर्म-ओ-हया से आरास्ता है। ये ख़ुलूस-ओ-सदाक़त और ईसार-ओ-कुर्बानी का पुतला है। और यक़ीनन बेबाक इशवा तराज़ और ऊबाश जामुन वालियों, मालनों, महतरानियों और जंगल की शहज़ादियों से अफ़ज़ल है। ये हुस्न-ओ-जमाल और लताफ़त-ओ-जवानी का मुजस्सिमा है जिसके आगे फ़रिश्ते भी सर बा सुजूद हो जाते हैं। माद्दी हुस्न की जिस क़दर मुकम्मल तस्वीरें 'सुरूर' ने पेश की हैं, किसी ने आज तक नहीं पेश कीं।" प्रोफ़ेसर नैयर के उक्त कथन की सदाक़त (वास्तविकता) 'सुरूर' के इन अशआर से भी प्रकट होती है।

उल्झे-उल्झे बाल मस्ताना अदा मतवाली चाल,
तीखी चितवन गोरे-गोरे गाल छोटा सा दहन।
नन्हीं-नन्हीं उँगलियाँ पतली कमर, बूटा सा क़द,
इसमें सोने पर सुहागा जामा ज़ैबी की फ़बन।
गोरी-गोरी साक़ सीमीं प्यारी-प्यारी एड़ियाँ,
कद छरेरा, जिस्म साँचे में ढला नाज़ुक बदन।
छोटे-छोटे दाँत कलियाँ मोतियों की ख़ुशनुमा,
पतले-पतले नर्म-ओ-नाज़ुक होंठ बर्ग-ए यासमन।
गोरे-गोरे हाथों में थी धानी-धानी चूड़ियाँ,
प्यारे-प्यारे बाजुओं में हल्के-हल्के नौ रतन।
थे लब-ए-रंगीं में मिस्सी की अदाहत के निशाँ,
ऊदे ऊदे फ़ालसों का था शग़ुफता इक चमन।
रुख़ के अफ़शाँ का अजब आलम तग़टयुरख़ैज़ था,
दिन में आती थी नज़र तारों भरी इक अन्जुमन।
भीनी-भीनी बस में आती थी तन-ए-नाज़ुक की बू,
साना-ए-क़ुदरत ने संदल का बनाया था बदन।

उर्दू शायरी में सरापा निगारी अर्थात् 'नखशिख वर्णन' की कई मिसालें मिल जाती हैं, लेकिन 'सुरूर' का उक्त दिलकश अंदाज अनोखेपन की मिसालें पेश करता है। 'सुरूर' जब किसी फ़ितरी मंज़र (प्राकृतिक दृश्य) का ज़िक्र करते हैं तो वहाँ भी

'सिन्फ़-ए-नाजुक़' किसी न किसी रूप में जल्वानुमा होती है।

वो सत्ह-ए-आब वो मौजें वो जोश-ए-तुग़यानी,
वो आबशार वो झरने वो खुशनुमा पानी।
वो आफ़ताब की किरनों की जल्वा अफ़शानी,
वो ताइरान-ए-गुलिस्तान की ज़मज़मा ख़्वानी।
परीवशों का वो पंघट पे ज़ोक ज़ोक आना।
सुबु-ओ-दोश पे, पानी को भर के जाना।।

* * *

घूँघट उलट-उलट के रुख़-ए-नाज़नी से तू,
करती है छैड़ सिलसिला-ए-अम्बरीं से तू।
होने को हमकनार गुल-ओ-यासमी से तू,
चलती है बर्क़े इत्र में खुल्द-ए-बरीं से तू।
यूँ धीरे-धीरे आती है तारों की छाँव में।
मेहन्दी लगा के जैसे चले को पाँव में।।

सीता जी की गिरया-ओ-जारी' को 'सुरूर' की शाहकार (कालजयी) नज़्मों में शुमार किया जाता है। इस नज़्म में उन्होंने भारत की पतिव्रता नारी का आदर्श रूप दिखाया है। इस नज़्म का एक-एक शेर तासीर में डूबा हुआ प्रतीत होता है। यथा :-

हमराह अपने बन को मुझे नाथ ले चलो।
रेखा तुम्हारे चरनों की हूँ साथ ले चलो।।
नाज़ुक है मेरा शीशा-ए-दिल टूट जाएगा।
छूटा तुम्हारा साथ तो जी छूट जाएगा।।
क़िस्मत ने जब से बाप के घर से जुदा किया।
स्वामी मुझे न तुमने नज़र से जुदा किया।।
घर में जो छोड़ जाओगे सीता ग़रीब को।
पाओगे वन से आके न जीता ग़रीब को।।
शौहर बग़ैर क़ालिब-ए-बेजा है आह ज़न।
शम्म-ए-खमोश ख़ाना-ए-वीराँ है आह ज़न।।
कृपानिधान मुझको ना दो दुःख वियोग का।
प्राणों के प्राण, मुझको ना दो दुःख वियोग का।।

इसी प्रकार का भारतीय नारी का आदर्श रूप 'सुरूर' ने अपनी नज़्म 'सोज़-ए-बेवगी' में इस प्रकार प्रस्तुत किया है ;

अजब रिक्क़त भरी ऐ चारागर है दास्ताँ मेरी।
जिगर में चुटकियाँ लेती है रह-रहकर फ़ुग़ाँ मेरी।।
पसंद आईना आराइश तुझे ओ आस्माँ मेरी।
उतारीं बिन्दियाँ बेदर्द, तोड़ी चूड़ियाँ मेरी।।
फलक ने छीन लीं मुझसे शहाबी चुनरियाँ मेरी।
पहनती सुर्ख़ जोड़ा ऐसी क़िस्मत थी कहाँ मेरी।।
बहा जाता है दिल आँखों से ख़ून-ए-आरज़ू होकर।
ये रोना है रहेगी बेकसी या रब कहाँ मेरी।।

इस प्रकार की नज़्मों का अध्ययन करने के बाद हमें बाबा कृष्णगोपाल 'मग़मूम' के इस कथन से शत प्रतिशत सहमत होना पड़ता है :--

"…. औरतों के जज़्बात और उनके फ़ितरी औसाफ पर 'सुरूर' ने निहायत ग़ायर (गहरी) निगाह डाली है और इस सिन्फ़ में उन्हें ग़ैरमामूली काम्याबी हासिल हुई है। "पद्मिनी", "दमन और हंस", "सीता जी की गिरया-ओ-जारी", "ज़न-ए-ख़ुशख़ू", "अदा-ए-शर्म" वगैरह इस क़बील की नज़्में हैं ………… इस्लाह-ए- मआशरत (समाज सुधार) के मुत्आल्लिक (सम्बन्धित अगरचै 'सुरूर' ने बहुत कम कहा है ताहम बेवगी की रस्म से ख़ास तौर पर मुतआस्सिर (प्रभावित) हुए हैं। "सोज़-ए-बेवगी" (विधवा विलाप) और "हसरतभरी सदा" इस मौज़ू (विषय) पर निहायत दर्दअंगेज़ और रिक्क़त आमेज़ (कष्टदायी) नज्में हैं। ऐसे ख़ुश्क मज़ामीन में शाइराना क़ुदरत और दिलकशी पैदा करना 'सुरूर' का हिस्सा है।"

नतीजे (निष्कर्ष) के तौर पर हम कह सकते हैं कि कलाम-ए-सुरूर और ख़ास तौर पर उनके संग्रह "नवा-ए-सुरूर" के अध्यन से यह विदित होता है कि उन्होंने स्थान-स्थान पर मातृशक्ति को शत्-शत् नमन किया है।

(एसोसिएट प्रोफेसर- उर्दू)
सम्राट पृथ्वीराज चौहान राजकीय
महाविद्यालय, अजमेर
395-ए, आजाद नगर (कोटड़ा) अजमेर
(राजस्थान) 305001
मो.- 9351357872

कुमार कृष्ण की कविता में स्त्री

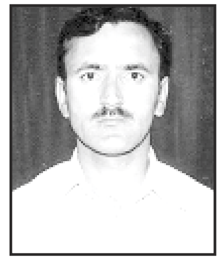

वीरेन्द्र सिंह

हिमाचल प्रदेश के सुंदर पहाड़ी परिवेश में जन्में व पले-बढ़े कवि कुमार कृष्ण के सद्य प्रकाशित दो कविता-संग्रह सामने आये हैं 'उम्मीद का पेड़' और 'पक्षी की चोंच के दाने में उड़ रहा है गाँव'। उनकी कविता में चित्रित स्त्री की सभ्य व शालीन तस्वीर को जब हम देखते हैं, तो पाठकों के मन में कई सवाल उठते हैं, मसलन क्या इस विषय में कवि रूढ़िवादी है? या क्या कवि ने यहाँ स्त्री का एकांगी चित्र प्रस्तुत किया है? एक साक्षात्कार में शरत के पूछे जाने पर कि कवि ने रोमांस के स्तर पर स्त्री का चित्रण क्यों नहीं किया? कुमार कृष्ण कहते हैं, 'रोमांस लोकगीतों तक ही अच्छा लगता है। 'गुनाहों का देवात', 'चित्रलेख और शरच्चन्द्रीय भावुकता का जमाना कभी का लद चुका है। मेरे लिए कविता लोकवेदन की अभिव्यक्ति तथा बेहतर दुनिया की तलाश के लिए सामाजिक संवाद है जिसका लक्ष्य लोकजागरण है, मनोरंजन नहीं।'[1] ऐसे में कोई यदि कवि को रूढ़िवादी कहे तो ऐसे व्यक्ति के संस्कार की जाँच करनी चाहिए क्योंकि जो भी हिमाचल जैसे पहाड़ी राज्य की संस्कृति से परिचित है, वह जानता है कि स्त्री की जो छवि कुमार कृष्ण की कविताओं में उभरती है, वह यहाँ के समाज-सापेक्ष ही है जिसकी परख का प्रयास यहाँ भी किया जा रहा है।

स्त्री हमारे जीवन में अनेक रूपों में आती है - बेटी, बहन, पत्नी, माता, दादी आदि। कुमार कृष्ण की दर्जनों ऐसी कविताएं हैं, जिनमें स्त्री के ये विविध रूप अपनी स्थानीयता के साथ आते हैं। 'पत्नी', 'पत्नी का मंदिर', 'पत्नी के लिए एक कविता', 'औरत और तवे की गुफ्तगू', 'लाल बादलों का घर', 'औरत और ईश्वर', 'साजिश', 'खूबसूरत लड़की', 'हरिपुरधार' आदि ऐसी कविताएँ हैं।

कुमार कृष्ण की कविता में स्त्री के उपर्युक्त विविध रूपों में से पत्नी का रूप सबसे अधिक उभर कर सामने आया है, इसमें कोई दोराय नहीं। एक बातचीत में इसका कारण पूछे जाने पर जयचंद की जिज्ञासा का शमन करते हुए कुमार कृष्ण कहते हैं, 'मुझे फिर-फिर लगता है कि पत्नी की पति के व्यक्तित्व-निर्माण में अहम भूमिका होती है। एक भारतीय पत्नी दीवारों को घर में बदलती है, परिवार के ताने-बाने को अपने विश्वासों और सपनों की खड्डी पर रात-दिन बुनते हुए उसमें कई तरह के रंग भरती है। एक भारतीय पत्नी पुरुष को एक मुकम्मल मनुष्य में बदल देती है। जैसे-जैसे समय बीतता जाता है, भाई-बहन, पिता-

पुत्र, रिश्ते-नाते सभी साथ छोड़ते जाते हैं। पुरुष के एकाकीपन में तब पत्नी ही पति की सबसे अच्छी दोस्त बनकर उसके जीवन को एक ताजगी, ऊर्जा, जीवंतता, नव्यता, स्फूर्ति, गति और शक्ति प्रदान करती है।'[2] कहने की आवश्यकता नहीं कि कवि को एक ऐसी ही स्त्री जीवनसंगिनी के रूप में मिलती है, इसिलए उनकी कविता में पत्नी का ऐसा रूप दिखायी देता है और स्त्री का पत्नी के रूप में यही चरित्र सबको काम्य भी होता है। पत्नी के रूप में उन्होंने स्त्री को 'पहली वेदना, पहली ममता, पहली गजल, पहला आँसू, पहली आस, पहला विश्वास, पहली-पहली आग' कहा है --

झूठ और नफरत से जंग लड़ती हुई / प्यार का पर्व मनाने वाली

छोटी-छोटी अंगुलियों का नाम है पत्नी

वह होठों से नहीं आँखों से हँसती है (पत्नी)[4]

कुमार कृष्ण की स्त्री पूरी कर्तव्यनिष्ठा और समर्पण भाव से अपनी गृहस्थी संभालती है, पति का सम्मान करती है, चाव से रसोई के सब कार्य करती है, बच्चों की परवरिश और उन्हें अच्छे संस्कार देती है, घर को करीने से सजाती है, अपने परिवार के लिए हर तरह मंगलकामना करती है। यह चित्र देखकर कवि को कोई रूढ़िवादी कहे तो कहे लेकिन यह सत्य है कि हिमाचल जैसी देवभूमि में यही स्त्री की सच्ची तस्वीर है और यहाँ की स्त्री को इस जीवन में ही आनंद भी आता है। कुल मिलाकर वह परिवार की नींव है और दिनकर की औशीनरी और प्रसाद की श्रद्धा के काफी करीब है, हालांकि बिल्कुल वही नहीं है -

उसने गुजारे हैं इन्हीं मन्त्रों की उम्मीद पर / बेशुमार तकलीफ भरे क्षण

किया है मुकाबला बच्चों की बीमारी में

पाला है इन्हीं मन्त्रों के विश्वास पर पूरा परिवार

उसका छोटा-सा मंदिर/बड़े-बड़े मंदिरों से भी बहुत बड़ा है। (पत्नी का मंदिर)

यहाँ यह भी गौरतलब है कि स्त्री की यह छवि आपको सहज ही नसीब नहीं होती, इसके लिए आपको स्त्री का सहपक्ष होना होगा। कवि की यह स्वीकारोक्ति कि 'रोटियाँ पकाने वाली औरत भूख का व्याकरण और प्यार की वर्णमाला उन से बेहतर जानती है' स्पष्ट संकेत करती है कि औरत का यह सौम्य रूप हमें तभी दिखाई देगा, जब हम उसे यथेष्ट सम्मान देंगे, उसकी इच्छाओं और भावनाओं की कद्र करेंगे। कवि के यहाँ पत्नी श्रद्धा और औशीनरी की तरह पति द्वारा प्रताड़ित अथवा उपेक्षित नहीं है। यहाँ स्त्री-समाज के प्रति आज के पुरुष के दायित्वबोध की ओर भी कवि ने संकेत किया है। एक स्त्री अपने सपनों को किसी अलमारी में कैद कर सारे परिवार की खुशियों का आँगन महकाती है, इसलिए उसके कैद सपनों को परवाज देना हमारा दायित्व है। 'लाल बादलों का घर' कविता में कवि ने पत्नी को 'तकिये के नीचे चाँद छुपाने की कला' में पारंगत बताया है। यहाँ 'चाँद' और 'बादल' दोनों ही ऐसे प्रतीक प्रयुक्त हुए हैं जिनमें बहुत संभावनाएँ विद्यमान हैं। एक ओर जहाँ स्त्री परिवार के लिए चाँद सदृश सुख, सुन्दरता और शान्ति को बचाए रखती है तो दूसरी ओर इस सबके लिए अपनी पहचान बादल की तरह उत्सर्ग करती है --

वह दौड़ती है सुबह से शाम तक/आग के जंगल में

सींचती है रोटी के पेड़

वह सींचती है लगातार तुलसी की जड़ें

बची रहे हरियाली इस धरती पर (लाल बादलों का घर)[4]

कुमार कृष्ण की कविता में स्त्री का अभिभावक रूप भी देखने को मिलता है जिसे हम नानी, दादी या परिवार की संरक्षक के रूप में देख सकते हैं। यह सही है कि भारतीय समाज में कोई पुरुष ही परिवार का मुखिया और संरक्षक होता है किंतु हमारे शिक्षाविद घर को बच्चे की पहली पाठशाला भी

कहते हैं और इस पाठशाला की सच्ची गुरु होती है स्त्री। एक स्त्री ही माँ, दादी, नानी के रूप में हमें तरह-तरह के संस्कार देती है और यह स्वीकार हमें कुमार कृष्ण की कविता में भी देखने को मिलता है --

उसी ने सिखाये थे मुझे वर्णमाला के अक्षर

हर रात को सुनाती थी छोटी अम्मा/राजा-रानी की अधूरी कहानी (औरत और ईश्वर)। कवि औरत को यहाँ 'धैर्य और धर्म की साक्षात् मूरत' के रूप में चित्रित करता है क्योंकि एक औरत अपने बच्चों और परिवार के लिए अपनी सब कामनाओं को होम करती है और अपने आप को देवत्व की ऊँचाई तक ले जाती है --

जब-जब डरता है आदमी/वह तब-तब ढूँढ़ता है ईश्वर

औरत करती है पैदा अपनी कोख से / कई-कई ईश्वर (औरत और ईश्वर)

किंतु इस त्याग का औरत को क्या फल देता है यह पुरुष-प्रधान जालिम जमाना? आज किसी भी घर की औरत को देखिये तो वह बेबस और लाचार है। बच्चों की खुशी की खातिर वह अपने दर्द को सीने में तब तक छुपाये रखती है जबतक स्थिति आपे से बाहर न जाये। प्रातः ब्रह्ममुहूर्त में उठकर घर के सारे कामकाज समयबद्ध पूरा करती है और सबको सुलाने के बाद देर रात फिर स्वयं सोती है और वह भी बिल्ली की नींद। जिन्दगी की दौड़धूप में बहुत कम लोग होते हैं जो मुड़कर एक बार पूछ भी लेते हैं कि माँ, तुमने खाना खाया? या तुम थक गयी हो तो मैं हाथ बँटाऊँ? दरअसल पुरुष प्रधान समाज की सोच ही ऐसी होती है जिसे कुमार कृष्ण के कवि ने सही समझा --

जितनी बार जाते रहे पिता हरिद्वार/ लाते रहे खुदवाकर उतनी ही बार

पीतल के, काँसे के लोटों पर अपना नाम

बर्तनों को चमकाते-चमकाते/माँ ने गुजार दी पूरी उम्र

छोटे से चम्मच पर भी नहीं खुदा/कभी माँ का नाम (साजिश)

और कवि की ईमानदारी देखिये कि वह स्वयं को भी इसी पुरुषवादी व्यवस्था का एक पुर्जा मानता है, जबकि यह सच है कि कैथलीघाट स्थित उनके पुराने आवास का नाम उनकी धर्मपत्नी के नाम पर 'सत्यप्रिया निवास' था (अद्‌भुत शिल्पकला का नमूना यह घर अब राष्ट्रीय उच्चमार्ग का हिस्सा हो चुका है)। लेकिन इन पंक्तियों में कवि समाज की एक सामान्य तस्वीर उकेरता है -

शामिल हूँ मैं भी कुछ हद तक/ पिता की परंपरा में

लिखता हूँ तरह-तरह की कविताएं /लगवाता हूँ अपने घर के दरवाजे पर

अपने और अपने बेटों के नाम की तख्ती (साजिश)

स्त्री इस पुरुषवादी समाज में हमेशा ही हाशिये पर और उपेक्षा का शिकार रही है। इसके लिए काफी हद तक हमारी पुरुषवादी व्यवस्था जिम्मेदार है, जिसकी ओर कवि ने 'औरत और तवे की गुफ्तगू' कविता में संकेत किया है --

बँट रहे थे जब इस धरती पर तमाम तरह के काम

सुन लिया मैंने भी गलती से उस गुफ्तगू को/ उसी दिन जान गया मैं/

तुम्हारे साथ होने वाली साजिश का सच/नहीं जलतीं तुम्हारी खूबसूरत उंगलियां/

गर एक भी औरत हुई होती शामिल/

उस दिन की बैठक में / वह तो पुरुषों की सभा थी/

कायदे-कानून बनाने वालों की सभा (औरत और तवे की गुफ्तगू)

इस प्रकार की व्यवस्था ने स्त्री-समाज के लिए अत्यंत विकट परिस्थितियाँ पैदा कर दी हैं। आज स्त्री अपना सबकुछ दाँव पर लगाकर भी बेसहारा और लाचार दिखाई देती है। उसके विरुद्ध अपराध

संस्कृति का बोलबाला है। सरे राह उसे शोहदों की फब्तियों का शिकार होना पड़ता है। न जाने ऐसे लम्पट क्यों भूल जाते हैं कि उनकी भी बहन, पत्नी, बेटी या माँ हैं। दिल्ली की 'निर्भया', शिमला की 'गुड़िया', उन्नाँव, हैदराबाद के साथ यह फेहरिस्त लम्बी होती जा रही है जिसमें स्त्री के विरुद्ध अमानुषिक जघन्य अपराध हुए हैं और वो भी उस धरती पर जहाँ नारी को पूजने के जुमले चलाये जाते हैं। रामायण में वह दृश्य आज के समाज पर भी एक करारा तमाचा है, जब सीता माता कहती है कि यहाँ स्त्री का सम्मान नहीं होता, इसलिए धरती माँ उन्हें शरण दे। आखिर लोगों की ऐसी विकृति मानसिकता क्यों हो गई है? क्या हमारे शाहजादों के संस्कारों में ही कहीं कमी तो नहीं? क्यों आज कोई स्त्री इस जमाने के अत्याचारों से बदहवास विलाप कर रही है और कोई उसकी चीख-पुकार नहीं सुन रहा? जकड़तंत्र से उसे कैसे मुक्ति मिल सकती है? इस पर विचार करते हुए कवि कहता है --

मैं तुम्हें देता हूँ एक बीज मंत्र - / तुम्हारी मुक्ति राम में नहीं लगाम तोड़ने में है

वह मंदिर की घंटियाँ बजाने में नहीं/ कंधे से कन्धा मिलाने में है

बहुत जी चुकी तुम दिल से

अब दिल और दिमाग दोनों से जीना सीखो (औरत और तवे की गुफ्तगू)

आज हमने स्त्री को संयम, त्याग, सहनशीलता, ममता, प्रेम की मूरत बना कर उसे बेचारा बना दिया है। महादेवी वर्मा ने भी कहा है कि जीने की कला के नाम पर स्त्री ने सिद्धांतों की भारी-भरकम गठरी अपने सिर पर लाद तो ली, किंतु उनका समुचित प्रयोग करना उसे कभी आया ही नहीं। एक ओर स्त्री अपने गुणों के सहारे देवत्व की उच्चता तक पहुँची तो दूसरी ओर पुरुष पशु की हद तक नीचे गिर गया। वह सबकी सलामती की दुआ मांगती रही पर कोई उसकी सलामती की दुआ नहीं मांगता। उसे चाँद छुपाने की कला तो आ गयी पर सूरज बनना नहीं आया इसलिए कवि का कहना सही है कि स्त्री को अब सिर्फ भावनाओं में बहकर ही नहीं बल्कि दिमाग से भी जीना होगा। इस दृष्टि से उनकी 'हरिपुरधार' शीर्षक से एक बेहद सशक्त कविता है जो देखने पर स्थानवाचक लगती है किंतु स्त्री-चिंतन ही इसमें गहरे संकेतित है। आज की परिस्थितियाँ जैसी हो गई हैं, स्त्री का अबला बनकर रहने से काम नहीं चलने वाला, इसलिए आवश्यकता पड़ने पर उसे रणचंडी रूप में भी आना होगा। कवि सख्त लहजे में कहता है-

दोस्तो - / जितनी बार मरेगी घुट-घुटकर कोई अबला

उतनी ही बार बनेगी वह भगियाणी देवी (हरिपुरधार)

हिमाचल प्रदेश के सिरमौर जिले के हरिपुरधार स्थान पर माता भगियाणी का मंदिर है जिसे शिमला जिले के लोग 'उलटी देवी' के नाम से जानते हैं। धारणा है कि यदि कोई किसी निर्बल और निर्दोष के साथ अन्याय करे तो अन्याय के शिकार लोग इस देवी को ऐसे पापियों के पीछे लगा देते हैं और फिर उस अन्यायी का उद्धार इस देवी के मंदिर में जाकर माफी मांगने से ही संभव होता है, इसलिए कुछ लोग इस देवी से ऐसे डरते हैं 'जैसे कोई मुजरिम पुलिस की पगड़ी से या जैसे लोग डरते हैं साँप के फन से।' इन्हीं प्रतीकार्थों के सहारे कवि ने इस माता के मंदिर को स्त्री-मुक्ति के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत करते हुए लिखा है --

हरिपुरधार है आस्थाओं का अस्पताल/ महाशक्ति का उत्तुंग शिखर

वह है नारी का सर्वोच्च सम्मान

किसी अबला के आक्रोश की आग है हरिपुरधा (हरिपुरधार)

आज के लोग येनकेनप्रकारेण सुख सुविधाओं के संग्रहण में लगे हैं। इस प्रक्रिया में न्याय-अन्याय, पाप-पुण्य का विचार ही भूल जाते हैं और जब दैवीय

प्रकोप से सुख-सविधाओं का महल ढहता दिखाई देता है तब अनिष्ट निवारण के लिए देवी माँ के मंदिर में भीगी बिल्ली बन सिर झुकाए चले आते हैं। वे अनिष्ट का कारण और निवारण धार्मिक क्रियाकर्म में ढूँढने लगते हैं जबकि वे जिस अन्याय की राह पर चले हैं, उसे बदलने का विचार भी नहीं करते। यहाँ समाज की कार्यशैली और धार्मिक आडम्बर दोनों पर ही व्यंग्य करते हुए कवि कहते हैं --

डरे हुए लोग खोजते हैं मंदिर के अंदर / भगियाणी देवी होने का सच

वे नहीं जानते - / भगियाणी देवी का सच मंदिर के अंदर नहीं

मंदिर के बाहर - / हर गाँव, हर घर में मिलेगा

उसके मिलने की / सबसे बड़ी संभावना है वहाँ

जहाँ अंदर से बंद रहते हैं दिन भर / घरों के दरवाजे

जहाँ से नहीं आती कभी किसी के /हँसने की, रोने की आवाज

जहाँ नहीं खनकती कभी चूड़ियाँ (हरिपुरधार)

कवि कुमार कृष्ण की कविता में स्त्री के प्रेयसी रूप की अनुपस्थिति का प्रश्न उठता रहा है और यह कुछ हद तक सही भी है जिसका उत्तर भी उन्होंने दिया है, हालांकि यह कहना ठीक नहीं होगा कि उन्होंने रोमांस के स्तर पर स्त्री को चित्रित नहीं किया लेकिन बहुत कम। इसका कारण यह हो सकता है कि स्त्री के विविध रूपों में यह रूप उनकी प्राथमिकताओं में या तो रहा ही नहीं या फिर उनके प्रतिमानों पर खरा नहीं उतरा। 'खूबसूरत लड़की' कविता में कवि ने स्त्री का यह रूप भी उभारा है किंतु लगता है कि वह स्त्री उनके प्रतिमानों में कभी फिट बैठी नहीं। वैसे भी आज की युवा पीढ़ी पर शहरी संस्कारों का मुलम्मा चढ़ चुका है जो तथाकथित सुंदर लोगों को पिज्जा, बर्गर, रेस्तरां, रेव पर्टियाँ आदि की संस्कृति में ढाल लेता है। ऐसे में देहाती संस्कारों वाला कोई युवक भावनाओं में बहकर किसी युवती पर आजकल के शहरातियों की तुलना में जब पानी की तरह पैसा नहीं बहाता तो आधुनिकता के रंग में रंगी आज की युवती भी अतिमहत्वाकांक्षी होकर उस पर दूर से केवल हँसती है जबकि ऐसे संवेदनहीन लोगों से आहत हो व्यक्ति कविता जैसी कला को अपना हमसफर बना लेता है-

मैंने तो उगाई थीं बेशुमार ककड़ियाँ

फिर भी नहीं आई वह खूबसूरत लड़की उन्हें चुराने

मेरी कविता का खेत आखिर पक गया / वह नहीं आई

मैं ढूँढता रहा उसे बहुत से घरों में / ढूँढता रहा अपने बच्चों की किताबों में

कहीं नहीं मिली मुझे वह खूबसूरत लड़की

एक दिन शहर की सड़क पार करते हुए / मैंने उसे अचानक देखा --

वह एक खूबसूरत तस्वीर से चुपचाप

पता नहीं क्यों हँस रही थी । (खूबसूरत लड़की)

कुमार कृष्ण के सम्पूर्ण कविता-संसार से गुजरते हुए एकबारगी लगता है कि उनके यहाँ स्त्री के सभी रूप नहीं उभर पाए हैं। उनकी कविता में स्त्री का पत्नी रूप सर्वत्र छाया है जबकि परिवार को संभालने वाली स्त्री भी चित्रित हुई है, लेकिन आज के आधुनिक समाज में जिस प्रकार स्त्री के लिए यह समय चुनौतीपूर्ण हो गया है, उसमें स्त्री ने भी समय के साथ अपनी भूमिका बदली है। आज वह सिर्फ पुरुष पर आश्रित होकर नहीं रहना चाहती बल्कि अत्मसम्मान की लड़ाई खुद लड़ना चाहती है। शायद ही कोई व्यवसाय ऐसा बचा हो जहाँ स्त्री अपनी भागीदारी सुनिश्चित नहीं कर रही है। रसोईघर, खेत-खलिहान से लेकर कार्यालय तक में आज उसकी गतिविधियों का विस्तार हुआ है। वह पुरुष की प्रेयसी भी है और कंधे से कन्धा मिलाकर चलने वाली जीवनसंगिनी भी। आवश्यकता पड़ने पर वह रणचंडी का रूप धर लेती है। इधर कुमार कृष्ण की

कविता में एक कामकाजी स्त्री, शहरी स्त्री, रोजगार के मेले में स्वयं को बेचने को मजबूर स्त्री का चित्र पूरी तरह से मुखरित नहीं हो पाया है यद्यपि इस ओर कवि ने संकेत भर अवश्य किये हैं, जब वे कहते हैं-

दोस्तो ! / जैसे एक नदी में होती है सैकड़ों नदियाँ

एक पहाड़ में होते हैं असंख्य आग के घर/ उसी तरह -

एक औरत में होती है अनगिनत निर्मला पुतुल

असंख्य तसलीमा नसरीन, दर्जनों कत्यायनियाँ

दुनिया को खूबसूरत बनाने के लिए / वह करती है पुरुष से प्यार

करती है होम अपनी तमाम इच्छाएएँ (औरत)

और इससे भी गहरे संकेत कवि अपनी कविता 'सपने सुखाती औरत की कविता' में करते हैं --

तुमने काते बेहद महीन धागे / बनाई एक लोई

छुपाना चाहा पूरी स्त्री को उस लोई में / जो थोड़ी राग में है थोड़ी आग में

थोड़ी खेत में है थोड़ी रेत में / थोड़ी कलम में है थोड़ी किताब में

थोड़ी घर में है थोड़ी डर में / थोड़ी चीख में है थोड़ी भीख में

थोड़ी प्यार में है थोड़ी हरिद्वार में

थोड़ी ररिवार में है थोड़ी सोमवार में (सपनें सुखाती औरत की कविता)

समग्रतः देखा जाये तो कवि ने स्त्री को सर्वांग अपनी कविता में शामिल करने की चेष्टा की है। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि उनकी कविता में स्त्री का प्रधान रूप पत्नी का ही है और फिर अन्य। उन्होंने स्त्री का समाज-सापेक्ष चित्र ही प्रस्तुत किया है, जिसमें न तो उनकी रूढ़िवादी सोच झलकती है और न ही स्त्री का एकांगी चित्र ही है। पत्नी का रूप सर्वांग मुखरित हुआ है जबकि अन्य रूप संकेतित हैं। पत्नी के रूप में उनकी स्त्री प्रसाद की 'श्रद्धा' और दिनकर की 'औशीनरी' के करीब तो है पर बिलुकल वैसी ही नहीं है। उनकी स्त्री अपने पति, परिवार और समाज में सम्मान पाती है, इसलिए राग ही राग लुटाती है। वह आधी नर में है और आधी नारायण में। उसमें राग भी है और आग भी बल्कि यूँ कहा जाये कि उनकी स्त्री में आग ही आग है, फिर भी इस समाज के लिए वह राग ही राग लुटाती है। यह सही है कि महानगरीय जीवन में ढली स्त्री यहाँ मुखरित नहीं हुई है और इसका कारण - एक तो यह कि कवि को स्त्री का ऐसा रूप कभी काम्य नहीं रहा और दूसरे यह कि महानगर की जैवनशैली की झलक भी हिमाचल प्रदेश जैसे पहाड़ी राज्य में अब तक दिखाई नहीं दी है। साहित्य में वही उकेरा जाता है जो या तो यथार्थ है या फिर आदर्श। यथार्थ में से भी वही अंश ले लिया जाता है जो कि समाज के लिए कल्याणकारी और काम्य है क्योंकि हम सत्यम् के साथ-साथ शिवम् और सुन्दरम् का आचरण भी करते हैं।

संदर्भ

1. शरत, 'शरत के प्रश्न कुमार कृष्ण के उत्तर', शरत (सं.), कुमार कृष्ण की कविता में ग्रामीण बोध। (नयी दिल्ली) प्रकाशन संस्थान, 2015, पृष्ठ- 214। **2.** जयचंद, 'कवि एवं आलोचक कुमार कृष्ण के साथ जयचंद की बातचीत', वही, पृष्ठ 205। **3.** कुमार कृष्ण, पक्षी की चोंच के दाने में उड़ रहा है गाँव (नयी दिल्ली, प्रकाशन संस्थान, 2019) पृष्ठ 29। **4.** कुमार कृष्ण, उम्मीद का पेड़ (नयी दिल्ली, प्रकाशन संस्थान, 2019) पृष्ठ 26।

सहायक आचार्य, हिंदी
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय
क्षेत्रीय केंद्र धर्मशाला, जिला कांगड़ा
हि.प्र.-176218
मो. : 8580758307
ईमेल : virender1singh0123@gmail.com

राजस्थानी लघु चित्रों में कृष्ण लीला व कत्थक नृत्य

डॉ.वन्दना चौबे

कला दिये की उस लौ के समान होती है, जो अपने प्रकाश पुंज से अपने काल की सभ्यता व संस्कृति को उजागर करती है। कला के द्वारा कलाकार अपनी भावनाओं और विचारों को व्यक्त करता है। चाहे वह चित्रकला हो या नृत्यकला कलाकारों ने इनमें मनोभावों की अतीव आकर्षक अभिव्यक्ति की है। कला और धर्म का बहुत घनिष्ट सम्बन्ध है। कला में 'श्रीकृष्ण' एक प्रधान देवरूप माने जाते हैं। भक्तों ने उनके परब्रह्म, सगुण रूप की उपासना की। सूर ने उन्हें 'लीला पुरुषोत्तम' के रूप में प्रतिष्ठित किया और कृष्ण के 'उदात्त' तथा 'मधुर' दोनों ही पक्षों का चित्रण कुशलता के साथ किया और उन्हें एक सम्पूर्ण व्यक्तित्व का रूप दिया। कृष्ण के बाल तथा किशोरावस्था की ब्रजलीलाओं तथा उनके समस्त क्रिया-कलापों का लीलामय स्वरूप में सूरदास द्वारा चित्रण अत्यन्त मनोहारी है।

मध्यकालीन कला का मूल प्रतिपाद्य कृष्ण की असंख्य सौन्दर्यमयी आध्यात्मिक एवं लौकिक लीलाओं का मनोहारी चित्रण करना है। कोई भी ऐसी कला नहीं जो कृष्ण की सौन्दर्यमयी लीला से प्रभावित न हुई हो। कई शताब्दियों तक चित्रकार, कवि, नर्तक तथा संगीतकारों को प्रेरणा प्रदान करने वाले श्रीकृष्ण को इसी कारण सोलह कलाओं का अवतार माना जाता है। श्रीकृष्ण की सभी लीलाएं भारतीय संस्कृति के विविध तत्वों का आधार हैं। मानव चेतना के उत्कर्ष एवं अभ्युदय से लेकर सृष्टि के प्रत्येक कण एवं उस कण में निहित स्पन्दन का मूल हेतु श्रीकृष्ण की ये स्निग्ध लीलाएं ही हैं।

'लीला' शब्द का सामान्य अर्थ है 'क्रीड़ा' अथवा खेल। लीला शब्द की व्युत्पत्ति है- 'लयनमेव ली लियं'-- 'लयनम् लाति इति लीला' अर्थात् 'ली' ही लय है। ली या 'लय' शब्द के अनेक अर्थ हैं-- संश्लेष, कार्य का कारण में प्रवेश, भाव अर्थात् चित्त की प्रथम विकृत्ति के मध्य स्थिति और काम, गीत, वाद्य और नृत्य का साम्य अर्थात् गीत, वाद्य और हस्त-पाद आदि के संचालन में क्रिया और काल की परस्पर समता तथा सत्व, रजस, और तमस इन तीन गुणों की परस्पर आवश्यकता व इनका एक दूसरे को अभिभूत कर लेना। लीला के व्युत्पत्ति परक अर्थग्रहण में लय के प्रायः इन सभी अर्थों को प्रकट करने वाली क्रिया या स्थिति को लीला कहा जाता है।

श्रीकृष्ण की लीला के दो रूप हैं-- ऐश्वर्यमय और प्रेममय। उनकी मथुरा और द्वारिका की लीला ऐश्वर्यमयी है, लेकिन वृन्दावन की लीला प्रेममयी है।[1] श्रीकृष्ण की मधुर रससिक्त लीलाओं के रसिक भक्तों के लिए वृन्दावन लीला ही सर्वोत्तम है, क्योंकि यही श्रीकृष्ण की सगुण साकार स्वरूप रसवत लीला का क्षेत्र है, जो भक्तों के लिए अनुभवगम्य अनुभूति का विषय है। इसी से श्रीकृष्ण की बाल तथा किशोरावस्था की समस्त क्रियाओं को नर्तकों ने अपने नृत्य का प्रमुख विषय बनाया। नृत्य द्वारा उनकी समस्त लीलाओं का बहुत ही रसपूर्ण ढंग से अभिनय किया जाता है जिसे देखकर दर्शक बहुत ही आनंदित होते हैं तथा कुछ क्षण के लिए उसी लोक में पहुँच जाते हैं, जहाँ उन्हें परमानन्द की प्राप्ति होती है। लीला शब्द की व्युत्पत्ति से इसी भाव का एक अन्य अर्थ भी उपलब्ध होता है 'जीवानां कैवलये लियं लाति इति लीला', मुक्ति अर्थात् जीवों का कैवल्य में लय सम्पादित करने वाली स्थिति परम् मुक्ति ही 'लीला' है।

कृष्ण की लीला का यही अर्थ है, प्रत्येक जीव का प्राकृतत्व नष्ट कर उन्हें अपने स्वरूप का दान प्रदान करना, अर्थात् अपने स्वरूप तथा लीला के द्वारा वे भक्तों के हृदय में आनंद स्वरूप को स्थापित कर देते हैं। इस प्रकार भक्तों को अपनी लीला द्वारा आनंदमय करके उनका पूर्ण उद्धार कर देना ही कृष्ण की प्रकृति है। कृष्ण की लीला का रस मुक्ति एवं युक्ति से कहीं अधिक आनन्ददायी है। सम्भवतः इसीलिए कृष्ण लीला में मग्न भक्त को जिस रस की अनुभूति होती है वह न तो ब्रह्मानंद है, और न ही ब्रह्मानंद सहोदर, वह तो 'लीला' रस है।[2]

यह रस हमें सर्वाधिक उनके लीलामयी नृत्य द्वारा प्राप्त होता है। ब्रज की रास परम्परा भारतीय कला की विराट चेतना का प्रत्यक्ष प्रमाण है। शास्त्रों के अनुसार कृष्ण ने गोपियों के साथ शरत्पूर्णिमा को रास नृत्य किया। रास नृत्य में निहित मूल भाव यही था कि 'ब्रह्म एक है और वह कण-कण में व्याप्त है, इस बात को सिद्ध करने के लिए ही कृष्ण ने प्रत्येक गोपिका के साथ नृत्य किया था। भगवान परमात्मा हैं, गोपिकाएँ आत्मा। परमात्मा के साथ अनेकों सम्बन्ध स्थापित कर जीवात्मा भगवत स्वरूप प्राप्त करती है। रास लीला भगवत् स्वरूप का रहस्य प्रकट करती है। शास्त्रीय नृत्य चाहे मणिपुरी हो, कत्थक हो, अथवा कथकली या ओड़िसी, कृष्ण के इस सम्पूर्ण आध्यात्मिक लीला रूप का प्रभाव सभी पर पड़ा।

रासलीला में कृष्ण की बचपन से लेकर सभी रूपों की विधिवत लीला भी की जाती है। रासलीला मुख्यतः तीन प्रकार की होती है। महारास, बसंतरास और कुंजरास। इनके अतिरिक्त गोष्ठरास व ऊखलरास भी विशेष अवसर पर होते हैं। महारास में "एक गोपी एक श्याम" भाव में लीन हो रास नृत्य होता है, इसकी कहानी आध्यात्मिक संकेतों और प्रतीकों की कहानी है। बसंतरास में कलात्मक अभिव्यंजना है। इसकी तीन भाव स्थितियां हैं-- बसंतोत्सव में अबीर का खेल, चन्द्रावली, कृष्ण प्रणयलीला, राधा की ईर्ष्या तथा मान भंग। कुंजरास में कृष्ण अभिसार के बाद कुंज में आराम करते हैं व रास-मग्न हो जाते हैं। नित्य रास में गोपियों के मिलन व प्रेम-क्रीड़ा का वर्णन है। गोष्ठरास में कृष्ण के बाल्यकाल का वर्णन है, जिसमें कंदुक-क्रीड़ा धेनुकासुर व बकासुर राक्षस का वध ही इसके मुख्य कथानक हैं। ऊखलरास में माखनचोर कृष्ण की लीला व ऊखल में बाँध देने का बड़ा ही मनोहारी वर्णन है। रासलीला के अतिरिक्त संकीर्तन में भी कृष्ण-राधा की गाथायें होती हैं। मणिपुर में अठारहवीं शती से वैष्णव विचारधारा के अन्तर्गत कृष्ण पर आधारित नृत्य लीलाएं होने लगी। मणिपुरी रासलीला में हिन्दी, संस्कृत, मणिपुरी, ब्रज, मैथिली, बंगाली भाषा के सूर, जयदेव, गोविन्ददास, चंडीदास जैसे कवियों के गीत छंद पर संगीतात्मक वातावरण में रास होता है।

वैष्णव धर्म के प्रचार से व चैतन्य महाप्रभु से प्रभावित ओड़ीसी नृत्यकारों ने कृष्ण भक्ति नृत्य को अपनाया, जिसमें केवल कृष्ण को ही पुरुष माना जाता है, बाकी भक्तजन गोपिकाओं के रूप में उनकी पूजा करते हैं। ग्यारहवीं शती में जयदेव की अमर काव्य रचना "गीत गोविन्द" ओड़ीसी नृत्य का प्रमुख आधार बनी। राजा के मंदिरों में "अष्टपदी" गाने और उस पर नृत्य करने का अधिकार था। जयदेव ने ही राधा का परिचय अपने गीतों के माध्यम से दिया। बाद में श्रीपाल सिंह, भक्त चरणदास बनमाली, दीनकृष्ण, कवि बलदेव रथ, राज कवि सम्राट उपेन्द्र भंज आदि कवियों ने राधा कृष्ण संबंधी पद लिखे जो भक्ति-श्रृंगार भाव से पूर्ण थे। उनमें राग-द्वेष-ईर्ष्या-स्नेह जैसे मनोभावों का भी चित्रण है। रास लीला की परम्परा भी उड़ीसा में है, जिसे पंचशिखा वैद्य ने चलाया था। सन् 1940-41 ई. में विजयमंडल-टूप गांव-गांव जाते थे, रास कीर्तन में गाकर नृत्य करते थे। लेकिन यह शास्त्रीय रूप में सामने नहीं आया।

उत्तर भारत के शास्त्रीय नृत्य कथक का उद्भव नटवर नागर कृष्ण की रास लीला से ही माना जाता है। इसलिए उसे "नटवरी नृत्य "भी कहा जाता है। रासलीला के अन्तर्गत श्रीकृष्ण की लीलाओं का विधिवत निरूपण होता है व उसके नृत्य अंग में कथक का प्राचीन रूप देखने को मिलता है। कथक अर्थात् कथावाचक मंदिरों में राधा कृष्ण व अनेक पौराणिक कथाओं को बड़े भावपूर्ण ढंग से व्याख्या करते रहे। मंदिरों के गीत में भावों की प्रधानता थी। कालांतर में हरिदास, सूरदास के पदों के साहित्यिक पुट से इस कला को निखार मिला। अष्टछाप के कवियों के प्रभाव व कृष्ण भक्ति परम्परा से प्रेरणा लेकर कथक आगे बढ़ा। कथक नृत्य में राधा कृष्ण पर आधारित ठुमरी, कवित्त, परणे व गतभाव-मटकी फोड़, माखन चोरी, छेड़छाड़, कालिया मर्दन, चीरहरण आदि भाव कृष्ण परम्परा को गति देते हैं।

केरल का साहित्य व कला वैष्णव भक्ति धारा से बहुत प्रभावित रहा है। इसलिए यहाँ की शास्त्रीय नृत्य विधा कथकलि में अन्य नृत्य विधाओं की तुलना में कृष्ण का बिल्कुल अलग पक्ष 'सर्वांगिक दैविक' चित्रण मिलता है। कथकली में कृष्ण दशावतारों में प्रस्तुत किये जाते हैं। सम्पूर्ण महाभारत भी रात-रात भर मंदिरों व रंगमंच पर प्रस्तुत किया जाता है। कृष्ण की वस्त्र सज्जा व चेहरे का मेकअप कथकलि में बिल्कुल अलग निर्धारित है। कृष्ण के सात्विक मेकअप में उसके मुखमण्डल को हरे रंग के मेकअप से उभारा जाता है जिसे 'पच्चा' कहते हैं। वह मुकुट व पंख से अलंकृत होता है जिसे 'मुडि' कहते हैं। कृष्ण नीले रंग का होता है, जिसे "कृष्णान्वर्ण" कहते हैं, नीचे लहंगेनुमा परिधान पीले रंग का होता है। कथकलि का उद्भव सबसे पहले "कृष्णाट्टम" के रूप में हुआ था। फिर "रामाट्टम" भी निर्मित किया गया। "कृष्णाट्टम" की कई बातें जयदेव की अमर रचना गीत गोविन्द से मिलती हैं। गीत गोविन्द में गूढ़ पद मधुरिमा व काव्य सौष्ठव बहुत ही श्रेष्ठ है, जिसके कारण संगीत नृत्य के क्षेत्र में उसने नई चेतना व प्राण फूंक दिये हैं।[3] अतः हम देखते हैं कि कृष्ण व उनकी लीलाएं समस्त शास्त्रीय नृत्य की प्राणाधार बिन्दु है, इसी कारण उन्हें नट-नागर, नृत्य बिहारी, रास-रासेश्वर आदि उपाधियों से विभूषित किया गया है।

नृत्य के साथ ही कृष्ण लीला चित्रकारों का भी प्रिय विषय रहा है। चित्रकारों ने दृश्यात्मक भाषा के द्वारा श्रीकृष्ण की लीलाओं को सरस एवं वैचित्र्यपूर्ण बनाया। राजस्थानी चित्रकला की प्रत्येक शैली श्रीकृष्ण के लीला स्वरूप को अपनी-अपनी मौलिक तूलिका द्वारा चित्रित करती है। परन्तु उनके चित्रण में श्रीकृष्ण का लीलाधारी रूप सर्वथा एक ही है।

नाथद्वारा का केन्द्र बिन्दु श्रीनाथजी नामक गोवर्धनधारी श्रीकृष्ण की मूर्ति है। यहाँ श्रीमद्भागवत के अनुरूप विविध कृष्ण लीलाओं को चित्रों में अंकित करने की प्रथा रही है। इनमें कृष्ण जन्म, ब्रज की बाल-लीला, गोचारण, दैत्यों का संहार, गोवर्धन

धारण, दानलीला, मानलीला, कालिया नाग एवं चीरहरण आदि विषयों के अनुरूप अधिक चित्रों का निर्माण हुआ। भगवान की प्रतिमा के पीछे की दीवार को सजाने के लिए कपड़े जिनसे पर्दे बनाए जाते हैं, उन्हें 'पिछ्वाइयाँ' कहते हैं। पिछ्वाइयाँ नाथद्वारा चित्रशैली की मौलिक देन है। ऐसी पिछ्वाइयाँ किसी अन्य शैली या कलम में इस रूप में देखने को नहीं मिलती हैं। ये पिछ्वाइयाँ अधिकतर श्रीनाथजी के उत्सवों के महत्व को चित्रित करने या कृष्ण लीला संबंधी किसी विषय को लेकर तैयार की जाती हैं। वल्लभ सम्प्रदाय के छोटे-बड़े सभी मंदिरों में मुख्यतः उत्सवों के अनुरूप हाथ कलम की पिछ्वाइयां धारण कराई जाती है। नाथद्वारा के चित्रकारों ने अपने कुशल हाथों की रचना माधुरी और हृदयस्पर्शी भावानुभूति एवं अनूठी प्रतिभा का परिचय देकर कला के लौकिक पक्ष के साथ अलौकिक पक्ष को भी बड़ी चतुराई से प्रस्तुत कर भक्तों के हृदय में श्रीकृष्ण की विभिन्न लीलाओं की सम्पूर्ण रूप से आध्यात्मिक व सौन्दर्य से परिपूर्ण छवि उपस्थित कर कृष्ण उपासना की नींव को दृढ़ बनाया। उनके चित्रों में लाल, नीले रंगों में चांदी जैसे रंगों का विलक्षण प्रयोग किया गया।

राजस्थान के मेवाड़ में उत्तर की ओर 68 मील की दूरी पर देवगढ़ के महलों- 'अजारा की ओबरी', 'मोती महल' आदि में भित्ति चित्रों के उदाहरण मिलते हैं, जिनमें कृष्ण लीला से सम्बन्धित चित्रण कार्य हुआ है।[4] बीकानेर शैली के निर्माण में औरंगजेब द्वारा निराश्रित चित्रकारों में शिल्पी रूक्नुद्दीन का नाम प्रमुख है। जिसने 'भागवत' और 'रसिकप्रिया' के सुन्दर दृष्टांत चित्र तैयार किए। राजा गजसिंह ने शाही महल के दरवाजों को कृष्ण विषयक लोक सम्बन्धी धार्मिक चित्रों से सज्जित करवाया।

किशनगढ़ शैली में वल्लभ सम्प्रदाय के चित्रों का चित्रांकन बहुतायत से हुआ है। इस समय में चित्रकारों ने राधाकृष्ण की लीलाओं पर अधिक चित्र बनाए जिनमें राधा माधव की प्रेम लीला, प्रिया प्रीतम मिलन तथा मान चित्रण ही रहा है।[5] इनके चित्रों में कृष्ण प्रेम और भक्ति के साथ-साथ रूप और सौन्दर्य का अदभुत समन्वय है।[6] श्रीकृष्ण की लीलाओं को लेकर कोटा शैली में जो चित्र बने हैं, वे पुष्टिमार्गीय भक्ति से ओत-प्रोत हैं। श्रीकृष्ण के जन्म के अवसर पर लहराती हुई यमुना नदी और आसमान पर घुमड़ती घटा के भयावह वातावरण के मध्य वसुदेव का श्रीकृष्ण को लेकर गोकुल पहुँचना। दशावतार की झांकियों के साथ ही श्रीकृष्ण की बाल लीलाओं के प्रेरक दृश्य, तिलक और टोपी लगाए ग्वाल-बालों की 'गोचारण' एवं अन्य क्रीड़ाओं यथा माखन लीला आदि का चित्रांकन कोटा के लघुचित्रों में अत्यन्त आकर्षक एवं समीचीन हुआ है। कोटा में स्थित हवेलियां श्रीकृष्ण आधारित विषयों से अलंकृत हैं। यहाँ राजमहल का निर्माण उम्मेदसिंह प्रथम (1665-1707) के समय में हुआ जिसमें सुसज्जित चित्रों के विषयों में कृष्ण-दरबार, कृष्ण-लीला, पूतना वध, कृष्ण झूले में, कृष्ण राधा तथा कृष्ण गोपियां आदि प्रमुख हैं। महाराज जालिम सिंह (1739-1761) द्वारा बनवाई गई हवेली में कृष्ण-राधा नदी के किनारे, राधा-कृष्ण (श्रीकृष्ण ऊपर के झरोके से झांकते हुए), 'श्रीनाथ जी की विविध झांकियां, गोवर्धन पर्वत को धारण किये भगवान कृष्ण, बांसुरी बजाते कृष्ण तथा रासलीला के साथ अन्य विषय भी चित्रित हैं। कोटा में ही सूर्य नारायण जी के मंदिर की समस्त छत के नीचे पट्टे पर भगवान कृष्ण की रासलीला अलंकृत है, जिसमें नीले रंग की प्रचुरता है। आमेर के राजा मानसिंह जी की छतरी के चित्रों में कृष्ण लीला विषयक 'कालिया दमन' में कृष्ण सर्प के ऊपर बांसुरी बजाते हुए अंकित हैं। इसी छतरी में कृष्ण को बांसुरी-वादन, कृष्ण बलराम, कल्कि, गोवर्धन धारण इत्यादि चित्रित हैं। आमेर के भित्ति चित्र मुख्यतः धार्मिक एवं पौराणिक विषयों पर आधारित हैं। वैष्णव धर्म को सर्वप्रमुख मान्यता यहाँ के चित्रों में दी गई है। सवाई जयसिंह द्वितीय (1692-99 ई.) के समय

में चित्रित चीरहरण नामक लघु चित्र इस शैली का एक प्रमुख उदाहरण है। इसी तरह 'रास मण्डल' तथा 'गोवर्धन धारण' नामक दो अत्यन्त सुन्दर तथा उत्तम चित्रकारी के नमूने जयपुर चित्र शैली के सर्वोत्तम उदाहरणों में गिने जाते हैं। महाराजा प्रताप सिंह के समय में विशाल आकार में भी कृष्ण आधारित चित्रण किया जिसमें 10 फीट लम्बाई व 6 फीट चौड़ाई लिए हुए चित्र में राधा कृष्ण की नृत्य मुद्रा में चित्रित एक चित्राकृति मुख्य है। ये जयपुर के बड़े संग्रह में से एक है।[7]

शेखावाटी में हजारों की संख्या में कृष्ण लीला से सम्बन्धित चित्र बने हैं, ये चित्र गढ़, महल, हवेलियों, मठ, मंदिर, कुएं, बावड़ियों आदि के बाहर-अंदर, ऊपर-नीचे चारों तरफ जहाँ एक भी कोना खाली न मिले ऐसी स्थिति में हैं, निश्चित ही ये चित्र कृष्ण लीलाओं से प्रेरित एक 'वैष्णव आन्दोलन' रहा।

गोवर्धन लीला- राजस्थान की लगभग सभी शैलियों में चित्रित की गई जिसमें श्रीकृष्ण द्वारा इन्द्र के कोप से ब्रजवासियों की सुरक्षा हेतु गोवर्धन पर्वत को धारण किए हुए दर्शाना प्रमुख प्रयोजन रहा। जयपुर के सिटी पैलेस के दो चित्र एक जयपुर के ही छतरी महल में अंकित भित्ति चित्र तथा किशनगढ़ शैली के एक चित्र (न्यूयार्क तथा भारत कला भवन, बनारस संग्रहालय में सुरक्षित हैं) गोवर्धन लीला अंकन के उत्तम उदाहरण हैं।

कलाकार अपनी प्रस्तुति के लिए कोई भी विधा अपनाता है तो उसका अत्यन्त सूक्ष्म व गहरा लगाव अपनी संवेदनाओं के साथ होता है जिसको वह किसी भी माध्यम से पूर्णता प्रदान करने का प्रयत्न करता है। नर्तक नृत्य द्वारा विभिन्न हाव-भाव एवं मुद्राओं द्वारा जीवंत अभिव्यक्तियां रंगमंच पर प्रस्तुत करता है, वहीं चित्रकार रंगों के माध्यम से नयनाभिराम चित्र प्रस्तुत करता है, दोनों ही कलाएं अभिव्यक्ति की अत्यन्त ही कोमल एवं संवेदनशील विधाएं हैं जो व्यक्ति के मन पर गहरा प्रभाव छोड़ती हैं-

कथक नृत्य में गोवर्धन धारण का प्रदर्शन नर्तकों का प्रिय विषय रहा है। नर्तक गतभाव तथा कवित्त द्वारा पूरे कथानक का भावपूर्ण प्रदर्शन करता है। इसमें एक पात्र की भूमिका समाप्त होने पर पल्टा लेकर दूसरे पात्र की भूमिका प्रारम्भ की जाती है, इसके लिए श्रृंगार व वेशभूषा बदलने की आवश्यकता नहीं पड़ती, पल्टा लेते ही दर्शक समझ जाते हैं कि नर्तक अब दूसरी भूमिका में प्रवेश करेगा। अतः कथक नृत्य में गोवर्धन लीला का कथानक गतभाव द्वारा इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है-- सर्वप्रथम ब्रजवासियों द्वारा इन्द्र की पूजा अर्चना करते देख किशोर कृष्ण ने पिता नंद से इसका हेतु पूछा, बाबा नंद ने बताया कि इन्द्र वर्षा के देवता हैं तथा उन्हीं के कारण धरती पर हरियाली, जल एवं खाद्य सामग्री की पैदावार होती है, तथा सभी जीव आनंद में रहते हैं। नंद का प्रत्युत्तर पाकर कृष्ण ने कहा हम वृक्षों के बीच निवास करते हैं, हम इन पर्वतों से ही जीविकोपार्जन के साधन प्राप्त करते हैं। अतः हमारे देवता यह पर्वत ही हैं। कृष्ण के उक्त वचनों का पालन करते हुए ब्रजवासी गोवर्धन पर्वत को देवस्वरूप मानकर उनकी आराधना करने जाते हैं-- गोकुल के सभी नर-नारी नंद के साथ सज-संवर कर सकट साजि जब ग्वाल चले मिलि गिरि पूजा के निमित्त बढ़ते हैं। तत्पश्चात् ब्रज की नारी की शोभा का अभिनय दिखाते हैं-- 'चली घर घराने ते ब्रजनारी। मनौं इन्द्र बधूकि पंगति, लखति शोभा आरि। हिरि सारी सुरंग, पचरंग, षष्ट-दस सिंगार।' तत्पश्चात् गोवर्धन पहुँचकर उनकी नृत्यमय ढंग से पूजा की जाती है, फिर नर्तक द्वारा पल्टा लेकर इन्द्र का अभिनय-इन्द्र कुपित होकर मूसलाधार वर्षा कर ब्रजवासियों पर अपना कोप प्रकट करते हैं, जिससे सभी डूबने लगते हैं, ग्वालबालों का अभिनय-'माधो महामेघ घिर आयो घर की गाई बहोरो मोहन, ग्वालिनी टेरि सुनायौ।'[8] तत्पश्चात् नर्तक द्वारा श्रीकृष्ण का चमत्कारिक स्वरूप प्रकट करते हुए एक ऊंगली पर

गोवर्धन पर्वत धारण कर ब्रजवासियों को आसरा प्रदान करना। इस प्रकार कृष्ण के देव स्वरूप तथा सामर्थ्य के आगे इन्द्र का अभिमान धराशायी हो गया।

कत्थक नृत्य में इसे कवित्त द्वारा भी प्रदर्शित किया जाता है-- ताल लय में निबद्ध कविता के बोलों द्वारा निर्मित रचना कवित्त कहलाता है-- देखें जयपुर घराने के प्रमुख नृत्याचार्य पं. नारायण प्रसाद द्वारा रचित कवित्त--

संगमेंलिये	ग्वालबाल	नटनाऽगर	नन्दलाऽल।
सखियाऽसब	उमंगभरीऽ	गोऽवरधन	जाऽतहैं।
गिरवरकीऽ	पूजाकरन	त्राऽमततथई	त्राऽमततथई।
आऽनंदमऽ	नाऽवतहैंऽ	इन्द्रदेऽख	कोऽय करत।
सननन पुर	वाऽई चलत	धड़ धड़बाडऽ	दल गरजत।
तड़ तड़ बिज	लीऽचमकत	बरसत मूऽ	सलाऽधाऽर।
सखियाँ ऽसब	बहीऽजाऽत	कृष्णचऽचन्द्र	गोऽवरधन।
नख परऊऽ	ठाऽए लेऽत	बृजकोऽऽब	चाऽय लेऽत।
देऽव ऋषि	आकाऽश सेऽ	फूऽल येबर	साऽऽत हैंऽ
नाऽराऽयण	गाऽए नाऽच	कृष्ण कोऽरि	झाऽवत हैंऽ
नादिगदिग थोदिगदिग	नादिगदिग थोदिगदिम	धिलाँगऽऽऽ	नादिगदिग थोदिगदिग।
नादिगदिग थोदिगदिग	धिलाँगऽऽऽ	नादिगदिग थोदिगदिन	नादिगदिग थोदिगदिग।
धिलांग[9]।			

गोवर्धन लीला की सभी चित्राकृतियों में मध्य में श्रीकृष्ण को एक ऊँगली पर पर्वत उठाए तथा पर्वत की ओट में गोप, गोपी, पशुधन आदि सभी ब्रजवासियों को चित्रित किया गया है। किशनगढ़ से प्राप्त 1755 ई. के लगभग चित्रकार निहाल चन्द्र द्वारा उकेरा गया-- 'कृष्ण गोवर्धन पर्वत उठाते हुए' चित्र मेरी दृष्टि में सर्वाधिक सौन्दर्य से पूर्ण प्रतीत होता है। अतः उसकी विवेचना यहाँ प्रस्तुत है।

चित्र में अग्रभूमि में गायों के झुण्ड, मध्य भूमि में गोपियों की विशाल संख्या तथा श्रीकृष्ण एवं लगभग मध्य से लेकर चित्र के ऊपरी भाग तक गोवर्धन पर्वत एवं घनघोर वर्षा की कालिमा से आच्छादित आकाश का अंकन है। चित्र का संयोजन सम्मिलित संतुलन का उत्कृष्ट उदाहरण कहा जा सकता है। मध्य में कृष्ण तथा एक तरफ पुरुषाकृतियां तथा दूसरी तरफ स्त्री आकृतियों को सम्मिलित संतुलित रूप में निरूपित किया है, साथ ही इसी प्रकार का विभाजन पशुधन को प्रकट करने में भी द्रष्टव्य है। यह विभाजन तथा श्रीकृष्ण द्वारा उठाए गए 'पिरामिडाकार' गोवर्धन पर्वत, चित्र के संतुलन को सुदृढ़ता प्रदान करते हैं। पूर्ण आकर्षण एवं लावण्य से युक्त नेत्रों एवं मुखाकृतियों के निर्माण से ही 'बहुसंख्यत्व' का भाव उत्पन्न करना चित्रकार की अद्वितीय कुशलता का परिचायक है। कृष्ण की त्रीभंगी मुद्रा एवं उनकी सहज सामर्थ्य शक्ति का भान चित्रकार ने, उनके दैविक रूप तथा मानवीय रूप अर्थात् लौकिक एवं अलौकिक का समन्वय करते हुए अत्यन्त खूबसूरती के साथ कराया है। शारीरिक मुद्रा व मुखाकृति का अंकन कृष्ण द्वारा एक पर्वत को उठाना उनके बांये हाथ का खेल साबित करता सा प्रतीत होता है। गोवर्धन पर्वत का पूज्य एवं उसका दैवीय स्वरूप उसके विशाल आकार तथा समस्त जीव-जाति को अपनी शरण में लेने के भाव को चित्रकार स्पष्ट रूप से प्रकट करने में सक्षम हुआ है।

रासलीला-- श्रीकृष्ण की प्रधान लीलाओं में शामिल रासलीला सम्पूर्ण लघुचित्र शैली के साथ-साथ भित्ति चित्रण में प्रमुख विषय रहा है। इस लीला को बूंदी व जयपुर शैली में बने चित्रों का उदाहरण देकर किया जा रहा है। राष्ट्रीय संग्रहालय दिल्ली में बूंदी शैली का चित्र रासलीला, बूंदी के बादल महल में अंकित भित्ति चित्र तथा जयपुर के सिसोदिया पैलेस एवं भवानी राम की हवेली में स्थित रासलीला भित्ति चित्र द्वारा इस प्रधान लीला का कलात्मक स्वरूप स्पष्ट है।

उपरोक्त चारों उदाहरणों में रासलीला को वृत्तीय आकार में बनाया गया है, अर्थात् कृष्ण व गोपियां

वृत्ताकार में नृत्यमुद्रा में चित्रित हैं। नृत्य की गति एवं निरंतरता जैसे शब्दों की व्याख्या इस वृत्ताकार संयोजन में चित्रकार ने प्रकट की है। बूंदी के बादल महल का रासलीला भित्ति चित्र अन्य चित्रों की अपेक्षा अधिक स्पष्ट एवं आकर्षक है। इसमें रासलीला के परमतत्वों उत्साह, उमंग, लयात्मकता, तेज आदि का निरूपण चित्र की पृष्ठभूमि में प्रयुक्त शुद्ध लाल रंग लगाकर किया गया है। यह रंग आज भी ताजा प्रतीत होता है। चित्र में लघुचित्रण की रेखाएं जैसे बारीकी, भित्ति चित्रकार के कौशल को प्रदर्शित करती है। चित्र में श्रीकृष्ण के बहु रूप को दर्शाया गया है जिसके लिए हर दो सखी के मध्य कृष्ण को अंकित किया गया है। सभी आकृतियां नृत्य मुद्रा में और एक दूसरे का हाथ पकड़े हुए नृत्यरत हैं। सम्पूर्ण चित्र में लय व निरंतरता का शुद्ध व स्पष्ट प्रकटीकरण है। चित्र में प्राकृतिक छटा के साथ-साथ वाद्ययंत्र बजाती हुई स्त्रियां अंकित है।

उपरोक्त द्वारा राधा-कृष्ण की रास लीला, कत्थक नृत्य में कवित्त द्वारा प्रस्तुत हैं--

राऽधाऽ गोऽपीऽ सबयमु नाऽतट राऽसक रतसंग।

बनवाऽ ऽरीऽऽ पगमेंपा यलियांऽ घुंघरूऽ बाऽजेऽ।

मृदंऽग वीऽणाऽ झांऽऽझ बाऽऽजे धिटधिट धिटधिट।

मृदंऽग बोऽलेऽ छोगछोम छोमछोम घुंघरूऽ बाऽजेऽ।

लचकल चककर मटकम टककर नृत्यक रतहैऽ।

छोमछोम छननन ताऽऽऽ छोमछोम छननन ताऽऽऽ, छोमछोम छननन ताऽऽऽ तक्डांनतक्डांन छोमछोम छननन,

तक्ड़ांनतक्ड़ांन छोमछोम छननन, तक्ड़ांनतक्ड़ांन छोमछोम छनननता।[10]

इसी प्रकार कत्थक नर्तकाचार्य सुखदेव महाराज द्वारा रचित कवित्त का एक दृश्य देखते हैं, जिसमें कृष्ण राधा, ललिता, वृन्दा, चन्द्रावली के साथ महारास कर रहे हैं--

कुँऽजन मेंऽअद भुतरच्यौ ऽराऽस रूऽमझू ऽमसखि, याँऽकर तहाऽस मुखविला ऽसमुनि।

मनहाऽ रीऽऽऽ छौऽमछौ ऽमछम छमछिछि छिछिछौम तकछुमतकऽ।

तकतकछुमऽ झनकाऽ रीऽऽऽ नाऽनाऽ विधिगत लेऽतअ ऽग्रफेऽ।

रीऽऽऽ तोऽड़ाऽ ऽऽतुक बंऽदीऽ छऽन्दय रबऽन्ध आऽड़ीकु।

आऽड़ीऽ तीऽनगु ऽनचौऽ गुनऔर सोऽलह लाऽगड़ाँ ऽटछवि।

अतिन्याऽ रींऽऽऽ गोऽपीऽ करधर केऽऽऽ भुजभर केऽऽऽ राऽधाऽ।

ललिताऽ ऽऽवृन दाऽचन द्राऽवली काहनके संगऽऽऽ।

गोऽरश्या ऽमसोंऽ हतमन मोऽहत राऽसमं ऽलशोऽ भाऽभाऽ।

रीऽऽऽ नचतब जतकिंऽ किनरून नझूनन छुननछ ऽमछम।

छमऽछ ऽमछम्म झाँऽझझ ऽम्मझन झनकाऽ रीऽऽऽ।

क्रधेऽतक्र धेत्तबाऽ जतमृदं ऽगसंग मेंऽऽप ऽगअरू मुरजचं।

ऽगमंड जीऽरहु ड़ककर ताऽलबी ऽनसुर मंऽडल खंऽजरि।

अतिप्रवी ऽणधुनि द्रिमकद्रि मकद्रिम धादीऽन्ता दिगदिगताऽ ततततत।

त्रामत्राम तत्काऽ रीऽऽऽ ऽताथईया ऽतथईया ऽतथईया ऽतथईया

ऽतथेईऽ ताऽऽत थईयाऽत थईयाऽत थईवाऽत थईयाऽत थईऽता

ऽतथईया ऽतथईया ऽतथईया ऽतथईया ऽतथईताऽ।[11]

उपरोक्त नृत्यमयी रासलीला का सुन्दर मनोहारी

चित्रण नाथद्वारा में चित्रित राधा-कृष्ण[12] बूदी शैली में चित्रित 'राधा कृष्ण मिलन' किशनगढ़ शैली में 'कृष्ण राधा कुंज में', कोटा शैली में 'राधा व कृष्ण गोपियों के साथ' आदि में राधा व कृष्ण के युगल नायक-नायिका स्वरूप के मनोहारी चित्र उपलब्ध होते हैं।

राजस्थानी चित्रकला में कृष्ण की नृत्यमयी सभी लीलाओं का सुन्दर चित्रण-भित्ति चित्रण, पोथी चित्रण एवं वसली चित्रण तथा पटचित्रण अर्थात् पिछ्वई आदि रूपों में चित्रित हुए जिसमें कृष्ण की सभी लीलाएं यथा-- कालिया मर्दन, वेणुवादन, उखल बंधन, गोधूलि लीला, चीरहरण, गोवर्धन लीला तथा रास आदि अनेक लीलाओं का नृत्य के साथ ही अत्यन्त मनोहारी व सौन्दर्य से परिपूर्ण उत्कृष्ट कोटि का चित्रण राजस्थान की विभिन्न स्थानीय शैलियों में प्राप्त होता है।

कृष्ण व उनकी लीलायें जिस प्रकार नृत्य का प्राण आधार बिन्दु है, उसी प्रकार चित्रकला में भी कृष्ण लीला मध्ययुगीन चित्रकारों का प्रमुख आधार बिन्दु रहा है। दोनों ही ऐसी कलायें हैं जो कृष्ण की सौन्दर्यमयी लीला से प्रभावित हुई हैं। नटवर नागर कृष्ण जनजीवन के उपास्य रहे हैं और उनकी मनोहारी छवियों को कलाकारों ने आत्मसात कर अभिव्यक्त किया है। लोकजीवन में कृष्ण परमतत्व, परमात्मा के रूप में जन-मन रंजक और रक्षक की विविधि छवियां सतत विद्यमान रही हैं ऐसे अद्भुत लीलाधारी कृष्ण क्यों न विविध कलाओं के केन्द्र बिन्दु बनते। यही कारण है कि पौराणिक समय से लेकर अब तक अभिव्यक्ति की विविधि विधाओं में कृष्ण अपने लीलामयी रूप में केन्द्रीय भूमिका में अभिव्यक्ति पाते रहे हैं, विशेषतः चित्रकला एवं नृत्य कला भारतीय नृत्य व चित्रकला को कृष्ण परम्परा ने पूर्णतः प्रभावित किया है। उनकी बाल लीला, सखा रूप, उनके श्रृंगारिक रूप, दैविक रूप व रास रूप, भागवत स्वरूप का रहस्य प्रकट करती हैं। कृष्ण की समस्त लीला रूपों से नृत्य व चित्रकला को सबसे प्रमुख प्रेरणा यही मिली कि कृष्ण लीला मोक्ष का साधन है। अपनी समस्त इन्द्रियों को एकाग्रित कर कला द्वारा आनन्दनिमग्न हो, जब कलाकार उस परम शक्ति से एकचित हो, अपनी कला की अभिव्यक्ति करता है, तो वह कला रसमयी, आनन्दमयी व चित्त को प्रसन्नता तथा शांति प्रदान करने वाली होती है।

संदर्भ

1. मैनेजर पाण्डेय-- कृष्ण कथा की परम्परा और सूरदास का काव्य-- पृ. 45-47। **2.** डॉ. पूरण चन्द टण्डन-- मध्यकालीन कृष्ण काव्य में सौन्दर्य चेतना-- पृ. 393-398। **3.** छाया भटनागर-- भारत के शास्त्रीय नृत्य, पृ.61--68। **4.** डॉ. रीता प्रताप : भारतीय चित्रकला व मूर्तिकला का इतिहास, पृ.187। **5.** राजस्थान की चित्रकला : परंपरा और स्वरूप -सं.श्री प्रेमचन्द्र गोस्वामी, पृ.31। **6.** डॉ. अभिलाषा गोयल : किशनगढ़ चित्रकला एक विवेचनात्मक अध्ययन, पृ. 181-184। **7.** Sita Sharma-Krishna Leela theme in Rajasthan Miniature, Pg. 54-56. । **8.** रघुनन्दन प्रसाद तिवारी : भारतीय चित्रकला, पृ.सं. 137-154। **9.** पंडित तीर्थराम आजाद-- कत्थक दर्पण, पृ.293। **10.** डॉ. प्रेम दवे-- कत्थक नृत्य परम्परा, पृ. 228। **11.** पंडित तीर्थराम आजाद-- कत्थक दर्पण, पृ.306-307। **12.** Pratap aditya Pal - The Classical Tradition in Rajput Painting, Colour Plate-51. ।**13.** Pramod Chandra - Bundi Painting Colour Plate-5. । **14.** Manohar Singh Randhawa-Kishangarh Painting Colour Plate-VIII.

एसोसिएट प्रोफेसर, कत्थक नृत्य
वनस्थली विद्यापीठ (राज.)-304022

●

राष्ट्र के लिए समर्पित गोपाल कृष्ण गोखले

गोपाल कृष्ण गोखले ने जो त्याग किया, जो दान दिया, जो तपश्चार्या, तपस्या, साधना की वह सभी मातृभूमि के लिए की। गोपाल कृष्ण गोखले अर्थशास्त्री, गणितज्ञ, समाजशास्त्री, राजनीतिज्ञ, शिक्षाशास्त्री, तर्काधिष्ठित विचार प्रस्तुत करने वाले गुलाम भारत में लड़वैय्या स्वतन्त्रता सेनानी। कमीशन के सम्मुख गोखले की तर्कनिष्ठा जिरह समाप्त हो जाने पर सर विलियम वेउरबर्न उनके पास गए और एक गुलाम हिन्दुस्तानी के हाथ अपने हाथ में लेकर उसका अभिनंदन करते हुए बोले- "आपने बहुत बड़ा काम किया है, आपकी जिरह सभी दृष्टि से बेजोड़ रही। आपने अपने देश की जो अमूल्य सेवा की है उसके लिए मैं आपका तहे दिल से अभिनंदन करता हूँ।"

लार्ड वेल्बी और कमीशन के अन्य सदस्य जिनमें मि.फेनी ब्रिटिश शासन व्यवस्था में श्रेष्ठ इकोनामिस्ट विचारवंत अर्थज्ञ थे वे उनको लिखते हैं कि मि. गोखले आपने जो जिरह पेश की उसका अध्ययन करने में मैंने पूरे सात घन्टे खर्च किए। इस प्रकार की प्रस्तुति इतने प्रभावी ढंग से की गई, इसके पहले मैंने कभी नहीं देखी थी। गुलाम देश के एक हिन्दुस्तानी की विविध विषयों का परामर्श इतने ऊँचे दर्जे का होगा ऐसा तो मैंने सोचा भी नहीं था। आपके सभी विचार मुझे मान्य हैं ऐसा तो नहीं है पर कमीशन पर इसका निश्चित रूप में प्रभाव पड़ेगा। आपने देश की जो महत्वपूर्ण और अपूर्व सेवा की है उसके लिए देशबांधव सदा सर्वदा कृतज्ञ रहेंगे। वेल्बी कमीशन में गोखले की जिरह उनका 'मुक्तिवाद' लंदन क्रानिकल्स, डेलीन्यूज, यंग इंडिया तथा इंग्लैण्ड के अन्य अखबारों और कलकता, मद्रास, मुंबई और करांची को अखबारों में छपा था।

यूरोप की जीझस सोसायटी की तरह हिन्दुस्तान में भी जनमत इकठ्ठा करने के लिए एक पद्धित होनी जरूरी है, देश की विविध समस्याओं से जूझने के लिए सुशिक्षित युवाओं की

संस्था स्थापित करनी चाहिए, उस संस्था में राज्यशास्त्र, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र आदि विषयों का अध्यापन किया जाना चाहिए इस उद्देश्य से उन्होंने 'सर्वेन्टस ऑफ इंडिया' या 'भारत सेवक समाज' की स्थापना 12 जून सन् 1905 में की। गोखले ने अपना सर्वस्व इस संस्था के लिए समर्पित कर दिया। जीवन के अंतिम क्षण तक वे इसी संस्था में रहे। एक समृद्ध ग्रन्थालय उन्होंने खड़ा किया। लाहौर, मद्रास, नागपुर, कलकत्ता, काशी आदि स्थानों पर इसकी शाखायें हैं। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय सेंट्रल लायब्रेरी गायकवाड ग्रन्थालय में अर्थशास्त्रज्ञ गोपालकृष्ण गोखले दालान है। काशी में राजघाट में ऋषिवैली ट्रस्ट में गोपालकृष्ण गोखले छात्रावास है। सन् 1906 में गोखले जिस जहाज से इंग्लैंड जा रहे थे उसी जहाज में आगाखान भी थे। सर्वेन्टस ऑफ इंडिया सोसायटी के लिए उन्होंने गोखले का आभिनंदन किया और साथ ही पाँच हजार रुपये का अनुदान भी दिया। बैरिस्टर जिन्ना तो गोखले की बुद्धिमत्ता और वाकपटुता के कायल थे। एक बार तो उन्होंने बातों के दौरान कह भी दिया था कि मेरी तो इच्छा रही कि मैं भारत सेवक समाज का सदस्य बनूँ पर परिस्थितियों के चलते यह संभव नहीं हो पाया।

हार्डिंग्स के शासनकाल में अर्थमंत्री सर गायफ्लीट वुड थे। वे सब समय गोखले के प्रति तुच्छ भाव घृणा दर्शाते थे पर मन ही मन उनकी प्रशंसा भी करते थे और एक बार तो मुखर हो गए और उन्होंने कह ही दिया कि "एक गोखले से निपटना हमें भारी पड़ गया है, जब इस संस्था से सैकड़ों की संख्या में गोखले बाहर निकालेंगे तो ब्रिटिश सरकार का क्या होगा? उसे तो देश से बाहर जाना ही होगा..' बैरिस्टर जयकर तो बिना बुलाये इस संस्था में पहुँच गए थे। वहाँ जाकर उन्होंने गोपाल कृष्ण से मुलाकात की उनका अभिनंदन किया। गोखले जी ने बड़ी आत्मीयतापूर्वक संस्था दिखाई। समृद्ध ग्रन्थालय देखकर तो बैरिस्टर जयकर की आँखें फटी रह गई।

वेडरबर्न तो भारत सेवक समाज के अभिन्न अंग बन गए थे। अपनी पत्नी के निधनोपरान्त गोखले इसी संस्था में रहे। वेडरबर्न का सब समय यहाँ आना जाना होता था। गोखले अपने गुरुजी महादेव गोविन्द रानाडे के प्रति कृतज्ञ बने रहे। उन्होंने रानाडे इन्डस्ट्रीयल एण्ड इकोनामिक इन्स्टीटयूट की स्थापन की। अर्थशास्त्र के अध्ययन और औद्योगिक अनुसंधान के लिए एक आदर्श संस्था सन् 1910 में स्थापित की, मुंबई के गव्हर्नर लॉर्ड सिडनेहॅम के हाथों इस संस्था का उद्घाटन किया गया था। आज यह संस्था सावित्री बाई फुले पुणे विद्यापीठ से संलग्न नामांकित संस्था है। मोहनदास करमचंद गांधी ने अफ्रिका से लौटने के बाद भारत सेवक समाज की सदस्यता ग्रहण की थी। आजाद भारत के प्रथम प्रधान मंत्री जवाहरलाल नेहरू ने तीन बार इस संस्था के दर्शन किए थे। एक बार इंग्लैण्ड में अर्थशास्त्र पर चर्चा-अधिवेशन संपन्न हुआ था। स्वास्थ्य के कारण गोपाल कृष्ण गोखले जा नहीं पाए थे। अंग्रेज अर्थशास्त्रज्ञ प्रो. प्लिंटवुड विल्सन ने कहा कि गोखले की अनुपस्थिति में अर्थ संकल्प पर चर्चा करना याने प्रिन्स ऑफ डेन्मार्क के बिना हैम्लैट नाटक को करने जैसा है।"

पुणे के प्रसिद्ध फर्ग्युसन कॉलेज के शिल्पकार गोखले थे। गोखले इस कॉलेज में अंग्रेजी पढ़ाते थे। इतिहास, अर्थशास्त्र अंग्रेजी और गाणित विषयों भी उनकी तैयारी पक्की थी। गणित विषय पर सरल, सहज सुबोध भाषा में उन्होंने पुस्तकें लिखी हैं। सन् 1887 में उनकी गणित की पहली पुस्तक शिरालकर एण्ड कंपनी ने छापी। इस पुस्तक की लोकप्रियता इतनी मिली कि यह हाथों हाथ बिक गई। उसके बाद मैकमिलन कंपनी ने इसे छापा । सन् 1933 तक इस पुस्तक की बाईस आवृत्तियाँ निकल चुकी थी। मैकमिलन कंपनी प्रो. गोखले को प्रतिमाह एक सौ पच्चीस रूपये रॉयल्टी देती थी। इास पैसे का उपयोग कुछ अपेन परिवार के लिए और कुछ समाजकार्य के लिए करते थे। इक्कीस वर्ष की आयु में उन्होंने ये

पुस्तकें लिखी थी। गणित की पुस्तकों ने गोखले को समाज में सम्मान प्रदान किया। पुस्तकों का कच्चा मसूदा वे सर्व प्रथम बाल गंगाधर तिलक को दिखाया करते थे। तिलकजी गणित गगन के एकमेव ध्रुव नक्षत्र थे, उनके द्वारा स्वीकृत किए जाने पर हरी झंडी मिल जाने पर गोखले मैकमिलन कंपनी को देते थे।

गोखले मराठी के तो मास्टर ही थे पर अंग्रेजी भाषा पर भी उनका अधिकार असामान्य रहा। उत्कृष्ट लच्छेदार अलंकृत शैली का वह व्यवहार करते थे। जॉन स्टुअर्ट मिल और जॉन मोर्ले को तो वह घोल कर पी गए थे। मॉकाले और बर्क की अंग्रेजी भाषा को बोलते गोखले अपने समय के दिग्गजों की श्रेणी में बैठते थे। स्मरणशक्ति और पाठान्तर तो उनका बेमिसाल था। कई विशिष्ट जनों के भाषण उन्हें मुखोद्‌गत थे। बर्क का "रिफ्लेक्शन ऑन द फ्रेंच रिवोल्यूशन" पुस्तक का भाषण उन्हें जबानी याद था, उसे वह मित्रों को सुनाया करते थे। उनसे खार खोने वाले और उन्हें आमानित करने वाले उन्हें "रट्टू तोता" कहते थे। हाथ में एक कागज का टुकड़ा भी न पकड़ते, सन् तारीख वार सहित घटना ऐसे बताते थे कि अनेक अधिकारी गण, विशेष ब्रिटिश आधिकारी, उनका भाषण व्याख्यान सुनने के लिए घन्टों प्रतीक्षा करते थे।

मेहनत करने में गोखले कभी की पीछे नहीं रहे। हफ्ते में तीस घंटे वे कॉलेज में पढ़ाते थे, उत्तर पुस्तिकाएँ जांचने का काम करते थे। इसके अलावा "केसरी" "मराठा" "ज्ञानप्रकाश" "टाइम्स ऑफ इंडिया" के लिए लेख भी लिखते थे। व्यासंग और अध्ययन में कहीं कोई कमी नहीं होती थी उनके इस गुण को परख कर सन् 1895 में मुंबई विद्यापीठ की सिनेट में उनकी नियुक्ति हुई थी। इस पद पर गोखले पूरे बीस वर्ष तक रहे। मुंबई विद्यापीठ में अर्थशास्त्र और इतिहास के परीक्षक भी चुने गए थे। उस जमाने में अंग्रेजों को छोड़ कर किसी भी हिन्दुस्तानी को नहीं चुना जाता था। गोखले पहले भारतीय थे जिन्हें इस पद पर बैठने का बहुमान मिला था।

सन् 1889 में पहली बार गोखले ने कांग्रेस में भाषण दिया था। पूरे पच्चीस वर्ष तक वह कांग्रेस के सक्रिय सदस्य रहे । सन् 1905 में हुए बनारस अधिवेशन के अध्यक्ष रहे। स्त्री शिक्षा के वे कट्टर पुरस्कर्ता थे। फर्ग्यूसन कॉलेज में ट्रस्टी का घोर विरोध होने पर भी गोखले ने कृष्णा बाई केलवनकर महिला को प्रवेश दिया था और बड़ोदा के महाराज सयाजी राव गायकवाड से पच्चीस रुपये दर माह छात्रवृत्ति भी दिलवाई थी।

दक्षिण अफ्रिका के प्रश्नों को हल करने के लिए गोखले दो बार अफ्रिका के जोहान्सवर्ग, डरबन प्रिटोरिया आदि स्थानों पर गए थे। इतनी भागदौड़ से उनकी तबियत खराब हो गई थी पर अपना कर्तव्य निबाहने में कोई कसर नहीं रखी उनकी कार्यनिष्ठा उद्‌भुत रही। दक्षिण अफ्रिका वासियों ने उनके कार्य से प्रभावित होकर कृतज्ञता व्यक्त करने के लिए जोहान्सवर्ग में गोखले का भव्य दिव्य सम्मान किया जो सोने के पत्तर पर लिखा गया था और उसका आकार हृदय जैसा था। यह सोने का पत्तर होडेशिया की सागवानी लकड़ी पर बैठाया गया था जिसके दाहिने तरफ ताजमहल और बायीं तरफ हिन्दुस्तानियों का जीवन दृश्य उकेरा गया था। भारत सेवक समाज ग्रन्थालय में यह संग्रहित है। ह्वाइसराय ने उन्हें "नाईट कमांडर ऑफ द ब्रिटिश इम्पायर (सर) की पदवी देनी चाही थी जिसे उन्होंने स्वीकारी नहीं। वे राष्ट्र के लिए अपना सर्वस्व समर्पित करते कर्मवीर योद्धा "राष्ट्र सेवक" ही बने रहे।

भारत के स्वतन्त्रता संग्राम के इतिहास में तिलक और गोखले के नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित हैं। ये दोनों महापुरुष प्रखर बुद्धिमत्ता, वाकपटुत्व, तर्काधिष्ठित विचार प्रस्तुति, निर्भयता, अदम्य साहस, उत्कृष्ट देशभक्ति से ओतप्रोत थे। अपने देश के लिए अपने प्राणों की भी परवाह न करते थे, दोनों भारत माता के सपूत नररत्न रहे। दोनों ही चित्तपावनी ब्राह्मण पूनावासी रहे, दोनों ही राजनीति में पूरे पच्चीस वर्ष

रहे, दोनों ही एक दूसरे के सहकारी, एक ही शिक्षा संस्था में रहे गणित के उद्‌भट विद्वान, पर दोनों के दृष्टिकोण में जमीन आसमान का अंतर था, अपने सिद्धान्तों को लेकर दोनों में खड़ाजंगी और होती थी तू-तू मैं-मैं, याने पूरा छत्तीस का आंकड़ा था, वैचारिक मतभेद शिखर छूता था, पर दोनों ही एक दूसरे का अत्यधिक सम्मान करते थे। सन् 1907 के कांग्रेस अधिवेशन में तिलक जी के एक विरोधक ने उन पर कुर्सी फेंकने का औधत्य किया तब गोखले ने तन कर खड़े हो कर प्रतिकार किया। गरज पड़े बोले- “खबरदार जो आगे बढ़े तो...।” गोखले का जब निधन हुआ और यह दुखद वार्ता जब तिलक के पास पहुंची उस समय तिलक सिंहगड में थे। त्वरित वहाँ से निकले और सर्वेन्टस ऑफ इंडिया सोसायटी पहुंचे। गोखले की श्मशानयात्रा में गये और श्मशानभूमि में पहला श्रद्धांजलि भाषण बाल गंगाधर तिलक का था जिसमें उन्होंने गोखले के विषय में शोकाकुल अवस्था में कहा था-- भारत माता का हीरा, महाराष्ट्र का रत्न, कार्यकर्ताओं का मेरुमणि आज श्मशान में चिरनिद्रा में लीन है, उनकी ओर देखिए प्रत्येक को उनके जीवन के आदर्श के नाते देखें और उनकी मृत्यु से जो हानि हुई है उस हानि को पूरा करने का प्रयत्न करें तभी उनकी आत्मा को चिरशांति प्राप्त होगी।

सरोजिनी नायडू गोखेल को ‘डियर बिग ब्रदर’ कहती थी। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने गोखले को पत्र लिखकर स्वास्थ्य विषयक चेतावनी दी थी कि आप जैसों का अस्तित्व बना रहना राष्ट्र की सच्ची सेवा होगी, कृपया आप इसे ध्यान में रखें, कारण आपका जीवन केवल उपयुक्त उपयोगी इतना ही नहीं, वह तो दीप है, हम आपको खो नहीं सकते। भारत द्वेषी बंगाल का विभाजन कर इंग्लैण्ड लौटे लार्ड कर्जन ने गोपाल कृष्ण गोखले के लिए हाउस ऑफ लार्डस में प्रशंसोद्‌गार Gladostan of India. Dimond of India this jewel of Maharashtra Prince of worker greatest Indian of his time कहा। लाला लाजपत राय ने उनके निधन पर शोक व्यक्त करते हुए कहा- 'noblest and the best of congrese of type' आगाखान ने तो गोखले को नवनिर्माण कलाकार की संज्ञा दी।

कर्म को पूजा, कर्म ही भक्ति, कर्म को ही ईश्वर मानने वाले गोपाल कृष्ण का भारत निर्माण ही स्वप्न रहा और श्वास रहा। राष्ट्रयज्ञ में अपने प्राणों की समिधा अर्पित करते इस राष्ट्रभक्त को उसकी पुण्यतिथि (19 फरवरी) पर स्मरण करते शतशत नमन करते हैं--

ऐसा जन्म प्राप्त होवे।
काया हो चन्दन की ।
जीवन खत्म हो जाने पर भी।
गन्धित सुरभित हो चहुँ दिशा।
सत्कर्म दिव्य सुमनों से।
की पूजा जिसने जीवन भर।
उसकी स्मृति कभी न खत्म हो।
नश्वर काया जल जाने पर भी।

डॉ. विद्याकेशव चिटको
8, यामायी अक्सर सोसायटी,
समर्थ नगर, नासिक (म.एस.)-422005
मो. 9527313387

श्री माधोदास मूंधड़ा के 108वें जन्म दिवस पर स्मरणांजलि

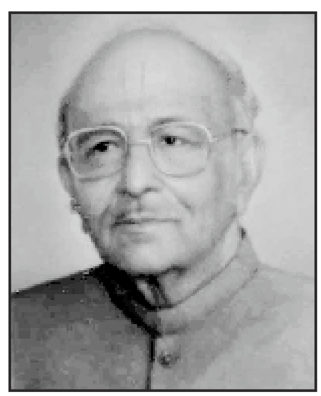

राजस्थान के बीकानेर नगर की पावन धरा पर आपका जन्म 25 फरवरी 1918 को श्री गिरधर दास श्रीमती सूरज देवी मूंधड़ा के यहां हुआ। “पूत का पग

पालणै ही दीख जावे" कहावत आप पर यथार्थ सिद्ध होती है, कलकत्ता रहते किशोर अवस्था से ही व्यवसाय की बारीकियां सीखी और व्यावसायिक उपलब्धियाँ हासिल कर कलकत्ता के सफल उद्योगपतियों में परिगणित हुए और अपने परोपकारी स्वभाव व सहृदयता के कारण आप सदैव सामाजिक उत्थान व सेवा तथा धर्म-दर्शन, साहित्य, संगीत में अभिरुचि के चलते अध्ययन-मनन-लेखन के साथ साहित्य-कला-संगीत के अभिवर्धन में लगे रहे।

समाज सेवा की कड़ी में आप द्वारा बीकानेर में निर्मित श्रीमती सूरजदेवी गिरधर दास मूंधड़ा सेटेलाइट अस्पताल है, जो बीकानेर के नागरिकों की निरन्तर सेवा कर रहा है। सन् 1994 में एक विशाल भू-खण्ड पर इसका निर्माण किया गया, यह अस्पताल 7 एकड़ में 1.5 करोड़ की लागत से तैयार हुआ, जन जन को स्वास्थ्य-सेवा सुलभ हो सके इसके लिए इसका निर्माण शहरी क्षेत्र में ही कराया गया। अस्पताल परिसर में न केवल मरीजों अपितु चिकित्सकों और सहायक स्टाफ के रहने के लिए 25 लाख रुपये की लागत से उत्तम व्यवस्थाओं से युक्त विंग का निर्माण भी किया गया।

दिनांक 7 मई 1989 को तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री शिवचरण माथुर द्वारा इस चिकित्सालय भवन का शिलान्यास किया गया जिसमें स्वास्थ्य मंत्री श्री रघुनाथ विश्नोई, सार्वजनिक निर्माण मंत्री श्री बी.डी. कल्ला भी उपस्थित थे। फिर माननीय राज्यपाल श्री बलीराम भगत ने 27 अक्टुबर 1994 को इसका उद्घाटन कर समाज की सेवा में भेंट किया। 50 बेड की क्षमता से शुरू किया गया अस्पताल आज जिला अस्पताल का दर्जा प्राप्त कर चुका है। इसके बाद सन् 2000 में इसके विस्तार का कार्य आपके ज्येष्ठ सुपुत्र श्री बिठ्ठल दास मूंधड़ा द्वारा किया गया, जिसमें प्रथम तल का निर्माण, बेड क्षमता का विस्तार व जाँच उपकरणों की व्यवस्था सम्मिलित है।

शिक्षा-धर्म-दर्शन-इतिहास-पुरातत्त्व-लोक-साहित्य-साहित्य-संस्कृति में शोधकार्य के क्षेत्र में आपका योगदान सराहनीय रहा। आपने 1948 में स्थापित "भारतीय विद्या मंदिर" रात्रि विद्यालय एवं 1958 में स्थापित भा.वि.मंदिर शोध प्रतिष्ठान का संचालन संभाला जिसका मुख्यालय रतन बिहारी पार्क, बीकानेर में स्थित है। यह संस्थान 1958 से धर्म-दर्शन-साहित्य-लोकसाहित्य-इतिहास से संबंधित शोधकार्य में प्रवृत्त रहा जो न केवल राजस्थान अपितु भारत सहित विश्व के प्रमुख लेखकों, विचारकों व चिंतकों के लेखन से समृद्ध रहा। संस्था द्वारा 'वैचारिकी' नाम से शोध पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ जो 40 वर्षों से प्रकाशित हो रही है। इसके पुस्तकालय में विभिन्न हस्तलिखित ग्रंथों का संग्रह है, लगभग 15 हजार मुद्रित संदर्भ ग्रंथ पुस्तकें हैं।

भारतीय विद्या मंदिर शोध प्रतिष्ठान व गिरधरदास मूंधड़ा शिक्षण संस्थान, बीकानेर

आप बीकानेर रोटरी क्लब के सदस्य रहे और बीकानेर रोटरी क्लब में सभागार का निर्माण करवाया। शिक्षा के क्षेत्र में आपका योगदान अविस्मरणीय है। आपके द्वारा अपने पूज्य पिताजी सेठ श्री गिरधरदास जी की स्मृति में संचालित गिरधरदास मूंधड़ा बाल भारती उच्च माध्यमिक विद्यालय गजनेर रोड बीकानेर गुणवत्ता युक्त शिक्षा का पर्याय है। इसी क्रम में आपके सुपुत्र डॉ. बिठ्ठलदास मूंधड़ा द्वारा बीकानेर में पूगल रोड़ पर

बड़े विशाल भूखंड में गिरधरदास मूंधड़ा पब्लिक स्कूल का निर्माण हो कर संचालित है। माधोदासजी भारतीय संस्कृत संसद कलकता के संस्थापक तथा प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र बीकानेर, महेश्वरी बालिका विद्यालय कलकता के संचालक ट्रस्टी रहे।

श्री माधोदास मूँधड़ा द्वारा निर्मित रोटरी क्लब विंग

भारतीय संस्कृति संसद कोलकाता की अग्रगण्य संस्था है जिसमें समृद्ध पुस्तकालय है और इसके सभागार में संगीत-साहित्य से संबंधित उच्चस्तरीय कार्यक्रम एवं विद्वानों के व्याख्यान होते रहते हैं।

आपके द्वारा राजस्थानी भाषा-साहित्य-इतिहास-संस्कृति के प्रति सर्मपित रहे इटालियन विद्वान-शोधक एल.पी. टैस्सीटौरी के प्रति सम्मान में श्री हजारीमल बांठिया द्वारा बनवाई गई प्रतिमा को बीकानेर राजकीय जिला पुस्तकालय संग्रहालय के परिसर में स्थापित करवाया गया। डॉ. टैस्सीटौरी के राजस्थानी इतिहास साहित्य में योगदान के महत्त्व को प्रकाशित करने के लिए टैस्सीटौरी व्याख्यानमाला का आयोजन भी किया गया। पं. अक्षय चंद शर्मा, श्री कन्हैयालाल सेठिया, श्री जयकिशनदास सादानी, डॉ. मनोहर शर्मा, डॉ. गणपति चन्द्र गुप्त, डॉ. बाबूलाल शर्मा जैसी विद्वान शख्सियतों से आपके आत्मीय व घनिष्ठ संबंध थे।

आपको धर्म, संस्कृति व अध्यात्म के प्रति गहन अभिरुचि व जिज्ञासा थी फस्वरूप इनसे संबंधित विशेष ज्ञान आपने स्वयं अपने जीवन काल के अनुभव व अध्ययन तथा विद्वानों की संगति से अर्जित किया। अपने अनुभव व ज्ञान को साझा करने के लिए आपने **'रसो वै सः'** पुस्तक का लेखन किया जिसमें वेद, उपनिषद व गीता की मानव जीवन एवं स्वभाव में प्रासंगिकता का उल्लेख किया। पुस्तक को पढ़ने पर आपकी भगवान श्री कृष्ण के प्रति भक्ति, भक्ति साहित्य व संतों की काव्य रचना, कला-संस्कृति, मौन का महत्व आदि विषयों पर संक्षिप्त, सहज किंतु गहराई पूर्ण वर्णन मिलता है।

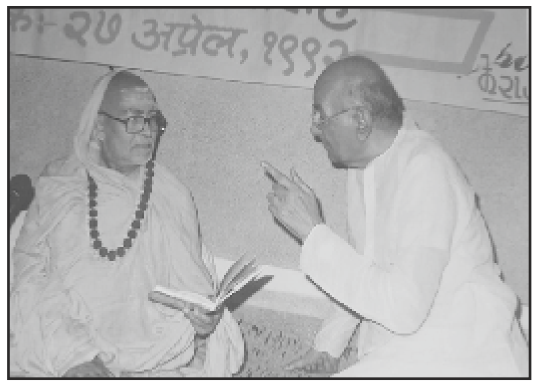

'रसो वै सः' पुस्तक का विमोचन करते 1008 श्री महंत सोमेश्वरानंद महाराज

इसी क्रम में आपने **'भारतीय तत्त्व चिंतनःएक में अनेक'** पुस्तक का लेखन किया। पुस्तक अध्यात्म के गहरे रहस्यों को उजागार करने वाली है, जिसमें जैन धर्म-दर्शन, बौद्ध-दर्शन और शैव दर्शन का वर्णन मिलता है। भारतीय आध्यात्मिक चिंतन के स्रोत : उपनिषद अध्याय के अंतर्गत आपने विभिन्न सम्प्रदायों के उदय व उपनिषदों के उनकी विचारधारा पर प्रभाव का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत कर अपनी आध्यात्मिक चेतना व दक्षता का परिचय दिया है। आगे के अध्यायों में उपनिषद की उत्पत्ति किस प्रकार वेदों से हुई का विवेचन किया है। जैन धर्म में त्रिरत्न, श्रावक व साधु जीवन के नियम व अंतर, अनेकांतवाद, जैन दर्शन में परमाणुवाद, कर्म

सिद्धांत, मोक्ष के पांच रत्न, पांच महाव्रत, पुनर्जन्म आदि विषय, जो किसी विवेकशील जिज्ञासु व्यक्ति के प्रश्न होते हैं, का रचनात्मक व तार्किक हल देने का प्रयास है। बौद्ध दर्शन के अंतर्गत आपने अष्टांग मार्ग, भवचक्र के स्वरूप, बुद्ध के उपदेश, बौद्ध धर्म की शाखाएं, विपश्यना, बौद्ध साहित्य, नागार्जुन रचित टीकाओं आदि को लेकर सारगर्भित लेखन किया है।

बीकानेर राजस्थान संग्रहालय परिसर में डा. एल.पी. टैस्सीटौरी की प्रतिमा

सुखी जीवन पुस्तक के माध्यम से आपने मानव सुखी कैसे रह सकता है, इसका चिंतन किया है। इस प्रसंग में आपने भक्ति, नैतिकता के दस गुणों व गीता के आधार पर 26 गुणों का वर्णन किया है। निष्ठापूर्वक जीवन और मन की शान्ति, अन्तर्द्वन्द्व, मानसिक प्रदूषण, उत्साह, प्रेरणा शक्ति, पारिवारीक सांमजस्य आदि जैसे तत्वों पर ध्यान आकृष्ट कर जीवन को सुखी बनाने के सूत्र दिए हैं। समाजसेवा, शिक्षा, साहित्य, संस्कृति के क्षेत्र में आपके किए गए जन-सेवी कार्यों द्वारा आप हमेशा स्मरणीय रहेंगे।

प्रस्तोता- ऋषि व्यास, बीकानेर
मो. 9602634009

●

प्रतिस्वर

कभी चार के एक से रहते नहीं विचार।
इसीलिए "वैचारिकी" में हैं विविध विचार।।

संस्कृति साहित्य के ले ले नूतन शोध।
स्थापित करती सतत द्वैमासिक युगबोध।।

संपादक इसमें सुधि सज्जन शर्मा बाबूलाल।
समाधान हित प्रयत्न रत, रहते तीनों काल।।

वर्तमान के सामने करते खड़े अतीत।
उभर पाने की ललक दिखती प्रवीण प्रीत।।

राष्ट्रवाद पर भी रखीं निजबातें दो टूक।
बँटवारे जिनने किए, कहदी उनकी चूक।।

आधुनिक निशा का संविधान पर लेख।
व्याख्यायित होता गया तुष्टि मिली न एक।।

तिथि अंकन में सिकन्दर से भारत का काल।
मेगस्थनीज निआर्कस के वचनों की है ढ़ाल।।

उपनिषदों से उतर कर कृष्ण हुए भगवान।
इसके पहले कृष्ण की कहीं नहीं पहचान।।

गर्ग, तथा वैवर्त ने पुकारे राधा कृष्ण।
इतने जगजाहिर हुए देखें सभी सतृष्ण।।

सामाजिक अध्यात्म और कभी-कभी साहित्य।
पत्रकारिता जगत में "वैचारिकी" आदित्य।।

("वैचारिकी" जुलाई-अगस्त 2024 प्राप्ति पर प्रस्तुति)

-पं. गिरि मोहन गुरु
श्री सेवाश्रम, नर्मदापुरम (म.प्र.)

प्रतिस्वर

'लेख बौद्ध मत एवं शून्य विचार (अंक 4/2024) के संबंध में कहना है-- बौद्ध धर्म से पूर्व काल खण्ड में 'आध्यात्मिक योग' में शून्य की अवधारणा थी। प्राचीन ग्रंथ गीता में इसका ज्ञान निहित है। क्रिया योग प्रर्वतक योगिराज श्री श्यामाचरण लाहिड़ी, वाराणसी (1828-95) के अनुसार महान योगी संत कबीर पिछले तीन युगों में भी अवतरित हुए थे। कबीर दास द्वारा धर्मदास को दिये दीक्षा उपदेश से स्पष्ट है कि वह उच्च कोटि के योगी थे। किन्हीं धर्म/पंथ के अनुयायी कहते हैं कि उनका धर्म/पंथ सबसे प्राचीन है, एवं अपने 'मूल' को नकारते हैं। इस आशय का वीडियो बनाकर सोशल मीडिया पर डालते हैं, वैमनस्य ऐसा है कि कुछ टिप्पणी करने पर कानूनी कार्यवाही की धमकी देते हैं। इन्होंने धर्म का मर्म ही नहीं समझा है।'

श्रीमद्भागवत, एकादश स्कन्ध, दूसरा अध्याय-ऋषभ के नौ पुत्र संन्यासी बने थे, उन्होंने आत्मविद्या के सम्पादन में बहुत परिश्रम किया था। 11 वाँ अध्याय-- श्री कृष्ण उवाचः शरीर धारियों को मुक्ति का अनुभव कराने वाली आत्मविद्या, और बंधन का अनुभव कराने वाली अविद्या दोनों ही मेरी अनादि शक्तियाँ हैं। आत्मविद्या होने पर उसे मुक्त कहते हैं, और आत्मज्ञान न होने पर बद्ध।

पत्रिका पृ. 38 'आत्मदीपो भवः'-- कठोपनिषद (नचिकेता-यमराज सम्वाद) 4/12 के अनुसार-- आत्मा 'अंगुष्ठप्रमाण पुरूष' के भीतर रहती है, जिसका स्वरूप श्लोक 4/13 में वर्णित है-- वह 'अंगुष्ठप्रमाण पुरूष' एक ज्योति के समान है (धूम्र/धुँए से रहित)। वह भूतकाल एवं भविष्य का नियंता/मालिक है। वह अपरिवर्तित रहता है। यह वही है।

पृ.39 'आत्मा नित्य परिवर्तनशील है' : टिप्पणी-- आत्मा परिवर्तनशील नहीं है। विचार का आत्मा पर कोई प्रभाव नहीं होता है। विचार मन से उपजते हैं।

पृ.39 'ऐसा कुछ भी नहीं जिसे आत्मा समझा जाय'। टिप्पणी--यह कथन सही नहीं है। आत्मा परमात्मा का अंश है एवं सभी जीवों के हृदय में अवस्थित है। सभी संतों की यही मान्यता है, जिसे उन्होंने अपने साधना के अनुभव से समझा है।

पृ.41 'गोचर वस्तुऐ सार शून्य हैं।' टिप्पणी-- यह ज्ञान उस समय प्राप्त होता है, जब साधक यह अनुभव कर लेता है, कि 'मम आत्मा सर्व भूतआत्मा' (द्वैत बुद्धि का नाश होने पर)।

पृ.41 'जगत स्वप्न, भ्रम, प्रतिध्वनि, मरीचि, इत्यादि के समान है'। टिप्पणी-- साधना का एक स्तर ऐसा है, जहाँ पहुँचने पर वह अनुभव करता है कि वह स्वंय (सेल्फ) ही सब वस्तुओं एवं

स्थान में व्याप्त है-- 'अहं ब्रह्मास्मि'।

पृ.42 'निर्वाण/मोक्ष' : योगिराज श्री श्या. ला. ने लिखा था-- प्राणकर्म करते-करते बहिर्मुखी श्वास सम्पूर्ण रूप से अर्न्तमुखी होकर स्थिर हो जाता है, तब 'केवल कुम्भक' अवस्था प्राप्त होती है, इसके बाद स्वयं को खोजो।

लेख बौद्ध मत.........

अर्थात उस स्थिर अवस्था के भीतर अपना प्रियतम है, उसे प्राप्त करते ही, जन्म-मृत्यु का प्रवाह समाप्त हो जायेगा। सहस्त्रार चक्र (7वां) में शून्य घर है। महाशून्य रूपी मालिक ही ब्रह्म है।

योगिराज श्री श्या.लाहिड़ी के अनुभव एवं भाग्यः

1. प्राण के दो स्वरूप है-- 1 चंचल प्राण, 2 स्थिर प्राण। ऐसे समझें -- एक डोरी की लम्बाई को दोनों प्रकार के प्राण विभाजित कर रहे हैं। जितना ही चंचल प्राण घटेगा, स्थिर प्राण में वृद्धि होगी।

2. गीता 4/21 में 'केवल कर्म' का उल्लेख है। जो व्यक्ति इस शरीर द्वारा यह 'केवल कर्म' करते हैं वे निष्काम जितात्मा पाप ग्रस्त नहीं होते हैं। भगवान ने 'केवल कर्म' को ही वास्तविक कर्मयोग की संज्ञा दी थी, यही सहज कर्म है। गीता 4/29, 30 में विस्तार से बताया गया है।

3. गीता 5/27 में 'नासाभ्यन्तर चारिणौ' का उल्लेख है, इस स्थिति में प्राण स्वभाविक रूप से नाक के भीतर ही चलता है। 'केवल कुम्भक' अवस्था में ऐसा होता है (जो कि लम्बे समय तक उत्तम प्राणायाम करने पर घटित होता है), श्वास-प्रश्वास क्रिया समाप्त हो जाती है। इस अवस्था में चंचल प्राण के अभाव में विचार शून्य स्थिति प्राप्त होती है।

योगिराज ने दि. 22.1.1874 को अपनी डायरी में लिखा था--

अब शून्य के भीतर जो शून्य है, उस महाशून्य रूपी ब्रह्म को ही देखता हूँ। अब अगम्य घर में पहुँचा, वहाँ से अजर घर और उसके बाद अमर घर पहुँचा। अब और कुछ भी नहीं, केवल महाशून्य रूपी मालिक ब्रह्म (शान्ति पद) ही है। इसके उपरान्त मन का भी महाशून्य रूपी ब्रह्म में विलय हो गया ।

2 लेख, 'श्रीमद्भागवद् गीता में ध्यान-योग के साधन' (अंक 4/2024) के संबंध में कहना है कि-- संदर्भ सूची लम्बी होने पर भी गीता के मुख्य अंश उजागर नहीं हो पाये हैं। कारण हैं-- 1 गीता ब्रह्मविद्या का योग शास्त्र है, जैसा कि इसके प्रत्येक अध्याय के उपरान्त लिखा गया है। इस विषय वस्तु से लेखक एवं टीकाकार अनभिज्ञ हैं। 2 गीता 9/2 में यह भी लिखा है कि यह राजविद्या (सर्वोच्च विद्या) एवं अति गुह्मतम है। इस कारण केवल बौद्धिक ज्ञान के बल पर इसे नहीं समझा जा सकता है। इसके लिये व्यक्ति को अध्यात्म पथ पर, एक समर्थ आत्मज्ञानी के आश्रय में रहना होगा।

क्रिया योग प्रर्वतक योगिराज श्री श्यामाचरण लाहिड़ी, वाराणसी (1828-95) ने योग नहीं है, उनका आपस में सम्बंध है।

लेख 'श्रीमद्भगवद् गीता......

कर्मयोग के उपरान्त ज्ञानयोग क्रिया जाता है, अन्त में भक्तियोग। श्री अरबिन्दु, अरबिन्दु आश्रम, पौंडीचैरी ने भी यही क्रम बताया था।

श्री श्या. लाहिड़ी के अनुसार कर्म वह कार्य/उद्यम है, जो हमें अपने मूल/उत्स की ओर ले जाये। प्राणकर्म (प्राणायम, बिना नाक बन्द किये, एवं अन्य क्रियायें) ही वह कर्म है। यह षटचक्र/कुंडलिनी योग है। प्राचीन काल में सिन्धु घाटी सभ्यता के व्यक्ति भी योग करते थे। कालीदास कृत 'रघुवंश' में वर्णित है कि सूर्यवंशी राजा योग क्रिया से शरीर त्याग करते थे। महान योगी संत पूर्व के तीन युगों में भी अवतरित हुए थे, अर्थात सभी युगों में योग प्रचलित था।

कुछ श्लोकों की व्याख्या जिसे योगीराज श्री श्या.लाः ने दी थी।

1. कूटस्थ एक आंतरिक अध्यात्मिक अनुभव है। गीता 15/16 में कूटस्थ चैतन्य को अक्षर या अविनश्वर पुरूष कहा गया है।

2. प्रयाणकाले....... (गीता 8/10,12,13) में वह प्रक्रिया वर्णित है, जिसे योगी को अंत समय में करनी चाहिए, ऐसा करने से परम गति प्राप्त होती है।

3. गीता 12/3,4-- जो नित्य एवं अविनाशी कूटस्थ की उपासना करते हैं, वे सभी भूतों/पदार्थों एवं प्राणियों

के हितैषी या कल्याण-कर्त्ता के रूप में मुझे (ईश्वर) प्राप्त करते हैं।

4. जिसने आत्मकर्म द्वारा अपने मन को वश में कर लिया है, अथवा उसे आज्ञार्चक (छठे चक्र) में स्थापित करने की शक्ति प्राप्त कर ली है, आत्मा उस व्यक्ति का, स्वंय बंधु/मित्र है।

5. गीता 13/15 --- 'सूक्ष्मत्वात्तद्विज्ञ यं', अर्थात- सूक्ष्मता अथवा रूप आदि से रहित होने के कारण 'वह अविज्ञेय' है।

6. गीता 3/4-- 'न कर्मणामन.......', अथवा आत्मकर्म/प्राणकर्म के बिना कर्मातीत अवस्था या नैष्कर्म्य की अवस्था प्राप्त नहीं होती है।

'खेचरी मुद्रा' के सिद्ध होने पर व्यक्ति निश्वास हो जाता है (श्वास-प्रश्वास, की क्रिया समाप्त हो जाना), यह स्थिति ही वास्तव में 'त्याग' है।

7. गीता 4/16-- कर्मयोग के बिना सन्यास या त्याग की प्राप्ति असंभव है।

8. गीता 4/29,30 --- कोई-कोई प्राणवायु को अपान वायु में और अपान वायु का प्राणवायु में होम करते हैं। अभ्यास करते-करते 'केवल' नामक कुम्भक द्वारा प्राण की गति रूद्ध होती है।

9. गीता 2/65-- 'प्रसोद......' अर्थात प्रकृत प्रसाद से सभी दुखों का नाश होता है, यह 'आत्मप्रसाद' है। 9 गीता 18/61 'ईश्वर सर्वभूतानां.......' समस्त भूतों एवं पदार्थों में वे हैं, किन्तु हृदय प्रदेश में अधिक अवस्थान है।

10. गीता 4/23 --- कर्म योग के बिना ज्ञानयोग होना कठिन है।

11. गीता 18/48 -- 'सहज कर्म कौन्तेय........' अर्थात- यह क्रिया योग ही वह सहज कर्म/प्राणकर्म है जो सहजात है। पहले-पहले अनाभ्यास के कारण दोषयुक्त होने पर भी इसको छोड़ना उचित नहीं है। क्योंकि प्रारम्भ में सभी कर्म धुऐं से ढ़की अग्नि की तरह दोषपूर्ण रहते हैं।

लेख श्रीमद्‌भागवद् गीता----

12. गीता 15/6 'न तद्‌भासते सूर्यो.......'। अर्थात जहाँ सूर्य, चन्द्र एवं अग्नि की दीप्ति नहीं है, क्योंकि उनकी दीप्ति उस अवस्था को प्रकाशित करने में सक्षम नहीं है। वह परमज्योति स्थान है, जो स्वयं प्रकाश एवं अव्यक्त है। उस अवस्था को प्राप्त करने के पश्चात योगी पुनः संसार में वापस नहीं आते।

13. आत्माराम के साथ योग सूत्र स्थापित करो, कूटस्थ में उसे पकड़ कर रखो।

14. गीता 15/1 'उर्ध्वमूलमघ् शाख......'। अर्थात- वृक्षों की शाखायें ऊपर एवं मूल/जड़ नीचे होती है। किन्तु उक्त श्लोक में भगवान ने कहा है कि मूल ऊपर है और शाखायें नीचे की ओर। यह योगियों द्वारा बोधगम्य है। आज्ञाचक्र (छठा चक्र) के ऊपर मूल है, नीचे की ओर शाखायें। यही अश्वत्थ का प्रतीक है। नीचे हाथ, पाँव, इन्द्रियों आदि का कार्य फैला है। वृक्ष के पत्ते त्रिवेद हैं। ऊपर स्थिर प्राणरूपी ब्रह्म की स्थिति है।

15. गीता 14/34 'ममयोनिमहद्‌ब्रह्म.......'। मेरी जो महान सर्व ब्रह्ममय जगत व्यापी प्रकृति स्वरूप अवस्था है, वही महदब्रह्म है, और वही मेरा योगि स्वरूप है। क्योंकि उस अवस्था से ही सब कुछ की उत्पत्ति हो रही है। विश्व-विस्तार के हेतु-स्वरूप चिदाभास से ही क्षेपण करता हूँ, अर्थात वहीं से गतिशील होकर नाना प्रकार की मूर्तियाँ या पिण्डों में अभिव्यक्त हो रहा हूँ। उस महान 'बृहद कूटस्थ' के भीतर जो त्रिकोण है, वही महद्‌ब्रह्म का योनिस्थान है, अर्थात ब्रह्म योनि।

जितेन्द्र नाथ जौहरी
उदयपुर
मो. 8003188087

●

स्वत्वाधिकारी भारतीय विद्या मन्दिर, कोलकाता के लिए सचिव शंकरलाल सोमानी द्वारा कल्याणी प्रिंटर्स, अलखसागर रोड, बीकानेर के लिए कंप्यूटर-एन-मीडिया, 25ए, सी.आर. एवेन्यू, कोलकाता-72 में मुद्रित एवं भारतीय विद्या मंदिर से प्रकाशित। संपादक-डॉ. बाबूलाल शर्मा।

भारतीय विद्या मंदिर द्वारा प्रकाशित ग्रंथ

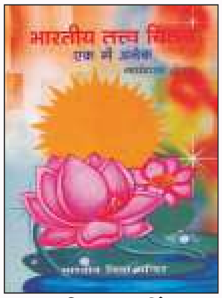

भारतीय तत्त्व चिंतन
माधोदास मूंधड़ा
मूल्य 150/- पृ.सं. 190

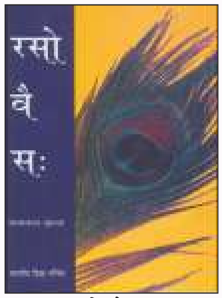

रसो वै सः
माधोदास मूंधड़ा
मूल्य 150/- पृ.सं. 165

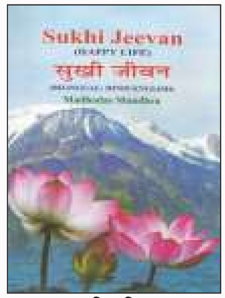

सुखी जीवन
माधोदास मूंधड़ा
मूल्य 275/- पृ. सं. 216

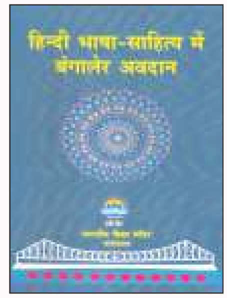

हिन्दी भाषा-साहित्य में बंगालेर अवदान
डॉ. बाबूलाल शर्मा
मूल्य 800/- पृ. सं. 352

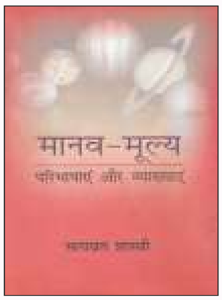

मानव मूल्य परिभाषाएं और व्याख्याएं
सत्यव्रत शास्त्री
मूल्य 550/- पृ. सं. 304

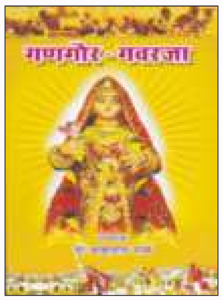

गणगौर-गवरजा
डॉ. बाबूलाल शर्मा
मूल्य 400/- पृ. सं. 264

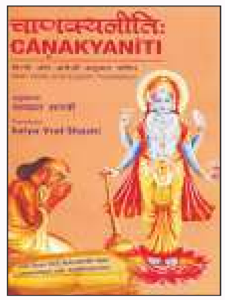

चाणक्यनीतिः
सत्यव्रत शास्त्री
मूल्य 295/- पृ.सं. 194

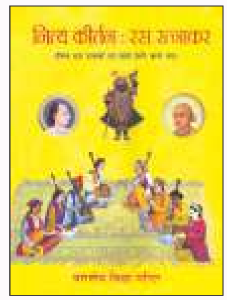

नित्य कीर्तन : रस रत्नाकर
मूल्य 900/-

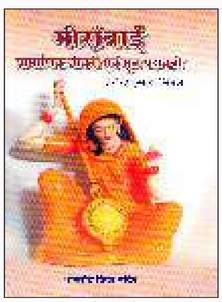

मीरांबाई
प्रामाणिक जीवनी एवं मूल पदावली
संपा. ब्रजेन्द्र कुमार सिंहल
मूल्य 900/- पृ.सं. 584

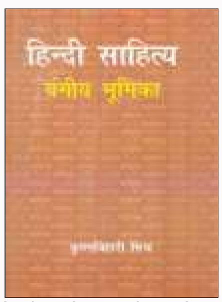

हिन्दी साहित्य बंगीय भूमिका
कृष्णबिहारी मिश्र
मूल्य 750/- पृ.सं. 551

श्रीरामकथा की कथा (प्रथम खण्ड)
आचार्य सोहनलाल रामरंग
मूल्य 600/- पृ. सं. 379

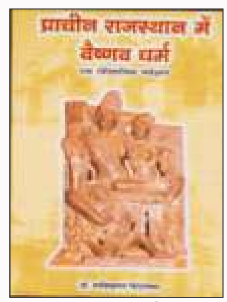

प्राचीन राजस्थान में वैष्णव धर्म
डॉ. सतीश कुमार त्रिगुणायत
मूल्य 550/- पृ. सं. 287

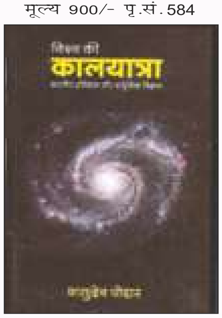

विश्व की कालयात्रा
डॉ. वासुदेव पोद्दार
मूल्य 700/- पृ. सं. 409

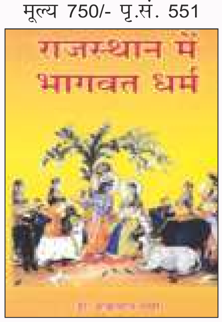

राजस्थान में भागवत धर्म
डॉ. बाबूलाल शर्मा
मूल्य 900/- पृ. सं. 468

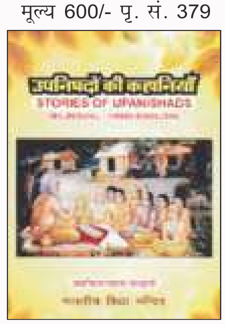

उपनिषदों की कहानियाँ
जयकिशन दास सदानी
मूल्य 400/- पृ. सं. 208

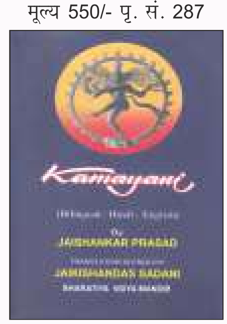

Kamayani
Tr. Jaikishandas Sadani
Price : Rs. 900/- Pages : 477

पुस्तकादेश हेतु संपर्क करें

शंकरलाल सोमानी, सिम्पलेक्स हाउस, 27, शेक्सपीयर सरणी, कोलकाता-700 017 मोबाइल : 09830559364 ई-मेल : shankar.somani@simplexinfra.com

VAICHARIKI Bi-Monthly • ₹50/- Jan-Feb 2025 R.N.I. No. 22298/71

From
BHARATIYA VIDYA MANDIR
12/1, Nellie Sengupta Sarani
Kolkata - 700087 *(W.B.)*

TO

सेठ माधोदास मूँधड़ा स्मृति व्याख्यान द्वितीय माला के अवसर पर दिनांक 9 मार्च 2025 के व्याख्यान में डा. नन्द किशोर आचार्य जी के ललाट पर तिलक लगाकर अभिनंदन करते हुए डा. श्रेयान मूँधड़ा (सुपुत्र श्री राजीव मूँधड़ा संसद सदस्य सुपौत्र डा. बी.डी. मूँधड़ा) मध्य में डा. तारा दूगड़ परिलक्षित हैं।

सेठ माधोदास मूँधड़ा स्मृति व्याख्यान द्वितीय माला के अवसर पर डा. नन्द किशोर आचार्य जी को शाल ओढ़ाकर अभिनन्दन करते हुए द्वय संस्थानों के अध्यक्ष डा. बिट्ठलदास मूँधड़ा।

पं. जसराज संगीत अकादमी प्रांगण में वाद्य यंत्र पर संस्था के अध्यक्ष, वैचारिकी के प्रधान संपादक डा. बी.डी. मूँधड़ा।

डा. बी. डी. मूँधड़ा के 83वें जन्मदिवस की बधाई देते हुए, बायें से श्री शंकरलाल सोमानी, श्री घनश्याम कोठारी एवं श्री अमित व्यास।

डा. बी. डी. मूँधड़ा अपने 83वें जन्मदिवस पर सिम्पलेक्स इंफ्रास्ट्रक्चर्स लि. के निदेशक श्री सुकुमार दत्ता, कंपनी सेक्रेटरी श्री बी.एल. बाजोरिया एवं अन्य पदाधिकारीगणों से अभिवादन स्वीकार करते हुए।

मातृतुल्य एवं पुष्टिमार्गीय श्रीमती रविप्रभा बर्मन भारतीय विद्या मंदिर के संस्थाध्यक्ष डा. बी. डी. मूँधड़ा को आशीर्वाद देते हुए। साथ में श्री रामकृष्ण परमहंस एवं माता शारदा देवी।